बासमती

(एक समाजकर्मी की आत्मकथा)



कृष्ण कुमार कश्यप



(फोटो : 1986)

बासमती

(एक समाजकर्मी की आत्मकथा)



लेखक :

कृष्ण कुमार कश्यप

प्रकाशक :

भारती विकास मंच, बरहेता
लहेरिया सराय, दरभंगा–846001

प्रकाशक :

भारती विकास मंच, बरहेता, लहेरिया सराय, दरभंगा – 846001 बिहार

चित्र–सज्जा : श्रीमती शशिबाला

प्रकाशन वर्ष : जून,2018

लेखक से संपर्क :
(मोबा) 99 31 66 59 39
e-mail : kashyapkk15@gmail.com
www.kashyapartschool.wordpress.com

मूल्य : चार [redacted] सौ रुपए मात्र 400/

प्राप्ति–स्थान :

(1) स्टेशनरी सेन्टर, भगतसिंह चौक, लालबाग, दरभंगा –846004;
(मो) 933 42 488 70
(2) प्रज्ञा ट्रस्ट, वाराणसी, उत्तर प्रदेश;
(मो) 9955547065
(3) भारती विकास मंच, बरहेता ; मो 9931665939

मुद्रक:

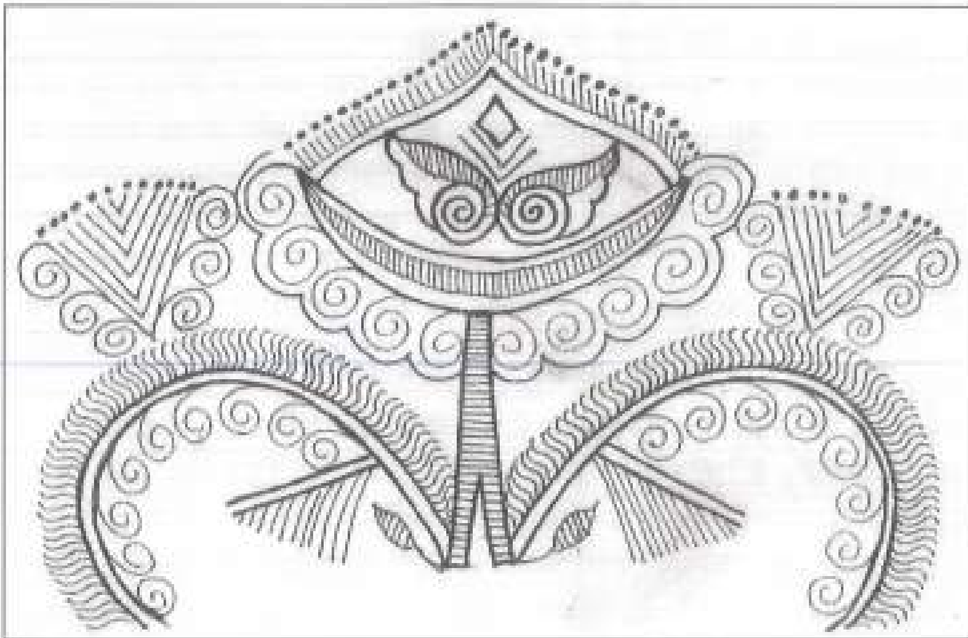
सुरभि प्रिन्टर्स
सी. 27/273–के, इंडियन प्रेस कालोनी
मलदहिया, वाराणसी–221002 (भारत)

BASMATI : Ek Samajkarmi ki Aatmakatha (Hindi)

By : Krishna Kumar Kashyap & Shashibala

बासमती को
समर्पित :

तू दलितों की वाणी,
तू बेटी धरती की;
उन्नत तेरा भाल,
कुसुम–कलिका परती की !



भूमिका

विगत दो दशकों से हिंदी साहित्य में दलित–विमर्श अपने नवीन आयाम के साथ उपस्थित हुआ है। प्रारंभ से अबतक इस साहित्य में आत्मकथात्मक शैली की प्रमुखता रही है। अर्थात दलित–लेखक उत्पीड़न, संत्रास एवं सामाजिक विडम्बनाओं को आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत करते रहे हैं। व्यथा–कथा को व्यक्त करने के लिए संस्मरणात्मक साहित्य भी इसी की एक कड़ी है। दलित साहित्यकार समाज से, व्यक्ति से सीधा संवाद करता है। यह संवाद उस समय और अधिक जीवंत हो जाता है जब लेखक समाज में व्याप्त अभाव को दूर करने हेतु कुछ नूतन और स्थायी प्रयोग करता है और उन प्रयोगों के मूल में पीड़ित समुदाय के अनुभवों को रखता है। ऐसे ही एक समाजकर्मी–लेखक हैं कृष्ण कुमार कश्यपजी, जिन्होंने "शिक्षा के साथ आजीविका" के अपने महनीय प्रयोग का दस्तावेज प्रस्तुत करते हुए **बासमती** में दलित समाज के अनूठे ज्ञान–वैभव को उजागर किया है।

पुस्तक का रंग–ढंग प्रारंभ में औपन्यासिक होने का आभास कराता है। लेखक के जीवन की भोगी इस कथा का प्रारंभ जेपी आंदोलन से होता है। असल में लेखक का अपना भी एक आंदोलन रहा है, वंचित समुदायों के लिए शिक्षा के साथ ही रोजगार की तलाश का आंदोलन। इस खोज में आंदोलनकारी कश्यपजी को जगह–जगह भटकना पड़ा। इसी क्रम में इनकी भेंट बासमती से हुई, नेपाल के जनकपुर में। अंततः दलित समाज की गहरी संवेदना और उसके निदान के अनोखे तर्क रखनेवाली उस युवती के साथ कश्यपजी की मित्रता हो गयी जो आज तक के उनके प्रयोगों का मूल स्रोत बनी। बासमती की अंतस्पीड़ा, आकांक्षा, आस्था, समुदाय के कल्याण के प्रति उसकी छटपटाहट और उसकी आत्माभिव्यक्ति से परिचिती उनकी कार्य–पद्धति के निर्माण में किस प्रकार सहायक बनी, इसका जीवंत लेखाजोखा इस पुस्तक के मूल तत्व हैं।

बासमती एक स्त्री है, उसकी खुद की एक समझदारी है, छोटे से मन की असीमित उड़ाने हैं। उसकी देह–सत्ता पर अपना एक अनुशासन है, आकर्षण का उसका अपना दृष्टिकोण है और उसके पास अपनी एक निधि है, परंपरागत गोदना का अक्षय भंडार, जिसे वह लोक–कल्याण के लिए कश्यपजी को समर्पित करना चाहती है। दबे–कुचले लोगों के लिए बदलाव का एक मुहिम शुरू करने में उन गोदना चित्रों का उपयोग करने का निदान भी कश्यपजी को उसी ने दिया। यह घटना लगभग तैंतालिस वर्ष पूर्व की है जब कश्यपजी स्वयं एक सामाजिक कार्यकर्ता होते हुए भी दलित–संवेदनाओं से संपृक्त नहीं हुए थे। दोनों दो तरह की सामाजिक परिस्थिति से आते थे और दोनों की देह–विषयक समझदारी में भी काफी अंतर था। इस अंतर को बासमती ने ही अपने तर्क से पाटा और उन्हें आत्मचिंतन के द्वारा अपनी अवधारणाओं को बदलकर सृजनात्मक साधन के रूप में उन देहचित्रों का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया।

बासमती की उत्प्रेरणा से कश्यपजी ने कला–प्रतीकों की भाषा को समझने का प्रयास किया और उन्हें लगा कि कला के उस शब्दकोष का उपयोग वह वंचित लोगों की पढ़ाई के साथ ही उनकी आजीविका के लिए, उनके स्किल डेवलपमेंट के लिए कर सकते थे, जिसकी खोज में वह वन–वन भटक रहे थे। इस संस्मरण में बासमती और उसकी बहन रासबती ने साधारण महिला के जीवन में अनेक प्रकार के अभाव से उपजी कसमसाहट को जिस प्रकार व्यक्त किया उसी रूप में कश्यपजी ने उसे परोस दिया। दलित महिला की उस कुलबुलाहट के साथ ही उसके उच्च आदर्शों की मूल्यवत्ता तब और घनीभूत हो जाती है जब वह गोदना से भरी देह का अनावरण तो उनके आगे करती है, किंतु एक कठोर अनुशासन में; शायद बाणभट्ट की तरह कोई यह कहनेवाला मिल जाय कि नारी शरीर को मैं देव–मंदिर की तरह पवित्र मानता हूं। लेकिन दलित नारी–जीवन की वास्तविकताएँ कुछ और होती हैं; इससे भी कहीं आगे।

लेखक ने पुस्तक में जिस भाषा का प्रयोग किया है वह मिथिला ग्रामीण समाज के अत्यंत समीप है। उनकी भाषा अपने वैयक्तिक चरित्र को लेकर उपस्थित होती है। यही कारण है कि लेखक ने संवाद को हू–ब–हू रखने का प्रयास किया है। फणीश्वर नाथ रेणु और नागार्जुन की तरह यत्र–तत्र लेखक अपनी ठेठ भाषा और बोली के साथ उपस्थित होते हैं। मैथिल ग्रामीण समाज एवं संस्कृति की इस शब्दावली का संग्रह कई रूप में उपयोगी हो सकता है। लेखक ने कहीं कुछ छिपाया भी तो नहीं है !

इस संस्मरण के माध्यम से लेखक ने साधारण लोगों के जीवन में उच्च आदर्शों, आकांक्षाओं आदि को ढूँढ़ने का सफल प्रयास किया है। "बासमती" से प्रभावित जीवन की सोच ने ही लेखक के मन को संतोष प्रदान किया है। यहाँ वंचित समाज के लिए शिक्षा और रोजगार के उत्स की तलाश लेखक ने की है। श्री कश्यप ने एक संस्था के माध्यम से ऐसी वैचारिक सोच को सफल प्रायोगिक आधार भी प्रदान किया जो आज लोगों की आजीविका का माध्यम बनी हुई है।

– डॉ. उमेश कुमार 'उत्पल'
विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग,
बि.म.आदर्श महाविद्यालय, बहेड़ी,
दरभंगा – 847105

बासमती

बात बहुत पुरानी नहीं है, मगर नई पीढ़ी के लिए चालिस–पैंतालिस वर्षों का अरसा फिर भी लंबा होता है। वह ऐसा समय था जब खुद सरकार ने ही भारतीय प्रजातंत्र के माथे पर कलंक का टीका लगा दिया। भारत में इमरजेंसी, आपातकाल लग गया। 'आपातकाल', माने सरकार द्वारा लोगों की आजादी छीन लेना। 25 जून, 1975; आधी रात के समय जब सब सो गए, प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आकाशवाणी पर घोषणा की कि राष्ट्रपति के आदेश से इमरजेंसी लगाया जा रहा है। सुबह में लोग जगे तो देश बदल चुका था। शहर–बाजारों में बिन–बिन करते पुलिस–बल वातावरण को भयावह बना रहे थे। शाम में लोगों को पता चला, वह भी बीबीसी के मार्फत, कि राष्ट्रीय स्तर के बहुतेरे नेताओं को पकड़ कर जेल भेज दिया गया। पुलिसिया धड़–पकड़ तेज होता गया। गाँवों में भी जो कोई जेपी आंदोलन से जुड़े लोग थे, उन्हें बिना किसी वारंट के जेलों में झोंक दिया गया। 'ऑल इंडिया रेडियो' देखते–देखते 'ऑल इंदिरा रेडियो' हो गया। वैसे अखबार बंद कर दिए गए जो आंदोलन के समाचार छापते थे; जो निकलते रहे, उन पर सेंसरशिप का चाँप चढ़ा दिया गया।

जेपी आंदोलन से मैं 1974 में जुड़ा। मैं जुलूस निकालना, धरना देना या 'जेल भरो अभियान' में अधिक नहीं रहता था, बल्कि दूर–दूर के देहातों तक लोक–चेतना के काम में ज्यादा संलग्न था। जेपी ने 'संपूर्णक्रांति' का जो मंत्र दिया था, उसके मर्म को समझने के लिए और लोगों को क्रांति की जरूरत समझाने के लिए, मैं सीतामढ़ी जिले के कठिन देहातों तक सक्रिय था। उधर हमारा केंद्र मेजरगंज में था। वहीं हम एक विद्यालय चलाते थे, 'जुनियर्स एकेडमी'। उस इलाके के बहुतेरे प्रभावशाली लोग, सरकारी अधिकारी और किसानों की मदद से वह विद्यालय चलता था। चौदह हमारे शिक्षक और एक मैं, हम सभी आंदोलनकारी थे। दिन में स्कूल और रात में दूर–देहातों तक लोक–सम्पर्क, जुलूस की तैयारी, घेराव की मोर्चाबंदी। नेपाल की सीमा से सटा यह क्षेत्र आंदोलन की आँच से एकदम खलबला गया था। पिघलती आग का ताव दिल्ली तक के गुप्तचर विभाग को झुलसाने लगा। सीतामढ़ी का पुलिस–प्रशासन और मेजरगंज का दारोगा खीज उठा। कौन है मास्टर–माइंड? गुप्तचर विभाग कहता था, यहीं कहीं है। आखिर बात खुल गई। दिसंबर की एक घनघोर रात, सितलहरी की धुंध और रह–रहकर बरखा की बौछाड़ के बीच पुलिसिया कारबाई मेरे दरबाजे तक पहुँचनेवाली थी। एकाएक दारोगा की बेटी माधुरी दौड़ती–हाँफती मेरे कमरे तक आई और बतलायी कि पुलिस आ रही है। माधुरी और उसका एक रिस्तेदार, रमेसर, मेरा भेदिया था। इनसे मुझे पुलिस की गतिविधि का पता चलता रहता था। उत्तेजना से हाँफती माधुरी ने हबर–हबर मुझे बताया कि दो बजे दिन में लम्बोदर झा रीगा स्टेशन पर पकड़े गए, गन्ने के खेत में बैठकी करते चार लोग भी पकड़े गए; दारोगा जी हेडक्वार्टर गए हुए हैं, सीतामढ़ी से पुलिसबल लाने; वह सीधे यहीं आयेंगे। माधुरी ने मुझे चार सौ रुपए, एक कंबल और एक छोटा फिलिप्स रेडियो दिया और डबडबाई आँखों से रमेसर के साथ लगा कर कोठरी से बाहर ठेल दिया, किसी अनजाने रास्ते पर अपना भविष्य तलासने के लिए। रमेसर ने कहा, चलिए भिट्ठा मोड़, वहीं से नेपाल चले जाएंगे। छिपते–छिपाते हम आगे बढ़ते रहे। नेपाल भी मेरा अपना ही था।

नेपाल मेरे लिए मात्र भूमिगत गतिविधि का ठौर नहीं था। बहुत दिनों से वह मेरी आँख में किसी भगजोगनी की तरह भुकभुका रहा था, जैसे पिपनी पर पसीने की कोई बूँद लटक जाती है। नेपाल की प्राकृतिक सुषमा और उसके जंगल–पहाड़ एक तरफ मुझे किसी स्वप्न–लोक के पार्थिव संस्करण की तरह सम्मोहित करते थे, दूसरी ओर उसकी सरल चित्त प्रजा की छाती पर इस आधुनिक युग में भी राजा–रानी की सवारी दौड़ना मेरे लिए असह्य था। यह अनुभव कुछ वैसा ही था जैसे सुंदर फूल को देखते देखते आँख मे पराग का कोई कण पड़ गया हो। नेपाल के बारे में अधिक सोचने से भी उपाय तो कुछ हाथ नहीं लगता था, उलटे मन में एक कसैला स्वाद घुलने लगता था। फिर भी मैं उधर की बातों से बेखबर नहीं था। जिस किसी भी स्रोत से वहाँ का हालचाल, लोगों की दशा और देश–कोस की दिशा का पता चल सकता था, मैं अपनी जानकारी बढ़ाता रहता था।

नेपाल के संबंध में एक सबसे बड़ा प्रश्न जो मेरे मन में खुजली की तरह उठता रहता था, वह यह कि लोग राजतंत्र के विरुद्ध संघर्ष क्यों नहीं करते हैं? दूर से बिना देखे कोई कितना समझ सकता है? मेरी हालत भी ऐसी ही थी। कभी मुझे लगता था कि नेपाल का राजा अपनी प्रजा को भेड़ा–भेड़ी बना कर रखे हुए है, जैसे लोककथाओं में कामरूप कामाख्या की डायन सुंदर पुरुषों को दिन में भेंड़ और रात में आदमी बना देती है। कभी लगता था कि राजा सोची–समझी नीति के तहत ही अधिराज्य में बेहिसाब दारू का उत्पादन करवाता है ताकि लोग हमेशा पी कर बेमत्त बने रहें, 'रक्सी र मासू' (दारू और मांस) के स्वप्नलोक में भटकते रहें, कभी जगें नहीं। मुझे किसी ने बताया था कि सिंधुली, रामेछाप, दोलखा, पालपा जैसे पहाड़ी इलाकों में जब किसी गरीब स्त्री को बच्चा होता था, ऐसी स्त्री जो मजदूरी करने के लिए घर से बाहर जाती थी अथवा जो जंगल से लकड़ी काट और बेच कर गुजारा करती थी, वैसी स्त्रियाँ प्रसूति से निपटने के बहुत दिन बाद तक बच्चे को दूध पिलाने के लिए घर नहीं बैठ सकती थी। तब वह बच्चे का क्या करती है? बच्चे के रोने पर कौन उसे चुप कराता है? जवाब यह कि बच्चा दिन भर पड़ा रहता है; न जगता है और न रोता है। बच्चे की माँ सुबह में उसे भर पेट दूध पिलाकर, घर से निकलते समय, उसके मुँह में दो–चार बूँद दारू गिरा देती है। दारू के प्रभाव से मत्त बच्चा दिन भर पड़ा रहता है, बिना रोए चिल्लाए। बाप रे बा'! यह तो जनमते ही बच्चे को दारू के मोँठ में झोंकना हुआ। अब तो दारू उसे कभी नहीं छोड़ेगा, जीवन भर। ये लोग कैसे विद्रोह कर सकते हैं, सैकड़ों वर्ष से जमे–जमाए राजतंत्र के विरुद्ध? ऐसे लोग बैठे–ठाले मजे में रहते हैं। मैथिली में एक कहावत है, 'रे हेकड़ा, तुम्हारे पीछे में पेड़ जनम गया है'; .....'रहने दीजिए, भले छाँह में हूँ!' ऐसे में किसी तरह का राजनीतिक विमर्श कैसे शुरू हो सकता है? मन में इस तरह के अनेकों विचार उठते रहते थे जिसकी सही समझदारी वहाँ जाने पर ही हो सकती थी। इमरजेंसी के दवाव ने मुझे भाग कर नेपाल में छिपने का कारण दे दिया।

जनकपुर (नेपाल) में मेरे साले, श्री विश्वंभर लाल, नेपाल की सबसे बड़ी दारू ठेका की कंपनी में काम करते थे और मालिक के विश्वस्त अधिकारी थे। कंपनी का एक कार्यालय जनकपुर में था और उसी भवन में अधिकारियों का आवास भी। उस भवन को लोग 'लारी ऑफिस' के नाम से जानते थे। कंपनी के मालिक मकबूल अहमद लारी तो काठमांडू में रहते थे, लेकिन मैनेजर इरशाद अहमद और विश्वंभरजी कुछ और कामगरों के साथ उसी भवन में रहते थे। मैं भी विश्वंभरजी के आमंत्रण पर वहीं रहने लगा। मैनेजर इरसाद अहमद साहित्यिक अभिरुचि वाले थे और सामाजिक–शैक्षणिक विमर्श में उनका मन लगता था। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा, नेपाल में जब तक रहना हो, कंपनी के काम में क्यों नहीं लग जाते हैं? मैंने सोचा,

अच्छा ही होगा, मैंने इरसादजी का प्रस्ताव मान लिया। मुझे फाँस (दारू–पानी का लेखा–जोखा) जाँचने का काम सिखा दिया गया। कंपनी और जनकपुर में मेरा नाम 'मास्टर साहब' पड़ गया।

मेजरगंज (बिहार) से जब मैं नेपाल के लिए बिदा हुआ, उस समय मेरे पास माधुरी का दिया कंबल, एक छोटा रेडियो और दो–चार कपड़ों के अलावा होम्योपैथी दवा का एक छोटा बक्सा था। मुझे होम्योपैथी चिकित्सा का औपचारिक ज्ञान तो आज तक नहीं हुआ, लेकिन सेवा–भाव से मैं कुछ चुनिंदा दवाओं वाला एक बक्सा और चिकित्सा गाइड नामक एक पुस्तक अपने पास हमेशा रखता था। छोटी–मोटी तकलीफ वाला कोई आदमी जब मुझे अपना हाल बताता था तो मैं उस किताब से पढ़ कर दवा दे देता था। बहुतों को ठीक भी हो जाता था।

जनकपुर के हमारे उस महल्ले में, नदी की ओर उन दिनों बहुत घर नहीं थे। लारी–भवन के बाद दो–तीन घर, एक घर श्याम गिरि का। इनके यहाँ मैं खाली समय में जाया करता था। उनकी दो बेटियों को मैं कभी–कभी अंगरेजी पढ़ा दिया करता था और जरूरत पड़ने पर होम्योपैथी वाली दवा भी दे देता था। गिरिजी के घर के बाद कुछ दूर तक परती थी और उसके बाद नदी से सटा एक पासवान परिवार रहता था। उन लोगों को भी पता था कि मैं दवा देता था। दो–चार बार उसे भी दवा दी थी। उस घर की स्त्री को लोग 'रसिया' कह कर बुलाते थे। एक दिन मैंने उससे पूछा, 'आपका क्या नाम है?' उसने कहा, 'रासबती'।

एक शाम मैं गिरिजी के यहाँ बैठा था तो रासबती आई और बतलायी कि उसकी बहन आई हुई है, उसको बुखार लगा हुआ है। दवा वाला मेरा बक्सा वहीं था। बक्सा हाथ में लिया और उसके साथ ही बिदा हो गया, नए रोगी को देखने। उस रात हवा में कनकनी कुछ बढ़ गई थी। नदी किनारे का घर, पुरबा हवा के कारण मुझे लगा कि बुखार लग गया होगा। मैं पहली बार उसके यहाँ गया था। एकचारी टटघर। छोटी–छोटी खोलिआ जैसी फूस की दो कोठरी। एक कोठरी में मटिया तेल की ढिबरी भुकभुका रही थी, खजूर की अखरा चटाई पर साड़ी ओढ़े एक युवती पड़ी हुई थी और कुछ हँटकर एक खूँटे से बँधी दो–तीन बकरी–पाठी पगुरा रही थी। मैंने रासबती से पूछा, 'क्या होता है?' उसने कहा, 'बोखार लगल है, माट्साएब; जरा ठीक से देख दीजिए ..... ।' उसने मुझे चटाई पर बैठने को कहा। अब वह स्त्री उठ कर बैठ गई और मेरे लिए थोड़ा घुसक कर दूसरी ओर घूम गई। मुझे लगा, वह लजा रही थी। मैं उसके पास ही चटाई पर बैठ गया और पूछा, 'आपका नाम क्या है?' वह कुछ देर चुप रही फिर बोली, 'बास....मती'। लगा जैसे काँसे की थाली में कोई सिक्का झन्न से गिरा और गिनगिना कर ठमक गया।

"बाह रे बाह ..... आप दोनों बहन के नाम बहुत सुंदर हैं, रासबती और बासमती।" ढिबरी के मद्धिम इजोत में मैंने देखा, मेरे तरफ वाला उसका गाल ललोन हो गया था। मुझे लगा, उसका बुखार चढ़ रहा होगा। ताप जानने के लिए मैंने उसका पहुँचा पकड़ना चाहा, उसकी नाड़ी देखने के लिए। मैंने छुआ ही था कि वह सिसिया उठी। मैं चौंका, उसने ऐसा क्यों किया? मैं कुछ पूछने के लिए रासबती की ओर ताका ही था कि उसने कहा, "नहीं समझे माट्साएब, इसको आठ दिन से 'सरगतिआ' करवा रहे थे। कल ही पूरा हुआ है। हो सकता है कि उसीके जरब से बुखार लग गया हो.....।" मैं सही में कुछ नहीं समझा। मैंने कहा, "मैं आपका मतलब नहीं समझा। जरा समझा कर कहिए, नहीं तो इलाज कैसे होगा! यह सरगतिआ क्या होता

है?'' वहाँ पड़ी एक ईंट को रासबती ने खड़े–खड़े ही सीधा किया और उस पर पोन रोप कर बैठ गई। कुछ देर वह चुप रही। मुझे लगा जैसे वह बात रखने से पहले इतमीनान कर रही थी कि कहाँ से बोलें। तभी उसका पति आ गया। वह 'जनकपुर चुरोट कारखाना' में काम करता था। याद आया, उसका नाम था पल्टू , पल्टू पासवान। बात उसीने शुरू की, ''हम लोगों में माट्साएब, जनी–जात के लिए गोदना गोदवाना बड़ा जरूरी रहता है। उसीसे ऊ सब पवित्तर होती है; आ ई बसमतिआ डर से कभी गोदएबे नहीं किया। छोटी थी तब अगर गोदवा लेती, तनिक सा बुट्टा–बुट्टी भी करबा लेती तो न जादे दुखाता और न एतना झंझट ही होता। आखिर बिआह तो तभिए हो गया, जब बहुत छोटी थी। उसके बाद भी गोदबा लेती सो इस हरमजादी ने गोदबाया नहीं। इसी ओजह से अभी तक इसका 'गौना' भी नहीं हो पाया।''

पल्टू की बात में जोड़ा रासबती ने, ''और माट्साएब, कहता है कि कन–खुदी खाने वाली का भी देह तो बढ़ता ही रहता है न! देखिए रहे हैं ..... छौंड़ी फूट कर जवान हो गई, अब कब इसका गौना होगा! जवान हो जाने पर सरगतिआ कराना पड़ता है ..... सब गत्तर में गोदना। सो नहीं कराने पर इसका गौना नहीं हो सकता है। अगर गौना हो भी जाएगा तो ऊहाँ इसको रसोईघर में घुसने नहीं दिया जाएगा; कोई इसके हाथ का खाना–पानी नहीं लेगा; और क्या कहें माट्साएब, ऊहो काम सब नहीं ..... इसके देह में जब कोई सटबे नहीं करेगा तो सादी करके क्या हुआ .....।'' रासबती बहुत बड़ी बात बोल गई थी। बात के वजन से उसकी मूँड़ी लटक गई। अपना झेंप मिटाने के लिए वह नाखून खोंटने लगी। दो–चार साँस लेने के बाद वह फिर बोली, '' सो माट्साएब, मेरे बाबूजी इसको इहाँ ले आए। बिना गोदबाए पवित्तर तो होगी नहीं ..... तब खोजे थारू खोधपारनी को..... ऊ खोधपारनी आठ दिन से थोड़ा–थोड़ा करके गोद रही थी। कल्हे पूरा हुआ है। हमरा लगता है कि उसी के जरब से इसको लोहजर हो गया है ..... बहुत लोग को हो जाता है।'' मैं समझ गया; सब बात ठीक से समझ गया।

इतनी बात सुन कर बासमती के मन को कैसा लगा, यह तो मैं नहीं जान सका लेकिन वह लाज से सिकुड़ गई थी। गोबर–माटी के लेवा से तैयार बाँस–फूस के टाट वाली छोटी कोठरी ढिबरी के धुँए से भर गई थी, ऊपर से बकरी के मूत की खारी–तीखी गंध। सब कुछ मिल कर बासमती की देह से उठने वाली बास को और भी नोनछराइन बना रही थी। मेरा मन मिचलाने लगा। मैं उठ कर खड़ा हो गया और रासबती से कहा, '' इतने गंदे घर में बीमारी कैसे ठीक होगी? अभी कुछ दिन बकरी–पाठी को दूसरी जगह रखिए; बाहर आते जाइए।'' बोलते–बोलते मैं कोठरी से निकल गया। बाहर में धुली धोती–सी चाँदनी फैली थी। मेरे पीछे ही बासमती भी बाहर आँगन में आ गई। पहली बार उसे पूरी लंबाई में देखा। लगा जैसे किसी बड़े संदूक से निकल कर कोई कठपुतरी मेरे बगल में खड़ी हो गई थी। वैसा ही नाक–नक्श, भरी–पुरी देह–यष्टि। देख कर मन प्रसन्न हो गया।

कुछ दिनों से मेरे बक्से में होम्योपैथी वाली मीठी गोलियाँ तो खतम हो गई थीं, लेकिन सीसियों में दवा बची हुई थी। किताब देखकर दवा का चुनाव किया। देखा, आँगन में एक ओखली औंधी रखी थी। मैंने बासमती को उसी पर बैठने को कहा। वह जब ओखली पर बैठ गई तो जीभ निकालने को कहा और एक बूँद दवा जीभ पर गिरा दी। दवा के तीखे स्वाद से उसका पूरा शरीर भुलक गया। मैंने कहा, ''दवा का स्वाद तीखा है, लेकिन इससे जल्दी ठीक हो जाइएगा।'' फिर मैंने उसकी बड़ी बहन की ओर देख कर कहा, ''ठंढा इतना बढ़ गया है, बुखार भी लगा हुआ है तो ओढ़ने के लिए कुछ और देना चाहिए न!'' रासबती ने जवाब

दिया, "हाकिम, आप कहते तो हैं एकदम ठीक, लेकिन हम लोग कंबल और रजाई कहाँ से लावेंगे? दोनों छौंड़ा–छौंड़ी को सटा कर सुता लेगी, फाटक को नीक से भिड़ा लेगी, जाड़ा काहे लगेगा? माट्साएब, हम लोगों को जाड़ा नहीं लगता है।"

गरीबी तो मैंने भी बहुत करीब से देखी है, लेकिन गरीब की ऐसी उत्कट परिभाषा सुन कर मैं अवाक रह गया। अपनी छोटी औकात में ही सही, परिस्थिति के उस नंगे रूप को मैं सहन नहीं कर सकता था। मैंने कहा, "एक दवा और देनी है। मैं ले कर आता हूँ।" इतना बोल कर मैं हबर–हबर उस आँगन से निकल कर अपने कमरे में आ गया। कमरे में अपने बिछावन पर पालथी लगा कर बैठा तो लगा जैसे निहायत ही अजनबी माहौल से छूट कर अपने में लौटा था। मन स्थिर हुआ तो ध्यान बासमती की ओर चला गया। एक साड़ी ओढ़ कर वह कैसे रात काटती होगी? मुझे लगा, ठंढ से सिकुड़ कर उसका शरीर और भी गोलौन हो गया और गरमाहट की चाह में मेरी ओर सरकने लगा था। सिहरन–भरी उसकी सिसकी तुरत कुछ करने को मुझे टुसकाने लगी। तभी मेरी नजर बेंच पर तहिआकर रखे उस कंबल पर पड़ी, जो माधुरी ने दिया था। लगा जैसे कोई बड़ा निदान मिल गया। मैंने फुरती से कंबल उठाया और लपककर फिर बासमती के आँगन में आ गया। रासबती फाटक आधा भिड़ाकर अपने पति के साथ खा रही थी। मैं कुछ देर आँगन में खड़े रहकर अटकर लेता रहा। दूसरी कोठरी में बासमती अपनी बहन के दो बच्चों के साथ 'अटकन–बटकन' खेल रही थी — 'अटकन–बटकन, दही चटा कन, केरा–कूस महागर जागर, माघ मास करेला फूले, उसका बोलो नाम क्या, आमुन जट्टा, जामुन जट्टा, तेतरी सोहाग जट्टा, सिंघी लोगे कि मोंगरी?' मैंने आँगन में ही कंबल की तह खोलकर उसे झाड़ा और सीधे भीतर चला आया। उसने मूँड़ी उठाकर मेरी ओर ताका। लगा जैसे पूरा आकाश उसके मुखमंडल पर उतर आया हो। उसकी निर्दोष आँखों के पसार में क्लेश का कोई दरस नहीं था। मुझे संतोष हुआ। मैंने ठीक से कंबल उसकी देह पर ओढ़ा दिया। हड़बड़ी में पता नहीं कैसे, मेरी एक उँगली उसके केस की लट में फँस गई, हाथ उठाते समय वह लट तना गई। मुझे संकोच तो हुआ लेकिन मैंने वैसा कुछ नहीं कहा जैसा आजकल लोग 'सॉरी' बोलते हैं। वापस होने के लिए मुड़ा तो उसने कहा "..... दवा .....।" मैंने थोड़ा बिलमते हुए कहा, "जाड़े में कंबल भी दवा ही होता है ..... दवा कल दस बजे।" उसके बहन–बहनोई फाटक भिड़ा चुके थे। जाड़े की रात में इधर लोग जल्दी सो जाते हैं।

लारी ऑफिस में उन दिनों मेरे जिम्मे बहुत काम नहीं था। पिछली देर रात तक भट्ठियों से जितने फाँस जमा होते थे उसे सुबह में चेक कर लेते थे, उस पर अपना नोट लिखते थे और अपने से ऊपर के हाकिम, विश्वंभर जी को थमा देते थे। इसके बाद अगर मैनेजर इरसाद अहमद गपशप के लिए बुला लिए तो कुछ देर उनसे बतियाकर अपनी कोठरी में आ जाते थे और पढ़ाई–लिखाई करते थे। अगर मन हो गया तो दस बजे तक नदी तरफ चला जाता था। नदी में कहीं–कहीं पानी ठेहुने से नीचे हो गया था। टपकार उस पार गए और गाछी में शौच करने के बाद वापसी में मन हुआ तो गिरिजी के यहाँ कुछ देर बिताए नहीं तो अपने ठौर पर वापस आ गए। सुबह की दिनचर्या कुछ ऐसी ही थी।

बासमती को दवा देने के लिए पाँच–सात दिन तो वहाँ जाना ही होगा, सुबह–शाम, दो बार। मन में विचारा कि एक बार दस बजे दिन में और दूसरी बार शाम में कभी जा कर दवा दे देंगे। पता नहीं, गोदने का घाव कैसा होता है। हमलोगों को बचपन में पचाया जाता था, सितला माइ के नाम पर चेचक से बचानेवाला पाच, टीका। किसी–किसी बच्चे की देह थोड़ा छकछकाती थी और पाँच–छः दिन में पाच का घाव

सूख जाता था, मगर ज्यादा बच्चों को बुखार लगता ही था। एक जगह छोटा सा पाच तो इतनी तकलीफ, जिसके पूरे शरीर पर पाच ही पाच हो, उसको क्या होता होगा? यह कैसा 'सरगतिआ' महापाच कि महागोदना हुआ! कहता है कि बचपन में अगर गोदवाने से चूक गए और 'गौना' से पहले अगर महीना हो गया तो देह के सभी अंग को गोदवा कर पवित्र करना होगा। ऐसी एक बात मैंने भी अपने गाँव में सुन रखी थी लड़कियों के बारे में, मगर वह गोदना वाली बात नहीं थी। उन दिनों एक थी लालकाकी, उस समय की बूढ़ी–वितपन। वह कहती थीं कि अगंग कन्या, जिसने गंगा–नहान नहीं किया हो, उससे ब्याह नहीं करना चाहिए। उन लोगों के समय में अगर कोई लड़की रजस्वला होने के बाद तक गंगा–स्नान नहीं किए रहती थी तो उसको विवाह से पहले सिमरिया जा कर स्नान तो करना ही पड़ता था, पवित्र होने के लिए पहली डूब में एक चुटकी बालू भी गीड़ना पड़ता था। बालू गीड़ना एक तरह का प्रायश्चित था। यह प्रायश्चित इसलिए करना पड़ता था क्योंकि वह रजोवती होने के बाद गंगाजी का स्पर्श कर रही है, जब वह हर महीने अपवित्र रहने लगी है।

सामाजिक आचार–शास्त्र की इस समझदारी पर कि स्त्री का रजोवती होना उसकी अपवित्रता है, मुझे बहुत क्षोभ होता था। आज से चालीस–पैंतालिस साल पहले अथवा कहिए उसके कुछ वर्ष बाद तक भी जो मैंने देखा, मास की जिस अवधि में कोई स्त्री रजोदर्शन करती थी, चार–पाँच दिन पाककर्म और धार्मिक कृत्यों से पृथक ही रहती थी। जब मेरी शादी हुई और श्रीमतीजी ने इस निषेध के बारे में बताया तो मैंने उन्हें समझाया कि यह वर्जना स्त्रियों की सृजन–क्षमता के महत्व को कमतर करने के लिए पुरुष–प्रधान समाज द्वारा स्त्रियों पर लादी गई थी। मैं सामाजिक परिवर्तन के काम में लगा हुआ हूँ और खास कर स्त्रियों के लिए काम करता हूँ इसलिए ऐसे व्यवहार को नहीं मान सकता हूँ। मेरे देखादेखी मेरे साथियों ने भी इस व्यवहार का चलन अपने परिवारों में बंद करवाया। अब तो प्रायः कोई भी इस रिवाज को नहीं मानता होगा।

मैथिल समाज में मगर किसी कन्या के प्रथम रजोदर्शन को एक विलक्षण आयोजन से संपन्न किया जाता था। आज से प्रायः पचास वर्ष पूर्व तक, लगभग 1960–'65 तक जो मैंने देखा, कायस्थ और ब्राह्मण परिवारों में जब किसी कन्या को पहली बार रजोदर्शन होता था तो उसकी माँ परिवार के पुरुष अभिभावकों को इसकी सूचना देती थी; टोला–महल्ला में हँकार जाता था; आँगन में 'ऋतु अरिपन' की लिखिआ की जाती थी; उस अरिपन (अल्पना) पर बैठा कर कन्या का स्नान कराया जाता था; पीली साड़ी पहनाई जाती थी और दूब, धान, पान तथा हल्दी उसके खोंइछा में दे कर गीतगायिनि स्त्रियाँ सोहर, बटगवनी, गीतगोविंद और विद्यापति के पद गाते हुए कन्या को बँसबिट्टी तक ले जाती थी, जहाँ वह बाँस की जड़ में खोंइछा वाली वस्तु सौंप देती थी। माना जाता था कि उस दिन से कन्या ऊर्वर हो गई और उसके लिए वर की तलाश शुरू हो जाती थी। अब यह व्यवहार उठ गया है किंतु मिथिला–चित्रकला में 'ऋतु अरिपन' और 'गर्भचक्र' आज भी चिरंजिवी है।

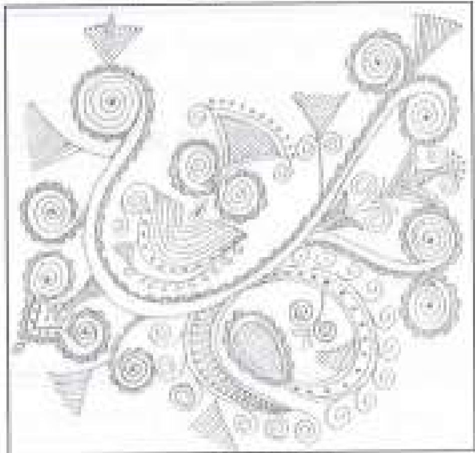
सामाजिक परिवर्त्तन के विचार से जुड़े होने के कारण मेरा मन बार–बार बासमती के गोदना–व्यवहार की ओर मुड़ जाता था; ऐसी कष्टसाध्य प्रथा क्यों है इनके बीच में? क्या, हरिजनों के समाज में भी गोदना गोदवाना गंगा–स्नान की तरह पवित्रीकरण का कोई कर्मकाण्ड है? क्या, 'सरगतिया' करवाना किसी तरह के प्रायश्चित का बिध है जो रजस्वला होने के बाद गोदना करवाने पर करना पड़ता है? इसका माने तो वह भी रजोवती है ..... सो तो होगी ही! वह पूरी तरह से स्वस्थ युवती है तो रजोधर्म में क्यों नहीं

रहती होगी? सो नहीं होता रहता तो सरगतिया ही क्यों कराना पड़ता? जो सो, मैंने तो उसे ठीक से अभी देखा भी नहीं है तो यह बात कैसे सोच सकता हूं! दूसरी बात कि किसी स्त्री के रजोधर्म से मुझे क्या लेना–देना! यह अनुचित है! मुझे अपने आप पर क्षोभ हो आया।

उस दिन दस बजे से पहले ही जैसे उचाट लग गया था। मन में होता था कि बेमतलब ही दस बजे का समय दे दिए; दस बजे कहीं किसी को दवा दी जाती है! लोग दवा खाते हैं सुबह में या शाम में। अब जब बोल दिए हैं तब तो दस बजाना ही पड़ेगा। इस उधेड़बुन में दूसरा काम करते भी नहीं बन रहा था। आखिर दवा वाला बक्सा हाथ में लिए और बिदा हो गए, दस बजे से कुछ पहले ही। उसके आँगन में पहुँचा तो सभी कोई किसी न किसी काम में जुटा हुआ था। रासबती बाँस की करची से बना खरहरा लेकर उस कोठरी की सफाई कर रही थी जिसमें बासमती बकरी–पाठी के साथ सोती थी। बासमती मिट्टी के बासन में गोबर–माटी का घोल तैयार कर रही थी, कोठरी की लिपाई के लिए, और दोनों बच्चे बकरी को डोरिया रहे थे। रासबती का घरवाला लगता था अपने काम पर चला गया था। मुझे लगा, पिछली रात जो साफ–सफाई की बात बतलाए, उसका असर हुआ। मैं खुश था। आँगन में ऐसी कोई चीज नहीं थी जिस पर मैं बैठ सकता था, इसलिए खड़ा ही रहा। कुछ ही देर खड़ा रहा होगा कि बासमती गोबर–माटी मिलाना छोड़ कर हाथ धोई और चूल्हे के पास से एक पिढ़िआ ले आई। उस पिढ़ई के एक तरफ का गोड़ा उखड़ा हुआ था। पता नहीं, इस बात को छिपाने के लिए या आसन को ऊँचा करने के लिए, आँगन में रखे धान का एक बोरा धींच कर उसने पिढ़ई पर डाल दिया और मुझे उस पर बैठने का संकेत किया। मुझे हँसी लग गई। मैंने कहा, "पिछली रात मैंने आपको ओखली पर बैठा कर दवा दी तो अभी आप मुझे धान के बोरे पर बैठा रही हैं।" इस बात पर बासमती को बहुत जोर से हँसी लग गई। लगा जैसे किसी ने हरसिंगार का पेड़ जोर से डुला दिया हो। हँसी के आवेग से उसकी देह और मन की सभी गिरहें पटा–पट खुल गईं; मुँह–कान ललोन हो गया। मगर तभी एक गड़बड़ी भी हो गयी। हो सकता है कि गोदना के घावों के चलते उसने ब्लाउज नहीं पहना हो और आँचल से ही देह झाँप कर उसके खूँट कमर में खोंस लिया हो, सो हँसी के जोर पर खुल गया। उसका पेट और उससे ऊपर के भाग देखार हो गए। मैंने नजर घुमा लिया और इस प्रकार भगल किया कि मैंने कुछ नहीं देखा। पता नहीं, मेरे भगल से वह आश्वस्त हुई कि नहीं, लेकिन लाज से उसकी दशा खराब हो रही थी। किसी युवती की देह इस प्रकार खुल जाए तो स्वाभाविक है, उसे बहुत ग्लानि होगी। वह मूँड़ी नीचा किए पैर के अंगूठे से माटी घिसने लगी, मगर बहुत देर तक उसे इस दशा में नहीं रहना पड़ा। तभी उसकी बहन लिपाई का काम खतमकर बाहर निकली और उसे हाथ धुलाने को कहा। वह गयी, संकोच के जिस बवंडर में वह फँस गयी थी, उससे जान बचाने का एक अवसर उसे मिल गया। मैं भी दुविधा के चक्र से मुक्त हुआ। कुछ देर बाद खड़े–खड़े ही मैंने उसकी जीभ पर दवा की दो बूंद डाली और फिर शाम में आने की बात कहकर अपनी जगह पर लौट आया।

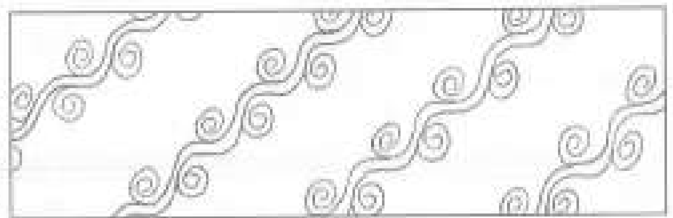
देहचित्र गोदना से मेरी पहली भेंट 1972 में हुई थी, अपने ससुराल, मधुबनी के जितवारपुर में। सन 1970 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने मिथिला की परंपरागत चित्रकला को मान्यता प्रदान की, किंतु अदूरदर्शी अधिकारियों ने समस्त मिथिला के इस गौरव को गलत नाम, 'मधुबनी पेंटिंग' कहकर विश्व भर में प्रचारित कर दिया। जो हो, मान्यता के बाद भारत सरकार के हस्तशिल्प बोर्ड ने अपना कार्यालय मधुबनी में खोला। इस कार्यालय से, मधुबनी से सटे पाँच–सात गाँव की कायस्थ और ब्राह्मण महिलाओं को, चित्र बनाने के लिए कागज के शीट मिलने लगे। कला के माध्यम से उस व्यावसायिक नवोन्मेष का मुख्य केंद्र जितवारपुर बना। इस लाभ के अन्य भागीदार रॉटी, मंगरौनी, रसीदपुर जैसे कुछ अन्य गाँव थे। उन दिनों सरकार दस रुपये के भाव से चित्र खरीदती थी, लेकिन दलित महिलाओं को चित्र बनाने के लिए कागज नहीं दिया जाता था। उस समय तक उनकी कोई परंपरागत चित्रशैली प्रकाश में नहीं आई थी। बाद में जब दलित युवकों ने ऑफिस पर दबाव बढ़ाया तो उन लोगों के नाम पर भी कागज दिए जाने लगे, लेकिन उनकी समस्या फिर भी बनी ही रही। समस्या यह थी कि उन लोगों को कलम पकड़ कर किसी तरह के लेखन का अभ्यास नहीं था। दूसरी बात यह थी कि हरिजन समाज से संबद्ध किसी लोकगाथा का चित्रगत रूप सामने नहीं आया था। अगत्या, हरिजन महिलाएँ अपना कागज किसी ब्राह्मण या कायस्थ महिला को चित्र बनाने के लिए दे देती थीं और ऑफिस से जब रुपया मिलता था तो आधा–आधा बाँट लेती थी। बाद में झंझट होने लगा। हरिजन महिलाएँ चाहती थी कि उनका हिस्सा अधिक होना चाहिए, क्योंकि कागज उनके नाम से मिला रहता था। दूसरी ओर, चित्र बनाने वाली महिलाएँ कहती थीं कि किसी के नाम से कागज मिला हो, उससे क्या होता है? यदि वे चित्र नहीं बनातीं तो कागज रखा ही रह जाता, इसलिए उनका हिस्सा अधिक होना चाहिए। कभी–कभी यह झंझट तू–तड़ाक से बढ़ कर बड़ी तकरार में बदल जाता था।

मेरे ससुराल के परिवार से सटे कुछ पासवान लोगों के घर थे। मैं जब ससुराल जाता था तो वे महिलाएँ भी मिलने आती थीं और कभी स्नेहवश अपने आँगन ले जाती थीं। एक सुबह दोनों पक्ष की महिलाएँ दाम–काम की बात पर झगड़ रही थीं। दोनों तरफ की महिलाएँ हाथ–बाँह फड़काते हुए झगड़ रही थीं और मैं छिप कर तमाशा देख रहा था। उस अवसर पर मुझे एक अनोखा दर्शन हुआ। मैंने एक हरिजन स्त्री की बाँह और छाती पर गोदना के चित्र बने देखा। पता नहीं कैसे, मुझे यह अभिज्ञान हुआ कि 'गोदना' दलित लोगों का प्रागैतिहासिक चित्र–वैभव है। जब उन लोगों का झगड़ा बंद हो गया तो मैं उस दलित महिला के आँगन गया और दूसरी महिलाओं को भी बुलाया। हँसी–मजाक के बाद मैंने उन लोगों को बताया कि सभी की देह पर बने गोदना के चित्र असल में उन्हीं लोगों की चित्र–परंपरा है। मैंने उन लोगों को समझाया कि यदि उन चित्र–प्रतीकों को करीने से कागज पर उतार दिया जाए तो बहुत सुंदर चित्र कहलाएगा और इसे **'गोदना पेंटिंग'** कह सकते हैं। मैंने उन लोगों को कलम पकड़कर कागज पर चित्र उतारने की विधि का थोड़ा अभ्यास करा दिया। कुछ दिनों के बाद जब मैं फिर



जितवारपुर गया तो वे सभी मिलने आयीं, अच्छी-अच्छी ससुराली गालियाँ भी दीं और बताया कि उनके 'गोदना पेंटिंग' तो कमाल कर गए। कमाल की बात यह भी कि उनके चित्र सरकार ने दुगुने दाम पर, बीस रुपये के भाव से खरीदा। यह सब जान कर मैं बहुत खुश हुआ, लेकिन उस समय मैं यह नहीं जानता था कि गोदना के उन देहचित्रों से और क्या किया जा सकता था।

मेरे लारी-निवास के दाहिने हाथ पर, कुछ दूर चल कर बासमती का घर और नदी थी तो बाँए हाथ पर आगे चल कर, आज के सुपरिचित नेपाली साहित्यकार रामभरोस भ्रमरजी का निवास-स्थान था जहाँ से सड़क रेलवे लाइन की तरफ मुड़ती थी। पटरी टपने के कुछ दूर पर भानु चौक और दोबगली सघन बाजार था। उस दिन शाम के समय बाजार की ओर निकल गया था। घूमते-फिरते जानकी मंदिर की तरफ चला गया। जाड़े की साँझ, थोड़े में ही रात हो जाती है। डेरा आते-आते लगा कि बहुत अबेर हो गया। बासमती को दवा देने के लिए जाना था। मन आगे-पीछे करने लगा, जाएँ कि नहीं जाएँ; अबेर से जाने पर पता नहीं क्या सोचेगी! दूसरी ओर अपनी वचन-बद्धता और किसी रोगी को दवा देने की बात थी। गुनधुन करते दवा का बक्सा उठाए और बिदा हो गए। उसके आँगन से कुछ दूर ही थे तो देखा कि दुरुखा के पास कोई स्त्री खड़ी थी। नजदीक में गया तो देखा, बासमती थी। मैंने पूछा, "यहाँ क्यों खड़ी हैं?" उसने कहा, " ..... आपके लिए।" आँगन में पैठते हुए मैंने फिर पूछा, "कब से खड़ी थी?" उसने कहा, " ..... साँझे से .....।" मुझे उसकी प्रतीक्षा बहुत भारी लगी। वह आगे-आगे बढ़ी, जैसे मुझे रास्ता दिखला रही हो और अपनी कोठरी के द्वार पर खड़ी हो गई। कोठरी बिलकुल लिपी-पुती, चिक्कन और हल्की लग रही थी। बकरी-पाठी वहाँ नहीं थी। ढिबरी की कालिख से कलछौंह हुई टाट की भीत को गोबर-माटी से छछार दिया गया था। गोबर से लिपी कोठरी की जमीन में जैसे नई जान आ गई थी। जमीन तो सूख गई थी मगर हर तरफ से उठने वाली मटिआह गंध कोठरी की पवित्रता पर मुहर लगा रही थी। उसकी बहन ने कहीं से ला कर थोड़ा पुआल बिछा दिया था। पुआल पर खजूर की चटाई, सिरहाने में चौपत कर रखा कंबल। यह सब परिवर्तन देख कर मैं बहुत खुश था। इतना कुछ देखने-सोचने में दो मिनट लगा होगा, तब तक खड़ा ही रहा। वह चाहती थी कि नए बिछौने का उद्घाटन मैं ही करूँ, लेकिन बोलती कुछ नहीं थी। उसने हाथ से इशारा किया तो मैंने सेजौट पर पैर रखा। वास्तव में लगा जैसे पुआल के फलके सेजौट पर उस समय तक कोई बैठा नहीं था। मैंने उसे भी बैठने को कहा। तनिक संकोच के साथ, वह मेरे आमने-सामने बैठ गई। उसके मुँह पर संतोष और आँखों में मनुहार के भाव थे। हम दोनों के बीच थोड़ा फासला था, मगर अपरिचय का अटपटापन कहीं नहीं था। मैंने पूछा, "अब आप अपने बारे में बताइए ..... बुखार कैसा है?" उसने कहा, "बुखार तो नहीं है ..... लेकिन गोदना वाला घाव अभी नहीं सुखाया है।"

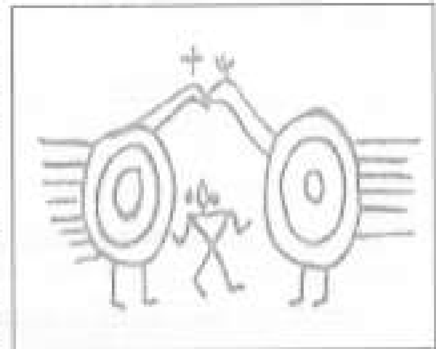


गोदना के छाप बासमती की बहन रासबती की बाँह पर भी हैं, लेकिन चित्र की हरिऔन काली रेखा उसके शरीर के रंग से मिल कर और भी मलिन लगती है। बासमती का रंग एकदम साफ है। सहसा मेरी नजर उसके हाथ पर बने ताजे झकझकाते छाप पर पड़ी। मैंने कहा, "जरा हाथ दिखलाइए तो.....।" उसने अपना दाहिना हाथ मेरे हाथ पर रख दिया। हाथ में पहुँचा पर लत्ती जैसा एक छाप था। मैंने पूछा, "यह क्या है?" उसने कहा, "लौंगलत्ती.....।" कलाई से ऊपर

दो मोर जैसी आकृति थी, चोंच में चोंच सटाए। मैंने अनठिआ कर पूछा, "और यह क्या है, कौआ?" उसने झट से कहा, "नहीं, यह है मोर–मजूर। मेरी नानी कहती है कि धरती पर सबसे पहले मनुष आया, लेकिन वह लोकवेद डेबना नहीं जानता था। इससे उसका पलिवार भी नहीं बढ़ता था। तब भगवान ने मोर–मजूर को भेजा। मोर–मजूर बहुत परेम से रहता था और उसका पलिवार भी बढ़ता था। सो देख कर मनुष गया मोर–मजूर के पास, परेम सीखने। तब उसका भी पलिवार बढ़ने लगा और संसार आबाद हुआ।"

प्रतीक–लिपि की ऐसी व्याख्या सुन कर मैं अचंभित था। मैंने उसका उत्साह बढ़ाने के लिए आगे पूछा, "मोर और मजूर तो एक ही चीज है न!"

उसने कहा, "हुआ तो एक ही चीज, मगर मोर हुआ नर और मजूर हुआ मादा। इतना बोल कर वह मेरे मुँह पर देखने लगी। मुझे लगा, वह जानना चाहती थी कि मैं अब भी समझ पाया कि नहीं। उसकी समझदारी पर मैं मुग्ध था। बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने फिर पूछा, "और यह लवंग–लत्ती क्या हुआ?" उसने समझाते हुए कहा, "यही दिया न उसको..... मनुष को..... जब आदमी मोर–मजूर से सब बात सीख के वापस आने लगा तो मजूर ने उसके गट्टा पर यह लत्ती बाँध दिया। उस दिन से आदमी भी मेलजोल और परेम बूझने लगा। ..... वैसे शुरू में आदमी बड़ा खराब जानवर था। हरदम लड़ाइए–भिड़ाई में रहता था। उसके करेजा में तनिक भी मायामोह नहीं था। दुलार–अलार तो ऊ जानबे नहीं करता था। लेकिन जबसे मोर–मजूर ने उसको लौंगलत्ती दिया, तब ऊ सब भी परेम से रहने लगा और उसको भी कुटुंब–पलिबार बढ़ा .....।"



उसकी बात समझ कर मैंने कहा, "माने यह प्रेम और दोस्ती बढ़ाने वाली लत्ती है .....।"

उसने बात को और फरचा कर कहा, "और दोस्ती को पक्का करने वाला भी। हमारे गाँव में सखी–बहिनपा कैसे लगाया जाता है? अगर दो लड़की के हाथ में ई लत्ती है तो दोनों लड़की कनगुरिया अँगुरी को कड़ी जैसा फँसा के तीन बार बोलती है, 'सखी–बहिनपा लाग जाव, नाम–नाम छूट जाव'। उस दिन से ऊ नाम ले के नहीं बुला सकती है, जब बुलाएगी तो सखी आ कि बहिनपा कह के ही बुलाएगी ..... ।"

मैं कुछ और जानना चाहता था, "और मान लीजिए कि एक के हाथ में लत्ती है और दूसरे के हाथ में नहीं है, तो दोस्ती लग सकती है कि नहीं?"

उसने तरीका बताया, "लगेगी काहे नहीं, मगर लत्ती में हाथ सटाना पड़ेगा।" मैं उसकी तरफ ताकता रह गया। मैंने सही में नहीं समझा। मेरा मनोभाव समझ कर उसने कहा, "देखिए, जैसे कि मेरे हाथ में लत्ती का छाप है और दूसरे के हाथ में नहीं है, तो दोनों आदमी पीठ में पीठ सटा कर खड़ा हो जाएगा और उलटे हाथ एक–दूसरे के हाथ को पकड़ कर तीन बार कहेगा, "लत्ती में लत्ती सट जाव, सखी–बहिनपा

लग जाव', बस .... हो गया। ई वाला सबसे पक्का होता है। दुनू कहीं चला भी जाएगा तो दोस्ती नहीं छूटेगी।''

बोलते समय उसकी आँखें किसी अलौकिक चमक से आलोड़ित हो जाती थीं। उस समय उसका चेहरा जिस आँच से दमक उठता था, मैं उस चमक से अपरिचित था। यूनानी पौराणिक कथाओं में एक प्रोमेथियुस की कथा है। वह धरती के कल्याण के लिए स्वर्ग से आग चुराने गया। आग चुरा कर तो वह धरती पर ले आया, लेकिन प्रतिशोध में जीउस ने उसे एक विशाल चट्टान में जंजीर से बाँध दिया और उस पर एक गिद्ध छोड़ दिया, उसका मांस नोचने के लिए। इस संकट से हरकुलिस ने उसे मुक्त कराया। मुझे लगा जैसे बासमती का मुखमंडल वैसी ही किसी प्रोमेदिक आग की आभा से दीप्त था। परंपरागत ज्ञान–पद्धति में उसकी पैठ और उससे उपजी प्रतिभा उसकी बोलीबानी में झलक रही थी। मैंने उससे पूछा, ''आप तो बहुत ऐसी बात जानती हैं जिसके बारे में मुझे पता नहीं है। आपने कैसे यह सब जाना?'' उसने बताया कि उसका अधिक समय अपनी नानी के साथ बीता। उसे गोदना करवाने से बहुत डर लगता था, इसलिए भी जाड़े का महीना आने से पहले वह जिद करके ननिहाल चली जाती थी। गोदना गोदनेवाली 'खोधपारनी' जाड़े के महीने में ही गाँव–गाँव घूम कर लड़कियों की देह पर गोदना बनाती हैं। गोदना गोदवाने में कष्ट तो बहुत होता है लेकिन यह कष्ट सभी लड़कियों को उठाना ही पड़ता है। नानी ने उसे बताया कि गोदना दुसाध स्त्रियों की असली पहचान होती है, बल्कि उनके अगले जीवन में आनेवाली तकलीफ को बरदाश्त करने की हिम्मत देती है। नानी कहती है, जो लड़की सूई की चुभन वरदाश्त नहीं कर सकती वह जिनगी का दुःख कैसे सहेगी? असली दुसाधिन वही है जो गुड़ खाकर सूई की चुभन सह ले। नानी भी चाहती थी कि वह राजीखुशी गोदना गोदवा ले। वह बासमती को तरह–तरह की कहानी सुनाती थी, गोदना के गीत सुनाती थी कि वह मान जाए, लेकिन वह बहुत चालाक थी; गीत सुन लेती थी, कहानियाँ भी सुन लेती थी और जब गोदवाने का समय आता था तो बहाना बना कर कहीं खिसक जाती थी। खोधपारनी के आने पर जब लोग उसे पकड़कर उसके पास ले जाते थे तो वह धाड़ मारकर ऐसे रोने लगती थी कि नानी मान जाती थी और फिर एक साल के लिए डर टल जाता था।

नानी कभी गीत गाकर तो कभी कहानियाँ कहकर उसके मन में भरसक एक ऐसे अनोखे संसार के चित्र उकेरने का जतन करती रहती थी जो यहाँ से बहुत दूर, किसी अनजाने जादूई लोक की तरह था। खोधपारनी उस संसार की परिचारिका थी जो किसी स्त्री को मंत्राविष्ट करके उसे सांसारिक दुःखों के जाल से मुक्त कर देती थी। उसने एक 'गोदना–गीत' सुनाया जिसमें कहते हैं कि गोदना गोदने वाली 'खोधपारनी' उत्तर के किसी देश से आती है और गाँवों में घूम कर लड़कियों की देह पर गोदना गोदते हुए उन्हें 'सांबर तंत्र' में दीक्षित करती है। इसके बाद वह स्त्री भगवान की हो जाती है। नानी कहती थी कि दलितों का भगवान वैसा नहीं होता है जैसा संसार के बाँकी लोगों का होता है, क्योंकि उनके भगवान मंदिरों में नहीं रहते हैं। जिसकी देह पर गोदना के छाप होते हैं, वह स्वर्ग में अपनी माँ, नानी, दादी और उन सभी लोगों से भेंट कर सकती है जो पहले से वहाँ पहुँचे रहते हैं। जिसकी देह पर जितना गोदना, उसको उतना दुलार वहाँ मिलता है। गोदना मिटता थोड़े है! यही तो साथ जाता है। जिसको भर देह गोदना होता है, वह भगवान की प्यारी हो जाती है। उसी में मिल जाती है। फिर दुःख काहे का!

बासमती जब बोलती थी तो लगता जैसे वह कहीं चली जाती थी। उसके होंठ कँपकँपाते जरूर थे मगर आवाज कहीं दूर से आती लगती थी। जैसे कोई गवैया कान पर हाथ रख कर शून्य में सुर लगाता है और उसीकी लहरों पर डूबता–उतराता रहता है, बासमती भी बोलते–बोलते ऐसे ही भसिया जाती थी। मुझे लगता कि शून्य में ताकते–ताकते उसकी आँखें कहीं खो जाती थीं जिसे हथोड़ कर हेरने में फिर शब्द ही काम आते थे। शब्द पर चढ़ कर ही वह उस पार जाती थी, जहाँ उसका खोया आपा सोया–पड़ा मिलता था। सम्मोहित–सी ऐसी दशा में जब मैं उसकी पनिआयी झिलमिल आँखों में झाँकता तो वहाँ एक पूरा संसार मुझे दिखता था; जहाँ किसी से किसी का अलगाव नहीं होता, न कोई छोटा और न कोई बड़ा होता है, न कोई शूद्र न बढ़ामन होता है। शुरू के उन दिनों में इतने बड़े संसार में रहने की मेरी आदत नहीं थी। इसीलिए मैं बासमती को ठीक से समझ नहीं पा रहा था। मैथिली में गाए उसके गोदना–गीत के 'रहस्यवाद' को तो मैं आज तक ठीक से समझ नहीं पाया। कबीर के रहस्यवाद में उसका 'पिया' यहीं मिल जाता है, अगर रूठ जाता है तो उसे मनाने का उपाय भी जानता है कबीर। वह अपनी आँखों में ही उसे अँटिया लेता है; तभी तो कहता है, "नयनन की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय। पलकन के चिक डार के, पिय को लिया रिझाय।' गोदना वाली दलित स्त्रियों का वह असली 'पिया' यहाँ होता ही नहीं है। उससे मरने के बाद भेंट होती है। लेकिन स्वर्ग में जब उससे भेंट होती है तो गोदना के हरेक छाप का हिसाब देना होता है। हिसाब यह है कि गोदना के सांबर तंत्र में दीक्षित होने के बाद भी अगर उसने दुःख के सामने घुटने टेक दिया, तो सब बेकार हो गया। होली के गीत में इस हिसाब की चर्चा है — "गोरी कहवाँ गोदौले गोदना, गोरी कहवाँ गोदौले गोदना। आ रे पिया के पलंग पर रोदना .... गोरी कहवाँ गोदौले गोदना।"

गोदना का यह गीत आज भी मैथिल स्त्रियाँ गाती हैं लेकिन सुर का जो पुल बासमती के बोल से बनता था, जो पुल यहाँ से गोदना–लोक को जाता था, वैसा कोई कहाँ गा पाती है ——

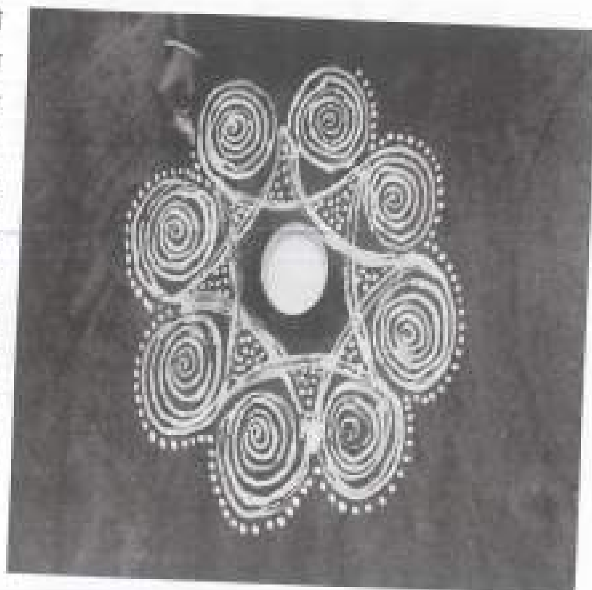
"उत्तर के राज से आई एक नटिनिञा रे जान, जान, बैठ गई वह चंदन की बिरिछिया रे जान।
घर से बाहर हो निकली सुंदरी पुतहुआ रे जान, जान, मैं भी सांबर गोदना गोदबाउँ रे जान।"
(उतरहि राज सँ अएलइ एक नटिनिञा रे जान, जान, बैसि रे गेलइ चंदन बिरिछिया रे जान। घर सँ बहार भेली सुनरी पुतहुआ रे जान, जान, हमीं रे सांबर गोदना गोदाएब रे जान।)

बातों का सिलसिला जब चल पड़ता था तो समय का पता ही नहीं चलता था। बतियाते हुए काफी अबेर हो जाने के कारण मन में हड़बड़ी पैठ गई थी। मुझे लगा कि अब केवल एक बार दवा दी जाए। सुबह में मेरे पास कुछ अधिक काम रहता था, इसलिए तय किया कि कल से एक बार शाम को ही दवा देने आऊँगा।

उसके यहाँ जाने से पहले ऑफिस के रसोइया, नेपाली कांछा से कह दिए थे कि भोजन झाँप कर मेरे कमरे में रख दे। भोजन तो हालाँकि ठंढ़ा हो कर बिलकुल बेस्वाद हो गया था मगर मन इतना खुश था कि सब कुछ बहुत स्वादिष्ट लग रहा था। अनायास ही एक ऐसी लड़की से भेंट हुई थी जिससे मेरे कार्मिक जीवन को बहुत खुराक मिलने लगी। सन 1963 ईस्वी में मैं नौवीं कक्षा में पढ़ रहा था। उस समय महीने की फीस दो रुपये आठ आने थी। मैं फीस नहीं देता था। ढ़ाइ रुपये की फीस तो मैं दे सकता था, लेकिन मेरा नाम ही नहीं लिखाया था। जनवरी में बच्चों के नाम लिखे जाते थे। नाम लिखाई के दस रुपये लगते थे।

मेरे पिताजी को एक साथ दस रुपये कभी होते ही नहीं थे। उसी दस टकिया के इंतजार में दस महीने बीत गए और नाम नहीं लिखाया। एक दिन गुरुजी ने कान पकड़ कर मुझे वर्ग से निकाल दिया। उस घटना की कहानी तो मैं कभी भूलता नहीं हूँ लेकिन वह बतलाना आसान नहीं है। किसीको इतना ही बताना काफी है कि उस घटना से मेरे भीतर की दीवार कहीं से दरक गई और उस खोधर में एक बच्चे ने जनम ले लिया, मेरा अपना ही छोटा आपा, जैसे किसी मकान की दरार में या पेड़ के खोड़रा में पीपल का पेड़ जनम जाता है। कसमसाती उबलती संवेदनाओं की चोट से जन्मे उस बच्चे ने अपना दुःख यह सोच कर अँगेज लिया कि बहुत ऐसे बच्चे हैं जो फीस के कारण स्कूल नहीं जाते हैं। मैं इतना तो पढ़ ही लिया हूँ कि उनको पढ़ा सकूँ। उस समय मैं चौदह बरस का था। जोर से रो नहीं सकता था, लेकिन मन की चोट को कहाँ छिपाता! उस विषाद के कारण घर आते-आते बुखार से शरीर तपने लगा। बुखार बढ़ता गया, बेमियादी हो गया। लंबे समय के बाद जब पथ्य खाया तो मैं दूसरे तरह का आदमी बन गया था, बाँकी बच्चों से अलग।

यह दिवाली और छठ के बाद का समय था जब मैं लंबी बीमारी से उठा था। दिवाली के छः दिन के बाद छठ और छठ के छः दिन के बाद देवोत्थान एकादशी का त्योहार आता है। इस एकादशी व्रत को मिथिला की गृहस्थ स्त्रियाँ बहुत धार्मिक महत्व देती हैं और कला के माध्यम से इसका संपादन करती हैं। उस दिन मैथिल स्त्रियाँ अपने आँगन को गोबर-माटी से लीप कर पवित्र करती हैं और दोपहर बाद चावल के पिठार से विस्तृत अरिपन (अल्पना) का आलेखन शुरू करती हैं। यह अरिपन घर में पूजा-स्थल से चल कर आँगन तक बनता है, अष्टदल या ककबा अरिपन। यह असल में विष्णु अरिपन है। जिस घर में कोई स्त्री गर्भवती होती है वहाँ अष्टदल नहीं, ककबा लिखा जाता है।



मेरी माँ अरिपन की लिखिया कर रही थी और मैं ओसारे पर बैठ कर पिठार (चावल से बना श्वेत रंग) से बनते अनेकों प्रकार के ज्यामितिक चिन्ह — वृत, अर्धवृत, त्रिभुज, चौकोण, षट्कोण, वर्ग, आयत, सरल रेखा, वक्र रेखा, तिरछी रेखा और ठोप आदि से मिल कर आकार लेते, बड़े से बड़ा बन रहे अरिपन को उत्सुकता से देख रहा था। वह दर्शन मेरे लिए बहुत सुखदायक था। स्कूल से निठुरता के साथ निकाले जाने के बाद वही एक समय था जब मुझे नए ज्यामिति का पाठ पढ़ने को मिला। मेरे भीतर का बच्चा उस नए पाठ को चाव से अपना रहा था। उस ज्यामिति को सीखने के लिए अब किसी को फीस नहीं देनी थी। माँ के स्कूल में कोई फीस लगती भी नहीं थी। एक ही बार के दर्शन में अरिपन ने मुझे निहाल कर दिया।

लोगों का विश्वास है कि देवोत्थान की संध्या लक्ष्मीजी अपने पति श्रीहरि विष्णु के साथ नैहर, मिथिला आती हैं। उनके लिए सभी तरह के संसाधन, गृहस्थी के सभी सरअंजाम से परिपूर्ण, श्वेत कमल से

निर्मित अष्टदल भवन बनाया जाता है, जिसके मध्य में ककबा, ककबा में मणि–माणिक्य से खचित सुखासन और उस पर लक्ष्मी–नारायण। मुझे लगा जैसे लक्ष्मी–नारायण की कृपा से यह अभिज्ञान मुझे मिल रहा है कि ज्यामिति के जिन चिन्हों की मेल से अक्षर बनते हैं उन्हीं चिन्हों के योग से चित्र भी बनते हैं। इस अंतर्बोध से मुझे वंचित समुदायों के बच्चों के लिए बहुत बड़ा साधन मिल गया। मैंने निश्चित कर लिया कि अब एक ही काम करूँगा, बेपढ़े लोगों को पढ़ाने का काम; दूसरा कुछ नहीं करूँगा।

उन्हीं दिनों एक और प्रेरक घटना हुई। दिवाली से पहले गाँवों में स्त्रियाँ अपने घरों के साज–संभाल के कामों में लग जाती थीं और गोबर–माटी या चूने से छछारने के बाद भीत पर चित्र बनाती थीं। जिनकी भीत पर चित्रांकन का काम अधूरा रह जाता था, उसे वह छठ के बाद ही पूरा कर पाती थीं। मेरे गाँव में पूरब का टोल पासवान लोगों का महल्ला है। एक दिन मैं उधर घूम रहा था तो देखा, एक पासवान महिला अपने अधूरे चित्र को पूरा कर रही थी। वह गेरू के रंग, कपड़े की लुगदी और करची के बुरुस से एक गाछ बना रही थी। गाछ देख कर लगता था जैसे कोई बहुत दुबला–पतला आदमी अपनी चार जोड़ी बाँहें फैलाए खड़ा था जो उस पेड़ की डाल बन गई थी। गाछ पर दो–तीन चिड़िया और नीचे एक हाथी था। वह चित्र मेरे मन में तो बस ही गया था, मुझे सोचने का एक मसाला भी दे रहा था। मैं जानता था कि उन दिनों हमारे गाँव में कोई दलित परिवार पढ़ा–लिखा नहीं था, तो फिर वह महिला चित्र कैसे बना पा रही थी? मेरी माँ पढ़ी हुई थीं और मुझे भी उसीने पढ़ाया। माँ को जटिल ज्यामितिक चित्र बनाते देख कर मैं समझ रहा था कि चित्र बनाने का काम वही कर सकता है जो पढ़ा–लिखा हो, मगर उस पासवान स्त्री को चित्र बनाते देखकर मेरा विचार पलट गया। इसके बाद मैं समझ गया कि चित्र बनाना और लिखना दोनों ही लेखन–कार्य है और इसके मूल में कुछ ज्यामितिक चिन्ह हैं। चाहे कोई उन चिन्हों के नाम नहीं भी जानता हो, उनका प्रयोग करना कठिन नहीं है, बल्कि बहुत हद तक स्वाभाविक है। मैं विचारने लगा कि जिस प्रकार चिन्हों के प्रयोग से कोई आदमी चित्र बना लेता है उसी प्रकार थोड़े अभ्यास से ही वह अक्षर भी लिख सकता है। यह अनुभव मेरे जीवन को एक पाथेय की तरह मिला और भले वहम ही सही, इस धारणा ने मुझे काम में लगने का एक साधन दिया। मुझे चित्र में ज्ञान का भंडार नजर आने लगा, ऐसा भंडार जो बहुत वंचित लोगों के पास शताब्दियों से सुरक्षित और जीवित रहा है।

आज मैं जब अपने उन शुरुआती दिनों को याद करने बैठा हूँ तो लगता ही नहीं है कि यह पचास बरस पहले की बात है। मेरी तो औकात भी नहीं थी कि शिक्षा जैसे विषय पर सोचूँ लेकिन मैं किसी और के लिए तो सोच नहीं रहा था, मुझे बस अपने जैसे मजबूर लोगों के लिए उपाय खोजना था। मैंने माँ के अरिपन और उस दलित स्त्री के चित्र कागज पर उतारा और गोला, आधागोला, रेखाओं के आधार पर उनके टुकड़े कर दिया। फिर मैंने इन चिन्हों से आजमा कर देखा तो पाया कि उन चिन्हों से चित्र और अक्षर दोनों बन रहे थे। अब मेरे लिए चित्र और अक्षर में बहुत अंतर नहीं था। मैं बेहद खुश था। मुझे किसी आर्किमिडिज से भी बड़ी चीज मिल गई थी। मैंने सोचा कि जिन्होंने पुश्त दर पुश्त कभी पढ़ाई नहीं की, जाहिर है कि प्रचलित वर्णमाला उनके लिए अनुकूल नहीं है। थोड़े अभ्यास के बाद मैंने एक दूसरी वर्णमाला तैयार की जिसमें ज्यामितिक चिन्ह के आधार पर, एक अक्षर से दूसरे समरूप अक्षर लिखना–सीखना आसान है —**उ ऊ अ आ / ओ औ अं अः / र ए ऐ स / व ब क ख** आदि। हरेक समूह के अक्षर बनाने से पहले कुछ चिन्हों से (जैसे गोला–आधागोला–रेखा–छड़ी–तीर) चित्र के सरल प्रतीक जैसे माछ, गाछ, पक्षी आदि भी बनाते थे और उन्हीं चिन्हों से अक्षर भी। इस प्रयोग में गाय–बकरी चरानेवाले बच्चे और दूसरे बच्चे रुचि ले रहे थे।

आगे चल कर अक्षरों के साथ गीत भी जोड़ दिया — "आधा में आधा को जोड़ो, झट से उ बन जाएगा; उ में एक लगाओ आधा दीर्घ ऊ कहलाएगा।" चित्र, अक्षर और गीत के इस खेल में बच्चे और सयाने दोनों उमर के लोग रुचि ले रहे थे। इतनी तैयारियों के बाद 1965 के अप्रील महीने में मैंने गाँव के 'श्रीमहाकाली पुस्तकालय' के प्रांगन में एक "नाइट स्कूल" शुरू किया। आगे चलकर मैंने अपने बच्चों के लिए कुछ नारे बनाए – "आधी रोटी खाएंगे, फिर भी स्कूल जाएंगे" ..... "गैया बकरी चरती जाए, मुनिया दीदी पढ़ती जाए .....।" मैंने तय कर लिया कि हमारे स्कूल में किसी से फीस नहीं ली जाएगी।

मेरा "नाइट स्कूल" शाम में लगता था। बच्चे अपने घरों से मिट्टीतेल की ढिबरी और छोटी चटाई लाते थे। आगे चल कर बच्चे भी बढ़ने लगे और सहयोगी साथी भी। उस पहले स्कूल की सफलता ने मेरा हौसला बढ़ा दिया। अब मैं वह केंद्र साथियों को सौंप कर आगे बढ़ा। दरभंगा रेलवे स्टेशन हमारे गाँव से लगभग दस किलो मीटर दूर है। मैं अपने मित्र जयशंकर प्रसाद के साथ, उनकी साइकिल पर बैठ कर जाता था और उधर एक खास जगह चिन्हित कर चुका था। दरभंगा स्टेशन से सटे पश्चिम में एक बड़ा तालाब है, हड़ाही पोखर। उस पोखर के पूरबी मुहार पर उन दिनों भिखारियों का बहुत बड़ा समूह अपना डेरा डाल कर रहता था। हमारी नजर भिखारियों की उस बस्ती पर थी। हम दोनों मित्र अक्सर वहाँ खड़े रह कर उन लोगों की गतिविधि देखते रहते था। शाम के समय जब वे भीख माँग कर अपनी बस्ती में जमा होते थे तो बहुत तरह से मनोरंजन करते थे। उन्हें ठीक से समझने के लिए हम कभी–कभी सुबह के समय भी वहाँ जाने लगे। वह उनके ड्यूटी पर निकलने का समय होता था। कुछ दिनों के बाद उनको जितना कुछ समझ पाए वह बहुत भयानक था। मैंने देखा कि जिस स्त्री को पाँच–सात वर्ष के बच्चे थे, उनकी आमदनी अधिक थी। होता यह था कि बच्चा भी अपनी माँ के साथ भीख माँगने जाता था। अक्सरहाँ लोग भिखमँगनी को तो झिड़क देते थे लेकिन जिस भिखारिन के साथ उसका बच्चा होता था, वह आदमी के कपड़े पकड़ कर रिरियाने लगता था, "बाबू , दो ठो पैसा दीजिए न..... माइजी, दो ठो पैसा दीजिए न!" लोग तंग हो कर उसे पैसा दे देते थे। यह देख कर तो मैं दंग रह गया। इस अनुभव को पचाना बहुत कठिन था। अपने ही समाज के उस नंगे सत्य को किस प्रकार निगल जाता! उस दृश्य को देखना एथेंस के सत्यार्थी जैसे अपनी आँख फोड़ना था। मुझे लगा जैसे आँख के सामने हजार–हजार बच्चे भिखमंगा बन कर, लोगों के पीछे रिरियाते दौड़ रहे हैं। बाप रे 'बा! यह तो भारी जुलुम है! अबोध बच्चों को भिखारी बनने से रोकना होगा। लेकिन यह काम आसान नहीं था। उन लोगों को अपनी बात समझाना बहुत कठिन था। बहुत दिनों तक उनकी बस्ती के आगे खड़ा रह कर उपाय खोजता रहा, कोई रास्ता नहीं मिल रहा था। आखिर एक दिन उनके बीच में पैठने का सुराग मिल ही गया।

भिखारियों की उस बस्ती के एक छोर पर जो झोपड़ी थी, उसमें एक स्त्री और उसके दो बच्चे रहते थे। वह स्त्री अन्य सभी से कुछ भिन्न थी। उसके दोनों बच्चे साफ–सुथरा रहते थे और उसकी अपनी साड़ी भी साफ रहती थी। उसके बच्चे दूसरे बच्चों की तरह नालों में बोहते नहीं रहते थे बल्कि अपनी जगह पर शांति से बैठे रहते थे। उस झोपड़ी पर जा कर मेरी खोज अँटक गई। वह स्त्री दिन में दो से तीन घंटे के लिए बाहर निकलती थी, वापसी में कुछ खाने की चीज लाती थी या अपनी जगह पर खाना बनाती थी और अपने बच्चों को समेट कर रखती थी। सपरते–सपरते एक दिन मैं उनके पास पहुँचा और उस स्त्री से कहा, "आप किसी तरह से भी भिखारिन नहीं लग रही हैं। आप कौन हैं?" उसने कहा, 'नहीं बाबू , मैं भिखारिन नहीं हूँ तो और क्या हूँ? दस घर माँग कर अपने बच्चों को पाल रही हूँ ; कपार में भगवान ने जो

लिख दिया, भोग रही हूँ।" मैंने उसे अपना परिचय और उद्देश्य बतलाया। मैंने वादा किया कि बिना किसी तरह की फीस लिए मैं उसके बच्चों को वहाँ जा कर पढ़ा दूँगा। आखिर उसे मेरे ऊपर भरोसा हुआ और उसने अपना परिचय बताया। वह जयनगर (मधुबनी, बिहार) के पास की एक ब्राह्मणी थी। उसका पति पगला गया था और जहाँ–तहाँ भटक रहा था। किसी ने कहा कि उसे लोगों ने दरभंगा में देखा था। उसीको खोजते–खोजते वह अपने बच्चों को लेकर, घर में जो कुछ था, साथ में रखकर दरभंगा चली आई थी। वह दिन भर अपने पति को खोजती फिरती थी। जब तक साथ का पैसा रहा, जैसे–तैसे कुछ खाकर बच्चों के साथ स्टेशन के प्लेटफार्म पर सो जाती थी। पैसा जब खतम हो गया तो क्या करती? कुछ घरों में माँगकर गुजारा करने लगी। स्टेशन के प्लेटफार्म पर भी लंबे समय तक नहीं रह सकती थी। आखिर भिखारियों की बस्ती में आ गई। मूल रूप से वह भिखारिन तो थी नहीं, इसलिए जब मैंने बहुत भरोसा दिलाया तो मेरा प्रस्ताव मान गई।

अपने प्रयास में सफलता से मैं बहुत खुश था। अगले दिन से ही मैं दोनों बच्चों को पढ़ाने लगा। सप्ताह दिन के भीतर ही बहुत बच्चे हो गए। हमारे इस नए स्कूल को सेंटर कहा जाता था। यह दस बजे से बारह बजे तक चलता था। मेरे मित्र जयशंकर साइकिल से मुझे वहाँ पहुँचाकर ट्यूशन पढ़ने चले जाते थे और बारह बजे से कुछ पहले वहाँ आ जाते थे। कुछ दिनों तक आने–जाने का यह क्रम चलता रहा लेकिन जब मित्र को सी एम कॉलेज में एडमिशन लेना पड़ा तो मेरे काम के आगे समस्या खड़ी हो गई। अब मुझे आने–जाने का इंतजाम खुद करना था। मेरे पास साइकिल नहीं थी। दस–ग्यारह किलोमीटर की दूरी पैदल तय करना तो किसी हालत में संभव नहीं था। मैं अपनी जिद भी छोड़ने को तैयार नहीं था। कुछ न कुछ उपाय तो करना ही था। मैंने एक कठिन फैसला ले लिया। मेरे पड़ोस में एक चाचा थे, उपेंद्र लाल। वह सरकारी नौकरी करते थे और बहुत अच्छे आदमी थे। मैंने उनसे दरभंगा में कोई काम खोज देने का अनुरोध किया। संयोग अच्छा था, उन्होंने दो दिन बाद ही बताया कि विनय अग्रवाल जी को अखबार (सर्चलाइट और प्रदीप) पहुँचाने के लिए एक हॉकर की जरूरत थी। दरभंगा स्टेशन पर उनका बुकस्टॉल भी था। मुझे अखबार पहुँचाने के बाद बुकस्टॉल खोलना और किताबें बेचना था। मैंने काम पकड़ लिया। यह मेरे जीवन की पहली नौकरी थी। काम तो अटपटा और काफी मिहनत का था, मिहनताना भी बहुत कम, लेकिन कहते हैं कि दिल लगाया तो दर्द भी उठाना होगा। मेरे लिए उस नौकरी को पकड़ने के दो खास कारण थे। पहला कारण तो मेरे सेंटर का बिलकुल पास होना था। अब सेंटर बंद करने की नौबत आने वाली नहीं थी। दूसरा आकर्षण ढेर सारी किताबों के बीच रहने और पढ़ने का था। विनय अगरवाल जी सर्चलाइट और प्रदीप अखबारों के एजेंट थे। मैं सुबह चार बजे अखबारों का बंडल साइकिल पर लाद कर लहेरिया सराय में टावर पर पहुँचता था और हॉकरों को अखबार बाँट कर वापस विनयजी के घर बंगलागढ़ पहुँचता था। वहाँ से खाकर मैं बुकस्टॉल पर आ जाता था। वहाँ मेरी व्यस्तता उस समय बढ़ जाती थी जब प्लेटफार्म नंबर दो पर कोई गाड़ी आती थी। हालाँकि विनयजी नहीं चाहते थे कि मैं भिखारी बच्चों को पढ़ाऊँ, लेकिन मैंने तो इसीलिए किसी का नौकर बनना कबूला था। उनकी नजर बचा कर मैं अपना काम करता रहा। उस समय मैं सतरह बरस का था।

सेंटर में बच्चों का मन लग गया था। वे जल्द ही कुछ पढ़ने लग गए थे। उनको पढ़ाने के लिए मैंने **"आखर"** नाम से तीस पेज की एक पुस्तक तैयार की थी जिसके पाठ उनकी जरूरत और हालत के मुताबिक ही बनाए गए थे। मैं अक्षर के साथ 'अक्षर–गीत' भी बनाता था जिसे बच्चे याद कर लिया करते थे।

मैं मानता हूँ कि हर समूह के बच्चों के लिए उनकी जरूरत के आधार पर पुस्तकें होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, हमारे इस सेंटर के बच्चों के अक्षर–गीत, भ म और झ अक्षरों के साथ ऐसा था ——

" भ से भीख नहीं मांगेंगे, म से मन में याद रखेंगे ;
झ की झिड़की बहुत बुरी है, हम भी भला जरूर बनेंगे।"

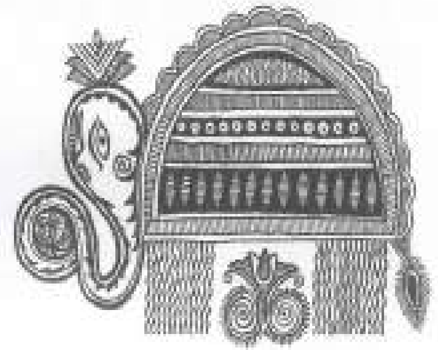
लगभग तीन महीने बाद की बात है। अब कोई बच्चा भीख माँगने नहीं जाता था। अब वे साफ–सुथरा रहने लगे थे। बहुत बच्चे पढ़ाई में अच्छे थे, लेकिन बच्चों के भीख नहीं माँगने से उनके परिवार की आमदनी घट गई। कई घरों में उपवास होने लगा। एक दिन पेट की यह आग ज्वालामुखी बन कर सेंटर को निगल गई। उस दिन मैं जब सेंटर पर गया तो सभी बच्चे आ चुके थे, केवल एक को छोड़कर। ननकू खाने के लिए रो रहा था। उसकी माँ चार दिनों से बीमार थी। उसके यहाँ रात में भी खाना नहीं बना था। अपनी माँ का पल्लू पकड़े वह लगातार रो रहा था। बच्चा तो सबों का दुलारा ही होता है, चाहे वह किसी भिखारी का हो या राजनेता का। भूख से बिलबिलाते अपने बच्चे का रोदन सुन कर कोई निरुपाय माँ खीज सकती है। उन दिनों क्या गरीब, क्या अमीर, अच्छे लोगों के घर में भी मिट्टी के बरतनों में ही खाना पकता था। इधर भात पकाने वाले मिट्टी के बरतन को 'कोहा' कहते हैं। ननकू लगातार ठुनक रहा था और उसकी माँ खीज कर उसे चपत लगा देती थी। जब उसे नहीं रहा गया तो वह एक हाथ में रिक्त कोहा पकड़ कर दूसरे हाथ से ननकू को घसीटते हुए मेरे सामने हाँफते हुए खड़ी हो गई। रोग और भूख से विवर्ण उसका मुँह क्रोध से और भी भयानक हो गया था। ननकू को घूँसों से मारते हुए उसने कहा, " मैं कहाँ से खाना ला कर तुमको दूँ ..... खाओ न इसी मस्टरबा का कोढ़–करेज (कलेजा) .....।" इतना बोल कर उसने माटी का वह कोहा जमीन पर पटक दिया। कोहा टुकड़ी–टुकड़ी हो कर चारों ओर छितरा गया। फूटे बरतन का एक टुकड़ा मेरे माथे से टकराया और घाव कर दिया। घाव से खून रिसने लगा। उस अप्रत्याशित घटना से मैं हतप्रभ था। मैंने सिर्फ इतना भर पूछा, "मैंने आपको क्या किया है कि इस तरह से बोल रही हैं?" वह और भी बिफरते हुए चिल्ला उठी, "तुमने नहीं किया है तो किसने किया है ..... सभी बच्चों को बिगाड़ दिया और बात कर रहा है ..... भिखारी के बच्चों को पढ़ाने आया है ..... वह पढ़ेगा कि भीख माँगेगा ...... तुम खाना दोगे? चल रे .....।" वह जिस प्रकार हनहनाते हुए आई थी उसी तरह लटपटाते, ननकू को घसीटते चली गई। दूसरे बच्चे मेरे कपार से बहता खून देखकर डर से जहाँ–तहाँ भाग गए। वहाँ फूटे बरतन के टुकड़ों के अलावा केवल मैं रह गया। मैं समझ गया कि भूख का हल निकाले बिना ऐसे बच्चों की पढ़ाई नहीं हो सकती है। भूख सभी सपनों को भकोस लेती है। मैंने उसी दिन विनय अगरवाल की नौकरी छोड़ दी; अब उसकी कोई जरूरत नहीं थी। मन में एक प्रश्न बहुत साफ था, भूखे लोग कैसे पढ़ेंगे? क्या, ऐसा कोई उपाय हो सकता है कि पढ़ाई के साथ कमाई भी हो सके, ताकि मजदूरी के काम में लगे बच्चे भी वह काम छोड़ कर पढ़ाई में लग सकें? जाहिर है, मेरे पास तो इस सवाल का जवाब था ही नहीं, शायद किसी के पास नहीं था।

लारी ऑफिस के कमरे में पड़े–पड़े मेरी आँखों के आगे खुद का देखा–भोगा समय सदेह साकार हो गया था। भूख मनुष्य की सब से विकट और दुर्निवार आवश्यकता है। इसके आगे प्रेम, सेक्स, विचार, आचार कुछ नहीं टिकता है। इस प्रश्न का जवाब खोजे बिना किसी भी तरह हरिजन, गिरिजन, वंचित जनों के

कल्याण की कोई योजना सफल नहीं हो सकती। इसके समाधान के बिना किसी प्रकार का स्त्री–विमर्श या दलित–विमर्श संभव नहीं है। इतना सोचने के साथ ध्यान बासमती की ओर चला गया। उसकी देह में बने गोदना के चित्र किसी अज्ञात आशा की झलकी लिए टुकुर–टुकुर ताक रहे थे, जैसे चित्र नहीं उसके सहस्त्र नयन हों। तीन वर्ष पहले मैंने जितवारपुर की महिलाओं के बीच 'हरिजन पेंटिंग' अथवा 'गोदना पेंटिंग' के रूप में इस देहचित्र की स्वीकार्यता और कमाल देख चुका था। क्या, दलित लोगों के इस चित्र–वैभव का उपयोग उनके सामूहिक हित के लिए किया जा सकता है? ऐसा कुछ हो सकता है कि इससे "पढ़ाई और कमाइ" की कोई योजना आकार ले सके? समाज के अंतिम सोपान पर खड़े, ठमके, उपेक्षित वर्ग की इस पारंपरिक कला–विधा का किसी विकल्प की तरह उपयोग हो सकता है? उन दिनों मैं ऐसी बातें सोचने में बहुत दूर तक नहीं जा पाता था। पता नहीं, आंदोलन के बाद क्या होगा। आंदोलन अगर सफल भी हो गया तो मैं अपनी बात सरकार तक पहुँचा भी पाऊँगा कि नहीं? सरकारें किसकी सुनती हैं? जो हो, करना तो कुछ न कुछ है ही। विचारों के इसी उठापटक में कभी नींद आ गई।

3

कल रात सोचते–सोचते काफी अबेर से सोया था, लेकिन नींद आने से पहले बासमती के गोदना में किसी तरह की आशा की अनजानी थपकी ने मन को निचिंतता की गरमाहट से भर दिया। बेखबर नींद उस समय टूटी जब दिन काफी चढ़ गया था। उठा तो मन हल्का और प्रफुल्लित था। मन खुश रहे तो काम भी जल्दी निपटता है, मगर सभी काम निपट जाने के बाद अगर किसी खास वक्त का इंतजार करना पड़े तो मन बहुत उकताता है। आखिर दिन बीता। मन में जल्दी मची थी, सो कुछ पहले ही उसके यहाँ चले गए। उसके यहाँ पहुँचे तो चित्त शांत और स्थिर था। वह साँझबाती करने के बाद हाथ–पैर धो रही थी। उसकी झोपड़ी का ओसारा मुश्किल से दो हाथ चौड़ा रहा होगा। पिढ़ई के नाम पर दो ईंट वहाँ रखी थी। मैं एक ईंट पर बैठ कर उसे देखने लगा। वह अपने गोदना वाले पाछ पर पानी की धार गिरा रही थी। इसके बाद आँचल के खूँट से उस पानी को हल्के पोछने के बाद वह आयी और दूसरी ईंट पर पोन रख कर बैठ गई। बोल कोई नहीं रहा था मगर दोनों एक–दूसरे को नजर भर देख रहे थे। उसकी आँखों में और होंठ पर स्मिति की एक छाप थी और मैं भी मुदित था। मैंने कहा, ''जरा देखूँ , अब पाछ कैसा लगता है?'' उसने अपनी दोनों बाँहों को पसारते हुए मेरी ओर बढ़ाया। मैंने दोनों हाथ थाम लिया। एक हाथ में मोर–मयूर और दूसरे हाथ में गट्टा से ऊपर हाथी गुदा हुआ था। दोनों हाथ के पहुँचा पर सुरमई लौंगलत्ती। गोदने का रंग तो करियौन हो रहा था मगर उसकी खोंटी अभी भी ललोन थी। मैंने सोचा, अभी कुछ दिन तक इसकी दवा चलनी चाहिए। मेरी नजर उसके बाँए हाथ की फद्दी पर बने हाथी पर थी। उसने पूछा, ''हाथी देख रहे हैं? यह 'मकुनी हाथी' है।''



''यह क्या होता है?''

''एक ठो फकड़ा नहीं सुने हैं..... मकुनी हाथी, चल बाराती, कितना दूर, माधोपूर, माधोपुर में कौन तमासा, ढोल–नगारा, पुड़ी–बतासा ..... ''

''इसका माने क्या हुआ?''

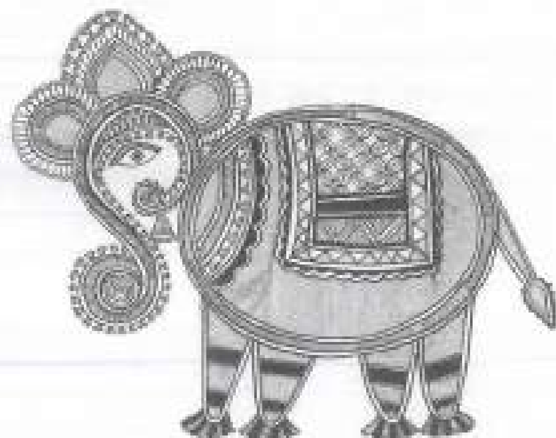
''माने तो बिलकुल साफ है..... देखिए, मकुनी हाथी चल बाराती, माने क्या हुआ? बारात लोग कब जाते हैं? जब घर में किसी की शादी होती है..... हँसी–खुशी का मौका होता है। लेकिन शादी कैसे होगी? जब बहुत रुपया–पैसा होगा। इसका मतलब हुआ बढ़िआ भाग–नसीब, बढ़िआ रुपैया–पैसा..... और माधोपुर का माने क्या? माधोपुर का माने भगवान का गाँव, जहाँ हर समय हँसी–खुशी बनी रहती है, मौज–मस्ती चलती रहती है, ढोल–नगारा, डंफा–बँसुली बजती रहती है..... नाच–तमासा होता रहता है और सभी लोग पूड़ी–मिठाई खाते रहते हैं ..... कोई भूखा नहीं रहता है। अब समझे?'' उसकी आँखों में पटुता का पुट और होंठों पर विजय की मुसकान थिरक रही थी। उसकी आँखों से सम्मोहन की झिलमिलाहट उझक कर बाहर आ रही थी। उसका शरीर थिर था मगर परंपरागत ज्ञान का तेज जैसे उसके रोम–रोम को आवेष्ठित कर

रहा था। मुझे उसके ज्ञान का सम्मोहन अपनी ओर जैसे खींच रहा था। मैंने कहा, "इसका अर्थ यह हुआ कि हाथी समृद्धि का प्रतीक है; संपन्नता का द्योतक है।"

उसने कहा, "आपने क्या कहा ..... समरी, परती और धोतक ..... यह तो मैं नहीं समझती हूँ , लेकिन एक ठो हाथी और है .....।" उसके मुँह पर चोरबानुकी खेल का बूझौअल धूपछाँह की तरह अटखेलियाँ कर रहा था। मैंने कहा, "वह हाथी भी दिखलाइए न!"

मेरी बात से वह बहुत लजा गई और मूँड़ी टेढ़िआ कर नाखून घिसने लगी। मैंने अंदाजा लगाया कि वह हाथी हो सकता है कि भीतरी किसी अंग पर गुदा होगा, इसीलिए वह लजा गई है। मैंने उसे परबोधते हुए कहा, "मैंने दिखलाने के लिए नहीं कहा है ..... उस हाथी के बारे में बताने को कहा है। उस हाथी को क्या कहा जाता है?"

उसने अपने मन में उछाह भरते हुए कहा, "उसको कहते हैं 'मतनी हाथी .....। वह मताने वाला हाथी है। वह किसी आदमी को मता देता है तो वह बेमत्त हो कर परेम करने लगता है।" वह आगे बोल नहीं पा रही थी। कोई ऐसी बात थी जो उसे बताते नहीं बन पा रहा था। मैं समझ गया। मुझे विद्यापति के गीत की दो पंक्तियाँ याद आ गईं, 'अमिअ सागर तुहु से राहि, मुकुंद मातंग बिहर ताहि।' "हे राधा, तुम अमृत के सागर के समान हो और मस्त हाथी की तरह कृष्ण उसमें विहार करते हैं।" ..... हाथी मस्त यौवन और बल का प्रतीक है, यह बात बताने के लिए उसके पास न तो सुगम शब्द थे और न उसकी मनस्थिति ही संकोचमुक्त थी। मुझे कामशास्त्र के आचार्यों का नायिका–निरूपण याद आया। भारतीय आचार्यों ने नायिकाओं की चार कोटि निर्धारित की है — पद्मिनी, शंखिनी, चित्रणी और हस्तिनी। हस्तिनी कोटि की नायिका की योनि प्रदीर्घ और उसकी प्रकृति अतृप्तकाम कही गई है। पता नहीं, इस श्रेणीकरण में कितनी वैज्ञानिकता है, किंतु साहित्य और कला का कामशास्त्र में दखल तो है ही।



मुझे गुमसुम और कुछ सोचता–सा देख कर उसने पूछा, "क्या, मैंने अनाप–सनाप कुछ कह दिया? माफ कीजिएगा, मैं तो पढ़ी–लिखी नहीं हूँ न!" मैं तो उसकी योग्यता पर मुग्ध था; उसे कैसे समझाऐं यह बात। मैंने कहा, "नहीं नहीं, ऐसी बात नहीं बोलिए। सही बात तो यह है कि आप पढ़े–लिखे लोगों से ज्यादा जानती हैं। इतना समझा कर आप हाथी और दूसरे चित्रों के बारे में बतलाती हैं, यह सब सुन कर मेरा भी ज्ञान बढ़ रहा है। मैं आपको सच कह रहा हूँ , जो बात आप बतला रही हैं, वैसी ही बात शास्त्र–पुराण में भी कही गयी है। इसीलिए तो मैं उन बातों पर विचार कर रहा था।" इतना सुनने के बाद उसे मेरी बात का भरोसा हुआ। ओसारे पर मच्छर बहुत लगने लगा था। मैं उसकी जीभ पर दवा गिराकर फिर कल शाम में आने की बात कह वापस आ गया।

दूसरे दिन ऑफिस के काम से बाजार जाना पड़ा। कुछ सामान खरीदना था। वापसी में सियाराम की दुकान पर कुछ खाने का मन हो गया। रेलवे लाइन से सटी उसकी दुकान थी। वहाँ पहुँचे तो रासबती को काम करते देखा। वह प्लेट–ग्लास धो रही थी। उसे वहाँ देख कर आश्चर्य हुआ, असल में मैं यह बात जानता नहीं था। मैं उससे कुछ पूछना ही चाहता था कि उसने कहा, "बैठिए माट्साएब, ई सियाराम मालिक हमरे ही तरफ के हैं न ..... हम तो इहाँ दस बरिस से काम कर रहे हैं ..... बैठा जाए ..... क्या सब दें? जिलेबी खाइएगा? समोसा भी अभिए बना है .....।" जलेबी की सुगंध मन पर फैल रही थी। मैंने दुकानदार से जलेबी और दो समोसे देने को कहा। जलपान करने के बाद चाय देने को कहा। एक लड़के ने चाय ला कर दी। मैं जब चाय पीने लगा तो रासबती मेरे सामने दूसरे बेंच पर बैठ गई। वह मेरी ओर ही देख रही थी। मैंने कहा, "चलिए, अच्छा हुआ आपसे भेंट हो गई। बहुत दिनों से आपको देखा नहीं था।" उसने कहा, " मैं तो बहुत सबेरे आ जाती हूँ न ..... दुकान खोलना रहता है, और रात में जाते–जाते बहुत अबेर हो जाता है। मैं भी कितने दिन से आपसे कुछ पराथना करना चाह रही थी।" मैंने कहा, " मुझे किसी बात के लिए प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है। जो कहना हो, निधोक कहिए।"

उसने मेरी ओर गरदन नमराते हुए थोड़ी धीमी आवाज में कहा, "माट्साएब, ई तो बड़ा–जेठा हैं, इनसे क्या छिपाना ..... बासमती के ससुराल से एक ठो खबर आई थी ..... ऊ लोग कहते हैं कि जब एतना दिन गौना नहीं हुआ तो अब एक साल और नहीं होगा। दुलहा अपने बाप के साथ पंजाब कमाने जा रहा है . ..... तब हमरे बाबूजी का बिचार है कि अगर गौना अभी होबे नहीं करेगा तो बासमती को दो अच्छर पढ़ाइ काहे न करबा दें। ऊहाँ के लोग भी कहेगा कि दुलहिन पढ़ी–लिखी है और माइ–बाप की इज्जत भी बढ़ेगी। यही सोच के मन में बिचार हुआ कि आप से बिनती करेंगे कि उसको कुछ पढ़ा देते, हम लोग तो गरीब आदमी हैं लेकिन आप जो मुँह से निकाल दीजिएगा, हम उससे पीछे नहीं हटेंगे।"

इतना बोल के रासबती तो चुप हो गई लेकिन मेरे लिए यह एक बड़ा प्रश्न था। मैंने उससे कहा, "आपने जो कहा उसके लिए प्रार्थना करने की कोई जरूरत नहीं है। किसी को पढ़ाने में मुझे अच्छा लगता है। दूसरी बात कि पढ़ाने के बदले में मैं किसी से रुपये नहीं लेता हूँ। मैं अपनी खुशी के लिए पढ़ाता हूँ। लेकिन आप तो जानती हैं कि मैं लारी ऑफिस में काम करता हूँ। इसीलिए मैं सोच कर जवाब दूँगा। बात है कि कब कहाँ जाना पड़ जाए, इसका कोई ठिकाना तो है नहीं। तब आप जो सोच रही हैं कि बासमती को पढ़ाना चाहिए, यह बहुत अच्छी बात है। वैसे पढ़ाई तो सबके लिए जरूरी है, लेकिन लड़कियों के लिए तो और भी जरूरी है। आपकी बहन तो इतनी समझदार है कि किसी पढ़े आदमी से भी बेसी जानती है। मुझे तो लगता ही नहीं है कि वह अनपढ़ है।"

"सो तो बहुत हुनरमंद है। हमारी नानी ने उसे बहुत कुछ सिखलाया। उसका गीत सुनिएगा तो मन होगा कि कलेजा में रख लें। एक पर एक खिस्सा ऐसा जानती है कि बड़े–बड़ों को नहीं मालुम होगा। दुआ कीजिए कि उसको अच्छा घर–वर मिले।"

वह कुछ और बोलना चाहती थी, लेकिन मुझे भी बहुत काम करना था। जलेबी, समोसे और चाय के पैसे चुका कर मैं चलने लगा तो रासबती एक ठोंगा में कुछ देते हुए फिर विनती के भाव में कहने लगी, "माट्साएब, हमको तो घर जाने में एतना लेट हो जाता है कि कभी कुछ ले भी नहीं जाती हूँ। आपको देखे

तो मन में हुआ कि थोड़ा समोसा–जिलेबी बच्चा सब के लिए भेज दें। आप तो जएबे कीजिएगा। मेहरबानी करके जरा ले जाइए।" मैंने उसके हाथ से ठोंगा ले लिया और सिर्फ इतना कहा, "कोई बात नहीं, मैं तो अभी दवा देने जाउँगा ही।"

डेरा आए तो वहाँ सभी लोगों से गपशप और हँसी–मजाक में थोड़ा समय लग गया। ध्यान उस ठोंगा पर ही लगा हुआ था। मन में होता था कि देर से जाने पर कहीं ठंढा हो जाएगा तो जलेबी का मजा ही खराब हो जाएगा। वहाँ से किसी तरह निकल कर सीधे बासमती के पास आ गया। बासमती अपनी बहन के दोनों बच्चों को ले कर चटा–पटा खेल रही थी। एक बच्चे के हाथ की उँगलियाँ पकड़कर वह बोल रही थी, "चटा–पटा, बौआ को पाँच ठो बेटा, यह गया गाय में, वह गया बकरी में, बिचला बेटा गया 'चुरोट कारखाना', ई गया लारी औफिस, बड़ा बेटा बैठा घर में .....।" उसकी गिनती जब हो गई तो मुझे हँसी लग गई। मैंने सोचा, लारी औफिस में तो मैं ही हूँ। इसका मतलब तो यह हुआ कि इसने मुझे भी अपने घर में समेट लिया है। सुनकर मुझे अच्छा लगा। इस अनजाने शहर में किसी ने तो अपना समझा। मैंने बासमती को उसका सामान दे दिया और बता दिया कि उसकी दुकान पर नाश्ता करने गया तो रासबती ने दिया था। उसने मुझे भी खाने के लिए बहुत आग्रह किया लेकिन मैंने बता दिया कि और खाने की इच्छा नहीं थी। मैंने उससे टॉर्च माँगा और कहा कि जब तक मैं धार की तरफ से लौटता हूँ ,वे खा लें। उसने टार्च दिया। मैं नदी की ओर चला गया।

पिछले कुछ दिनों से नदी की तरफ नहीं जा पाता था। जब से बासमती के यहाँ जाने लगा हूँ , समय ही नहीं मिल पाता था। नदी में पानी बहुत कम हो गया था। टपकर उस पार गया और एक ऊँची जगह खोज कर बैठ गया। आकाश में चाँद जितना बड़ा होना चाहिए उतना बड़ा ही रहा होगा, लेकिन मुझे अधूरा लग रहा था। ध्यान अपने गाँव में घर के लोगों की ओर चला गया। माँ–पिताजी, भाई–बहन, साल भर की बेटी और पत्नी से मिले कितने दिन हो गए। लोग अपने परिवार में ही उलझे रहते हैं और आनंद से जीते हैं। मैं निरर्थक ही भवजाल में पड़ा रहता हूँ। वहाँ से यहाँ, यहाँ से फिर कहाँ! पिछले दस–बारह वर्षों में कितने लोगों से संग हुआ, रहा तो कोई नहीं। अपना घर–संसार छोड़ कर दुनिया के लिए कौन चिंता करने जाता है! आज का समय ऐसा नहीं है कि दूसरों के लिए अपना जीवन लगाया जाए। कोई दूसरों के लिए ही सोचता रहेगा तो अपनी माँ–बहन के लिए क्या कर सकेगा? दूसरी बात यह है कि किसी को साथी बनाना बुरा नहीं है मगर इतना तक ही रहना चाहिए कि मिलने पर दुआ–सलाम हो जाए। ज्यादा दिल लगाने पर अच्छा तो लगता है लेकिन जब बिछोह होता है तो वही जीवन कितना कठिन हो जाता है? इससे तो अच्छा यही है कि न सटेंगे, न रोयेंगे। और यह बासमती? इसके साथ भी तो सटे ही जा रहे हैं। आज ही इमरजेंसी खतम हो जाएगी तो मैं भारत जाउँगा कि यहीं बैठा रहूँगा! मुझे उसकी बहन ने दवा देने के लिए कहा, दवा दे दी, और दो–चार दिन दे देंगे; बस, मेरा काम खतम। अब इसकी बहन पढ़ाने के लिए कह रही है। यदि पढ़ाने लगूँगा तब तो फिर वही बात होगी। तब क्या करें? नहीं पढ़ावें? सो कैसे होगा! जिस पढ़ौनी के लिए मैंने क्या–क्या नहीं किया, उसीका आमंत्रण ठुकरा दूँ? यह तो बहुत मुश्किल है! अब तो एक संभावना और बढ़ गई है। उसके पास गोदना का भंडार है। इस गोदना का चमत्कार तो जितवारपुर में देख ही चुके हैं। वहाँ की हरिजन स्त्रियों के लिए तो यह गोदना जीने का साधन बन गया। बासमती की देह में उस गोदना का इतना बड़ा खजाना है कि कितने लोगों का भला हो जाएगा। सो तो है, मगर यह खजाना उसका निजी है। उस वैभव का दर्शन सभी कोई नहीं कर सकते हैं। लोगों के लिए यह दुर्लभ है। बासमती

के अलावे इस चीज को मात्र उसका पति देख सकता है, छू सकता है या हँसोथ सकता है। यह बाबाजी का बेल नहीं है कि जो चाहे ले जाए। कहता है, पेड़ में बेल पका है, तो इससे कौआ को क्या?

नदी पार के एकांत में आखिर कितनी देर अकेले बैठे रहते। दवा भी देनी थी। वापस चले आए बासमती के पास। लौट के आए तब तक वह खा चुकी थी। दोनों बच्चा भीतर कोठली में सो चुका था। मैं सोच ही रहा था कि कहाँ बैठूँ इतने में बासमती ने एक चटगुनी ओसारे पर रख दिया। मैं खंभे से ओठंग कर चटगुनी पर बैठ गया। वह भी ईंट पर पैर मोड़ कर बैठ गई। कुछ देर तक मौन बना रहा, फिर उसीने मौन तोड़ा, "दीदी कुछ कहती भी थी?" मैंने अनठिया दिया, "कोई खास बात नहीं।" बात का कोई छोर पकड़ में नहीं आ रहा था। मुझे लगा, वह कुछ सोच रही थी। मैंने अनुमान लगाया, मेरे बारे में ही सोचती होगी; मैं भी तो उसके लिए अभी तक अपरिचित ही था। मैंने कहा, "क्या सोचने लगी? मुझे लगता है कि आप मेरे बारे में कुछ सोच रही हैं।"

उसने हँसते हुए कहा, "आपने ठीक ही कहा। सुनते हैं कि जो लोग ज्यादा पढ़े-लिखे होते हैं, वे दूसरे के मन की बात जान जाते हैं।"

"ऐसी कोई बात नहीं होती है। पढ़ने-लिखने से कोई किसी के कलेजे में थोड़े घुस सकता है। एक माँ जान जाती है कि उसका बच्चा हगना चाहता है या मूतना। यह ज्ञान मन में पैठने से होता है। जो जिसके मन में पैठ बना लेता है, वही उसके मन की बात का अंदाजा लगा सकता है। खैर, आप अपनी बात पूछिए; बिलकुल साफ-साफ।"

"आप तो किसी स्कूल में मास्टर हैं न, तो फिर लारी ऑफिस में क्यों काम करते हैं? ..... मैं तो आपका नाम भी नहीं जानती हूँ .....।" बासमती की जिज्ञासा स्वाभाविक थी। उन दिनों जनकपुर और नेपाल के दूसरे भागों में बिहार तथा उत्तर प्रदेश से अनगिनत आंदोलनकारी भागकर रह रहे थे। नेपाल और भारत के बीच में सीमा खुली हुई है और हमेशा से लोग इधर से उधर होते रहे हैं। खास कर जब कोई आदमी पुलिस से बचना चाहता है तब तो इस पार से उस पार हो जाना सुरक्षा की दृष्टि से बहुत फायदेमंद रहता ही है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वहाँ के लोग ऐसे लोगों के प्रति उत्सुक नहीं रहते हैं। वहाँ के लोग भी जानना चाहते हैं कि इस नए आदमी के पीछे की कहानी क्या है। मेरे बारे में भी लोगों में उत्सुकता थी मगर मैं विश्वंभरजी का रिश्तेदार था, अधिक लोग यही जानते थे। काठमांडू में रहने वाले एक जानकार व्यक्ति ने मुझे बताया था कि राजा यद्यपि कि भारत-नेपाल संधि के कारण कुछ अन्यथा व्यवहार नहीं कर सकता था, लेकिन इमरजेंसी के दिनों में राजदरबार में ऐसी आशंका जरूर उठी थी कि आंदोलनकारियों के जमावरे से कहीं राजतंत्र के विरुद्ध कोई हवा न बनने लगे। इस आशंका को लेकर प्रशासन को सतर्क किया गया था। जो हो, मैं भी सतर्क था। मैंने सहज रूप से बासमती को उत्तर दिया, "आपने ठीक ही पूछा है। जो जिसके साथ उठते बैठते हैं, उनको परस्पर एक-दूसरे से परिचित होना ही चाहिए। लेकिन कभी-कभी जब कोई आदमी अपना परिचय जान-बूझ कर छिपाना चाहता है तब बात थोड़ी कठिन हो जाती है। मेरे साथ भी ऐसी ही बात है। एक कहावत है, जो दिखता है वह है नहीं और जो है सो दिखता नहीं है।"

उसका मुँह देखने से लगता था कि मेरी उलझी बातों को उसका दिमाग ले नहीं रहा था। मैं पहली बार नेपाल में किसी को अपने अज्ञातवास की बात बताने जा रहा था। मैंने उससे कहा, "आप मेरे बारे में

जानना चाह रही हैं, आपकी इच्छा को मैं टाल भी नहीं सकता हूँ मगर यह बात मैं छिपा कर रख रहा था। मैं अपने देश की सरकार से छिप कर रह रहा हूँ , इसीलिए अपना असली नाम भी बदल कर ही रखे हुए हैं। यहाँ नेपाल में राजा को लोग भगवान का रूप मानते हैं और भगवान की तरह ही उसका आदर करते हैं। राजा पूरे देश का अकेला स्वामी होता है। वह जो कुछ बोलता है, वही कानून है; मुखे अइन छ, लेकिन भारत में कोई एक आदमी देश का स्वामी नहीं हो सकता। वहाँ जनता का राज चलता है। देश को चलाने के लिए वहाँ लोग अपना प्रतिनिधि चुनते हैं और वे चुने हुए लोग आपस में मिल कर देश का नियम–कानून बनाते हैं। पहले आप यह बताइए कि इतना कुछ समझती हैं या नहीं। यदि थोड़ा भी यह सब समझती होंगी तभी मैं पूरी बात बता पाऊँगा।''

उसने तपाक से कहा, ''हाँ हाँ, इतनी बात तो समझती हूँ ..... मैं भी तो उसी पार की हूँ न ..... मेरी माँ भोट देने गई थी तो मैं भी उसके साथ गई, लेकिन नेपाल के बारे में ज्यादा नहीं जानती हूँ ..... मेरे बहनोई जब दारू पिए रहते हैं तो बोलते हैं, 'हामी हरू राजा को गोरू हुनु हुंछ ..... हम लोग राजा के बैल हैं .....।'' अपने बहनोई की बात कहकर वह हँसने लगी।

''आप बिलकुल ठीक समझती हैं। तो देखिए, भारत में भी आजकल नेपाल जैसी हालत ही वहाँ की सरकार बनाना चाह रही है। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने देश का कानून और लोगों की आजादी अपनी मुट्ठी में बंद कर लिया है। वह देश की मालकिन बनना चाह रही हैं। इसी इच्छा से उसने देश पर इमरजेंसी नाम का कानून लगा दिया है। जब तक इमरजेंसी का कानून देश पर लगा रहेगा, जनता की आजादी खतम ही रहेगी। कोई आदमी सरकार के किसी फैसले का विरोध नहीं कर सकता। कोट–कचहरी भी सरकार के गलत फैसले पर विचार नहीं कर सकती है। लेकिन सरकार के इस कदम का पूरा देश विरोध कर रहा है। जनता बहुत दिनों तक जबरदस्ती का राज बर्दाश्त नहीं कर सकती और सरकार विरोधियों को बर्दाश्त नहीं कर रही है। सरकार के पास तो बहुत ताकत होती है। उसके पास सेना और पुलिस भी होती है। सरकार का विरोध करने वाले हजारों लोगों को पुलिस ने जेल में बंद कर दिया है। इतना ही नहीं, जेल में बंद लोगों को सरकार बहुत दुःख दे रही है। लेकिन लोग भी मानने वाले नहीं हैं। मेरे जैसे हजारों लोग सरकार का विरोध कर रहे हैं और सरकार की पुलिस ऐसे लोगों की धड़पकड़ में लगी रहती है। बहुत लोग अपनी इच्छा से भी जेल भर रहे हैं और बहुत लोग जेल नहीं जाना चाहते हैं। मेरे जैसे लोग जेल जाने से बचना चाहते हैं ताकि सरकार का विरोध जारी रहे। हमारे जैसे लोग पुलिस से भाग रहे हैं और पुलिस हम लोगों को खदेर रही है। अपने यहाँ के बहुत बड़े–बड़े नेता जनकपुर में और नेपाल के दूसरे शहरों में रह रहे हैं। एक तरह से ये सभी लोग छिप कर रह रहे हैं। मैं भी छिप कर ही रह रहा हूँ , इसीलिए अपना नाम भी बदल लिए हैं; वैसे मेरा नाम कश्यप है।''

उसके चेहरे के भाव से लगता था कि वह बात ठीक से समझ रही थी। उसकी आँखों में मेरे लिए आदर की झलक बिलकुल साफ थी। मेरा नाम कुछ टेढ़ा है। पहली बार उसने मेरा नाम सुना था। मुझे लगा, याद करने के ख्याल से उसने मेरा नाम फुसफुसा कर दुहराया, कश्यप .....। उसे भरोसेमंद देख कर मैंने फिर कहना शुरू किया, ''अब मैं आपके दूसरे सवाल का उत्तर देना चाहता हूँ कि मैं किस तरह का मास्टर हूँ। आपको यह बता दें कि मैं किसी सरकारी स्कूल में मास्टर नहीं हूँ , बल्कि अपने मन का मास्टर हूँ। मैं सरकारी नौकरी नहीं करना चाहता हूँ लेकिन लोगों की मदद करना चाहता हूँ। यह तो आप भी जानती होंगी

और गाँव–घर में देखती होंगी कि आप जैसे बहुत लोग ऐसे हैं जिनका नाम स्कूलों में नहीं लिखा सकता। अगर स्कूल आप जैसे लोगों को पढ़ाना भी चाहे तो भी नहीं हो सकता, क्योंकि वहाँ की पढ़ाई ही ऐसी है। दूसरी ओर जो मजदूरों के बच्चे हैं वे बचपन में ही मजदूरी करने लग जाते हैं और जीवन भर बिना पढ़े रह कर बदहाल जीवन जीते हैं। मेरे मन में एक बात और है। मैं समझता हूँ कि आज जिनको लोग निरक्षर या अनपढ़ कहते हैं, ज्ञान तो उनके पास भी है। ऐसे लोगों के पास तरह–तरह के हुनर और कला हैं जिसकी बदौलत ये लोग कठिन हालत में भी जिंदा रहे हैं। इस बात को आप ऐसे भी समझ सकती हैं कि आपकी देह में कितने सुंदर गोदना के चित्र हैं, और उन चित्रों के माने–मतलब कितने बड़े हैं। इस तरह के ज्ञान को परंपरागत ज्ञान कहते हैं। इस तरह के ज्ञान पुराने जमाने से चला आ रहा है और नानी–दादी से ही लोग बचपन से इस ज्ञान को पा लेते हैं। मैं समझता हूँ कि इस तरह के ज्ञान को यदि पढ़ाई के ढाँचे में बदल दिया जाय तो समाज के बहुत वंचित लोगों को फायदा हो जाएगा।"

मैं लगातार बोलते तो जा रहा था लेकिन मन में एक संदेह भी हो रहा था कि बासमती जिस सामाजिक परिवेश से आती है, उसके कारण वह इन बातों को समझ पा रही है या नहीं। दूसरी बात यह भी कि अगर वह समझ भी पा रही है तो इन बातों में उसकी रुचि है या नहीं। यदि रुचि नहीं हो तो अधिक बात करना जरूरी नहीं है। लेकिन उसकी देह पर गुदे गोदना की महत्ता पर मैंने जो कुछ कहा इससे उसका उत्साह बढ़ गया। समाज की बड़ी समस्या को भी जब आप संबद्ध लोगों की समझदारी से जोड़ देते हैं तो विषय की दुरूहता समाप्त हो जाती है, बल्कि उस समस्या के निदान के लिए वही अनपढ़ लोग जो उपाय बताते हैं वह पढ़े–लिखे लोगों के निदान से कहीं श्रेयष्कर होता है।

गोदना के संबंध में प्रशंसा से मुझे लगा कि वह बहुत उत्साहित हुई। एक तरह के आत्मविश्वास के इजोत से उसकी आँखें झिलमिला उठीं। उसकी बोली में हुलास छलक उठा, "चित्रकारी के काम के बारे में तो मैं सुन चुकी हूँ। इसको 'मधुबनी पेंटिंग' कहा जाता है। मधुबनी के कुछ गाँवों में इस काम का बड़ा जोर है मगर सभी जाति की औरतों को इस काम से कोई फायदा नहीं है। मेरे गाँव की एक बहन का ससुराल उसी तरफ है। उन लोगों को पेंटिंग का काम नहीं मिलता है।"

मुझे यह जान कर बहुत प्रसन्नता हुई कि उसे 'मधुबनी पेंटिंग' की चलती के बारे में पता था। संयोग अच्छा था कि उसके गाँव की एक स्त्री भी जितवारपुर के बगल वाले एक गाँव में रहती थी जहाँ चित्रकला का उद्योग चल रहा था। मैंने उसे बताया कि यह बात सच थी कि पहले उन गाँवों में हरिजन स्त्रियों को पेंटिंग का काम नहीं दिया जाता था लेकिन हाल की खबर यह है कि अब हरिजन स्त्रियाँ भी 'गोदना पेंटिंग' नाम से चित्र बनाने लगी हैं। रात अधिक हो गई थी, इसलिए मैं बाँकी खिस्सा कल बताने की बात कह कर विदा हो गया।

कुछ दिनों से उसके यहाँ जाते–जाते शाम के समय में उधर जाने की जैसे आदत ही होती जा रही थी। ऐसी बात नहीं है कि इस बात पर मेरा ध्यान नहीं गया था, लेकिन इसमें मुझे अनुचित या अनसहत कुछ नहीं दिखा। अगर सच पूछिए तो इस विषय पर मैंने गंभीरता से विचार भी नहीं किया था। जब कभी अपनी दिनचर्या में इस काम के जुड़ जाने पर विचार करने के लिए मन में प्रश्न उठे भी तो मन के किसी कोने में छिपी बुद्धि तर्क करने लगती थी; एकाध हप्ते की बात है, गोदना का पाछ दो–तीन दिन में सूख

जाएगा, इसके बाद न उसे दवा की जरूरत रहेगी, न मैं जाऊँगा। लेकिन नहीं जाने की बात मन में उठते ही रिक्ति का भाव पनपने लगता था। कई बार मैंने अनुभव किया, दिमाग इस विषय पर विचार करने के लिए तैयार नहीं था, मगर मस्तिष्क ने विषय को खारिज नहीं कर दिया था। कभी किसी संवेदना, कभी कोई संभावना और कभी मात्र एक संयोग मान कर बात फिर इधर–उधर हो जाती थी। फिर मन ही समझाता था, अपने में संयम रखें तो कहीं जाने में हर्ज नहीं है।

उस दिन जब बासमती के आँगन में पैर दिए तो कुछ अबेर हो गया था। वह ओसारे पर बैठ कर गोदना की छोटी बुट्टियों से भरे अपने पैर में तेल लगा रही थी। मलसी में रखा तेल मुझे लगा कि मलहम जैसी कोई दवा है इसीलिए पूछा, "यह क्या लगा रही हैं?"



"यह कपूर मिला नारियल का तेल है। इससे मलने पर खुजलाहट नहीं उठती है और पाछ भी ठीक से उखड़ता है।" इतना कहकर वह चुप हो गई। उसके हाथ–पैर से उठते कपूर की गंध अच्छी लग रही थी। उसने बाँह में तेल मलते हुए कुछ सकुचाहट के साथ कहा, "जहाँ तक हाथ पहुँच पाता है, वहाँ तक तो ठीक है ..... एक जगह नाखून से थोड़ा नछोर लग गया है .....।"

मैंने चिकित्सा दृष्टि से शंकित हो कर कहा, "नाखून से नछोर लगना अच्छी बात नहीं है। कहाँ लग गया है?"

उसने संक्षेप में ही कहा, "..... पीठ पर ..... वहाँ सीधा हाथ नहीं पहुँचता है न ..... वहाँ तेल भी नहीं लग पाता है; इसलिए खुजलाता है बेसी। जब खुजलाने का मन होता है तब किसी न किसी चीज से खुजलाना ही पड़ता है। नहीं खुजलाइए तो चैन ही नहीं पड़ता है। इसी में कहीं नछोर लग गया।"

"अपनी दीदी से क्यों नहीं कहती हैं?"

"वह तो बहुत सबेरे से हड़बड़ी में रहती है दुकान जाने के लिए। दूसरी बात यह है कि उस समय मेहमान घर में रहते हैं .....।"

मुझे अनुभव हुआ कि चर्चा हो जाने के कारण उसकी पीठ में खुजलाहट और बढ़ गई होगी। यह सच है कि जब देह के किसी भाग में खुजली उठती है तो बिना खुजलाए चैन नहीं पड़ता है। मैं भारी दुविधा में था। एक तरफ सोचता था कि उसकी पीठ थोड़ा हँसोथ ही देंगे तो क्या होगा! दूसरी ओर किसी स्त्री की पीठ सहलाना, सोच कर ही मन सकुचा रहा था। वह मूँड़ी झुकाए शायद मेरे जवाब की प्रतीक्षा कर रही थी।

कुछ देर तक मन में गुनधुन चलता रहा। आखिर कुछ कहना तो था ही। मैंने कहा, "मैं तो हँसोथ देता, लेकिन मुझे संकोच हो रहा है .....।"

मेरी बात से उसके मन में जो प्रतिक्रिया हुई उसकी झलकी बहुत महीन थी लेकिन मैं समझ गया। उसने बिना किसी तीखेपन के कहा, "इसमें संकोच और लाज की तो कोई बात नहीं है, तब अपना–अपना स्वभाव। वैसे आप अगर डाक्टर होते तब रोगी के हाथ–पैर या दूसरे अंग को देखते–परिखते कि नहीं ....?"

उसकी बात उचित ही थी। इस बात से मेरा साहस कुछ बढ़ा। मैंने कहा, "सो तो मैं भी समझता हूँ कि इसमें लाज करने की कोई बात नहीं है। खास कर जब मैं आपको उसी चीज की दवा दे रहा हूँ तब तो मुझे देखभाल करने में हिचकना नहीं चाहिए ..... फिर भी किसी स्त्री की उघरी पीठ को हँसोथना थोड़ा अटपटा लगता है कि नहीं?"

मेरी बात सुन कर उसने अनमने स्वर में कहा, " हाँ, आपको अटपटा लग सकता है, क्योंकि यह भी छोटे और बड़े लोगों जैसी बात ही है ..... दुसाध–मुसहर की देह तो उघार ही रहती है, चाहे जनीजात रहे आ कि कोई मरद ..... दुसाधिन सब तो फाँड़ा बाँध के ईट भट्ठा पर चली जाती है और दिन भर देह धुन कर खटती है ..... दस–दस ठो ईटा माथे पर थकिया कर धूप में दौड़ती रहती है, पँजरे में सटा भूखा पेट ..... पसीने से लथपथ, सुरखी और राख से पोताई हुई। ईंटों के थाक को सम्हाले उसकी बाँह जब रस्सी की तरह ऐंठ जाती है, तब उसकी जांघ और पेट को कौन देखता है? वहाँ जो कोई भी होता है सब एक ही दौड़ में जुटा रहता है। जितनी ईंट जो रेजिन ढोएगी, उतनी ही कौड़ी उसे मिलेगी और कौड़ियों को जोड़ कर सात दिन पर पैसा। इस दौड़ा–दौड़ी में जब किसी की पीठ पर ईंटों का थाक भरभरा कर गिर पड़ता है या किसी रेजिन के पैर में ठेस लग जाती है, अँगूठा थकुचा जाता है और वह मुँह के बल सुरखी से भरी धूल में गिर पड़ती है, उस समय जो पास में होता है वही उसकी देह हँसोथते हैं; चाहे वह औरत हो या मरद .....।"



मैं उसके भोगे हुए सत्य से आगे कोई तर्क नहीं रख सकता था। मैं उसके सामाजिक–आर्थिक विश्लेषण से अवाक था। ओसारे पर ठंढ बढ़ने लगी थी। वह हाथ में तेल की माली ले कर कोठरी के भीतर आ गई। मैं भी उसके पीछे आ कर बिछावन पर बैठ गया। वह मुझसे अधिक सुलझी हुई थी। उसने कहा, "जब किसी चीज को अपने तरीके से लोग देखते हैं तभी झिझक होती है। आप समझिए कि कुछ भी नहीं देख रहे हैं। आँख मूँद लीजिए और जरा पीठ हल्के से खुजला दीजिए।" इतना बोल कर वह मेरे नजदीक चली आई और फिर कहा, "आप अपनी आँख मूँदिए तो .....।"

मैंने किसी आज्ञाकारी बच्चे की तरह आँखें मूँद ली। बंद आँखों से दिखता भले ही नहीं हो, कुछ अनुमान तो लग ही जाता है। चूड़ियों की झनझनाहट से पता लग रहा था कि उसने अपनी बाँहें ऊपर की होंगी; शायद ब्लाउज निकालने के लिए। इसके बाद उसने सपाट स्वर में कहा, "मैं आपके पास में ही बैठी हूँ ..... हाथ बढ़ाइए और मेरी पीठ पर धरिए ..... थोड़ा खुजलाते हुए .....।" वह क्षण मेरे जीवन का एक अविस्मरणीय कठिन क्षण है जिसे भुलाना और बताना, दोनों बहुत मुश्किल होता है। मैं आँख बंद किए उसकी

पीठ पर हाथ इधर से उधर कर रहा था, धीरे–धीरे। मन की थरथरी हाथ में पैठ कर और भी दुगनी हो रही थी। वह समझ गई और पूछी, "आपका हाथ क्यों काँप रहा है?" तभी बासमती ने फिर कहा कि एक बड़े फतिंगे ने उड़ते–उड़ते ढिबरी बुझा दिया। घर में घुप्प अंधेरा हो गया होगा लेकिन बंद आँख वाले के लिए अंधेरा क्या, उजाला क्या! अंधेरे के अहसास से इतना जरूर हुआ कि अभी भी मेरे भीतर बचे संकोच की आँच थोड़े मद्धिम हो गई। मेरी उँगलियों के पोर अब पीठ पर गोदना के उभारों को ठीक से अँटकार रहा था। जैसे किसी बाँस के फट्ठे से चाँछ लग जाता है और चाँछ के सूखने पर पतले धागे की तरह उसके चिन्ह रह जाते हैं, उसकी पीठ वैसे ही चिन्हों से भरी लगी। मेरा एक हाथ कोल्हू के बैल की तरह बस पीठ की सीमा में घूम रहा था। उसने कहा, आप समझिए कि कुछ देख नहीं रहे हैं। मैंने मन को समझाया, वह चाहती है कि मैं महसूस भी नहीं करूँ। यह बात बहुत कठिन थी। यह सच है कि मैं उस स्पर्श के अनुभव को रोक नहीं पा रहा था और मेरा हाथ एकाध बार पीठ की सीमा का अतिक्रमण कर गया था। मैंने उससे कहा, "अब मैं आँख खोल लेता हूँ।" उसने कहा, "मैं फिर कहूँगी, आप समझिए कि कुछ देखते नहीं हैं; आँख खोलना चाहते हैं तो खोल लीजिए और अँगूठे को थोड़ा टेढ़िया के ऊपर से नीचे कीजिए।"

देह–मर्दन से उपजे बवंडर में मैं फँस तो गया था, लेकिन उससे बच निकलने का मार्ग नहीं मिल रहा था। उसकी पीठ पर फिसलते हाथ इधर–उधर बहक रहे थे, सो मैं जान रहा था; हाथ जितने ही बहक रहे थे, मैं बवंडर में उतना ही फँसता जा रहा था। बासमती की पीठ के रोयें किसी वैद्युतीय आवेश से ऊर्जस्व हो गए थे जिसके छुवन से मेरा गला सूख रहा था। सम्हाला बासमती ने ही, "अब पहले ढिबरी लेसने दीजिए ..... अंधेरे में बड़ा अटपट लग रहा है।" वह वस्त्र सम्हालकर खड़ी हुई, टॉर्च खोजा, दीयासलाई खोजी, तब ढिबरी जलाया।

मैंने उससे पानी माँगा। उसने लोटे को पखार–अखारकर घैला से पानी निकाला। छाक भर पानी पीने के बाद लगा जैसे अपने में वापस लौटा। बचे पानी को उसने फेंका नहीं, पी लिया। पानी पीने से मन तो थिर हुआ लेकिन उससे नजर मिलने पर लगता था जैसे एक बेचैन हलचल फिर कहीं से अंदर पैठ बनाना चाह रही है। अब मैं अपनी हालत समझने लगा था। जी कड़ा किया तो फिर सब काबू में आ गया।

हम दोनों आमने–सामने बैठे थे। उसके केस अस्त–व्यस्त, मुँह पर छितराए थे। ढिबरी के मद्धिम उजास में वह किसी महायोगिनी की तरह रहस्यमयी लग रही थी। क्या है इसके मन में, कभी मैं समझ पाऊँगा? मैं उस समय भी दुविधा–ग्रस्त था, लेकिन उसकी मुखाकृति पर द्वन्द्व की कोई छाँह नहीं थी। उसने मेरी ओर ताका और मद्धिम आवाज में कहा, "पिछले कुछ दिनों मे आपने अपने बारे में जितना जो कुछ बताया, उससे मेरी समझ और उमर दोनों लगता है कि दोबाला हो गयी। आपने कहा कि मेरी देह में जो गोदना है, उससे हजारों औरतों की गरीबी दूर हो सकती है। पहले तो मैं आपकी बात का मतलब नहीं समझ सकी, लेकिन फिर जब अपने गाँव वाली लड़की की बात याद पड़ी तो कुछ–कुछ समझने लगी हूँ। उसकी भी वहीं शादी हुई है, आपके ससुराल वाले गाँव के आस–पास। उसीने बताया कि अब गोदना से भी पेंटिंग बनने लगा है और हरिजन औरत सब उससे कमाने लगी है। वह आपका नाम तो नहीं जानती थी लेकिन इतना जानती है कि दरभंगा वाले एक मेहमान ने यह तरीका शुरू कराया था।

मधुबनी के जितवारपुर गाँव में मेरे द्वारा बिना बहुत कुछ सोचे, 'गोदना पेंटिंग' के आगाज की वह घटना मेरी आँखों में बड़ी बात बन कर कौंध गयी। मुझे यह जानकर अच्छा लगा कि बासमती को गोदना से जुड़ी उस चमत्कारी घटना की जानकारी थी। मैंने पूछा, "गोदना पेंटिंग के बारे में आपको और क्या–क्या मालूम है?"

मेरे प्रश्न से उसका उत्साह बढ़ गया। उसने तपाक से कहा, "यह बात तो आग की लुत्ती के जैसे चारों तरफ फैल गयी ..... आप कैसे नहीं जानते हैं? कोई इसको 'हरिजन पेंटिंग' कहता है ..... कोई गोदना पेंटिंग कहता है और कोई इसको 'देह की छाप वाला पेंटिंग' कहता है। हरिजन औरतों को तो यह बहुत बड़ी चीज मिल गयी है लेकिन इससे भी सभी को फायदा होने वाला नहीं है .....।"

मुझे उसकी बात से थोड़ा अचंभा हुआ। मैंने पूछा, "सो काहे?"

वह किसी अनुभवी योजनाकार की तरह थोड़े गंभीर स्वर में बोलने लगी, "बात यह है कि सभी औरतों की देह पर बहुत गोदना नहीं रहता है ..... बहुत लोगों को हाथ पर ..... बाँह पर ..... किसी–किसी को छाती पर ..... और कहीं थोड़ा बुट्टा–बुट्टी ..... बस। इतनी ही छाप को कोई औरत पेंटिंग के नाम पर कितनी बार उतारती रहेगी? सरकार भी तो नया–नया छाप माँगेगी ..... अब तो कोई औरत अपना छाप किसी को उतारने भी नहीं देगी ..... जब इस छाप से पैसा उपजेगा तब तो सब कोई अब इसको झाँप कर रखेगी। ऐसे में सभी औरतों का काम कैसे चलेगा? जिस औरत की देह पर बहुत छाप नहीं है वह क्या देख कर कागज पर बनाएगी? ऐसे में यह रोजगार आगे कैसे बढ़ेगा?"

बासमती की बात सही थी। इस हालत में यह रोजगार आगे नहीं बढ़ सकता था। मेरे दिमाग में इसका कोई उपाय नहीं था। इस संबंध में मैंने कभी कुछ सोचा भी नहीं था, लेकिन बासमती इसको लेकर संजीदा थी। उसने बताया, "जब यह पता लग गया है कि गोदना की छाप से हरिजन औरतें भी इज्जत से और आराम से कमा सकती हैं तब तो इस काम को आगे बढ़ाना ही चाहिए। कोई ऐसा उपाय तो जरूर खोजना चाहिए कि काबिल और बेलूरी सभी जनी–जात इस कमाई में लग सकें। दिन भर ईंटभट्ठा में खटने से तो अच्छा होगा कलम से कमाई करना ..... पैसा भी कमाएगी और इज्जत से रहेगी ..... लेकिन यह होगा कैसे? कल रात आप तो चले गए, लेकिन मेरा दिमाग इस सोच–बिचार में ऐसा फँसा कि खाना भी नहीं खायी और ठीक से सो भी नहीं पायी। एक मन होता था कि जब आप जानते हैं कि इस गोदना से हजारों गरीब औरतों का भला हो सकता है तो बिना हुज्जत के यह सब आपको दे दें ..... लेकिन दें कैसे? जो चीज देह के पोर–पोर में गोदाया हुआ है सो किसी मरद को कैसे दे दें? उसके आगे देह को कैसे उघारें? क्या कहेगा देखने वाला? जो देखेगा या कि देह को छूएगा, वह ऐसे ही तो नहीं छोड़ देगा! फिर आपके तरफ ध्यान गया तो डर नहीं लगा, लेकिन अंदेसा जरूर हुआ ..... आप यह सब देखने–छूने के लिए तैयार होइएगा कि नहीं, सो भी मुसकिल लग रहा था। आपका हाल देखिए रहे हैं कि देह छूने से ही गला सूखने लगा ..... आपको छूने में इतना शरम लगता है तो छुआनेवाली को कितना शरम लगेगा? लेकिन आखिर में फैसला किए कि अगर गरीबों का भला करना चाहते हैं तो जी कड़ा करके यह काम करना ही पड़ेगा ..... आपको देह दिखलाना ही पड़ेगा और आपको भी इस लायक बनाना पड़ेगा कि आप बिना हिचक के देह छू सकें ..... इसीलिए आज आपसे पीठ छुआ लिए .....।" बासमती एक सुर में बोले जा रही थी मगर अंतिम बात

बोलकर वह लजा गयी। मैं यह सोचकर अचंभित था कि एक सोची–समझी योजना के तहत ही उसने मुझे पीठ हँसोथने के लिए कहा था। मैं फिर एक बार उसकी बुद्धि और हिम्मत के वशीभूत हो गया, लेकिन किसी स्त्री की पीठ हँसोथने का कृत्य यादकर मैं झेंप भी रहा था।

घटनाक्रम जिस तेजी से आगे बढ़ रहा था, मैं उस गति से बासमती के साथ नहीं चल पा रहा था। मैं अवाक था। मेरी सुस्त मनोदशा देखकर बासमती ने मेरा हाथ पकड़ लिया। मुझे लगा जैसे उसके गट्टावाली लौंगलत्ती रस्सी बनकर मेरे पूरे शरीर में लिपटती जा रही है। लत्ती की लपेट धीरे–धीरे कसती जा रही थी। फिर लगा कि लत्ती के दूसरे छोर ने बासमती को भी लपककर धर लिया। अब वह मुझमें समाती जा रही थी। एक–दूसरे से बिलग होना अब कठिन था; अलग होने की ताकत ही नहीं बची थी, लत्ती ने देह का सत निचोड़कर एक–दूसरे में मिला दिया था। पता नहीं, यह कैसा विचित्र अनुभव था। फिर लगा जैसे दोनों के धड़ तो अपनी–अपनी जगह पर ठीक ही थे, साँस की नली एक हो गयी थी। उसी समय एक भौंरा कहीं से उड़ता आया और ढिबरी के चारों ओर चक्कर काटते घनघनाने लगा। बासमती फुरती से उठी और एक ठो दौरी लेकर उसे झाँप दिया। धड़फड़ाहट में उसका पल्लू मेरे माथे से लिपट गया, लेकिन इस बात से न मुझे संकोच हुआ और न उसे कोई मलाल। अब हम दोनों एक–दूसरे के लिए पराए नहीं थे। बासमती बहुत खुश लग रही थी। आत्मविश्वास से चहकते हुए उसने कहा, "मैंने तो आपको किसी मास्टर के जैसे, धीरे–धीरे झिझक मिटाने के लिए, देह कुड़ियाने को कहा ..... अब आपका संकोच भी खतम हो गया और मेरे मन पर भी बोझ नहीं रहा ..... लेकिन असली काम तो पीठ में कपूर–तैल लगाना था ..... जरा लगा दीजिए न!"



मैं कुछ बोल पाता उससे पहले ही उसने तेल की मलिया मेरे आगे सरकाकर बेधड़क पीठ की झाँप हँटाते हुए मेरे आगे बैठ गयी। मेरे सामने अब नंगी पीठ का चित्रपट साकार हो गया था। मैंने एक पल पीठ को निहारा और उँगलियों में मलिया से तेल लगाकर उसकी पीठ पर लसेरने लगा। तेल के आलेप से गोदना के चित्र चकचका उठे। अकल्पित अतीत की संचित ऊर्जा से कनकनाते विलक्षण उत्कीर्ण वैभव मेरे सामने उसी तरह फैले थे जैसे किसी अबोध बच्चे के आगे में दुर्लभ मणि–माणिक्य के ढेर लगे हों। गोदना के उन चित्रों को देखकर इतना तो मैं समझ रहा था कि ये सभी एक तरह की प्रतीक भाषा हैं, अतीतकालीन मानवीय संवेदना की गूढ़ अभिव्यक्ति हैं, मगर देह की त्वचा को सूई से छेदकर रोमकूपों की तह में जमाए कालिख से बनी उस चित्रलिपि के गूढ़ार्थ को पढ़ने का बोध मुझे नहीं था। मैं यह सोचकर ही सिहर उठता था कि कितना कष्ट सहकर, हजारों बार सूई की नोक से छिदाने के बाद ये चित्र उभरे होंगे। परंपरा की लीक पर चलते हुए ये लोग इतना कष्ट सहकर भी खुश रहते हैं! उनकी यह थाती क्या इतना अनमोल है कि इससे अनगिनत भूखे–नंगे लोगों की दशा सुधारी जा सके? क्या सचमुच मेरी बातों पर बासमती को भरोसा हो गया है कि इसके इस्तेमाल से औरतें कमा सकती हैं? लेकिन ऐसा हुआ तो है! मधुबनी में गोदना पेंटिंग के चलन की बात केवल मैंने ही तो उसे नहीं बताया था; उसके ही

गाँव की किसी औरत ने भी तो उसे यह सब बताया था! तभी तो वह मुझे यह वैभव दिखलाने के लिए ऐसा उतारू हो गयी है! लेकिन मैं यह सब देखकर करूँगा क्या?..... तेल से चिपचिपायी उँगलियों को माटी पर रगड़कर मैं साफ भी कर रहा था और सोच भी रहा था। बासमती हाथ धुला रही थी। मेरा दिमाग कहीं ठहर गया था। उसी ठहराव की स्थिति में मैं वहाँ से बिदा हो गया।

अगले दिन ध्यान जब–तब बासमती की ओर चला जाता था। कल रात की घटना अभी तक मन में चित्र की तरह तरोताजा थी, मगर उसका कोई नकारात्मक प्रभाव मन पर नहीं पड़ा था। घटना को लेकर मन में कोई हुज्जत भी नहीं थी। मैं समझता था कि उसमें कार्य–कारण संबंध था। उसे पीठ में तेल लगवाना जरूरी था और इसके लिए पीठ तो उघारना ही पड़ता। मुझे इसमें कुछ अस्वाभाविक नहीं लगा, इसीलिए मन में बहुत किचकिच नहीं थी बल्कि प्रसन्नता ही थी कि उसने मुझ पर अपनों जैसा भरोसा किया। माना कि पाच के घावों की खुजलाहट और उस पर तेल मलने की जरूरत ने उसे पीठ उघारने को बाध्य किया होगा, फिर भी कोई युवती परपुरुष के आगे पीठ खोल कर बैठ जाए, ऐसा होता नहीं है। इतना भरोसा कोई स्त्री अपने खास आदमी पर ही कर सकती है। संबंध का यही अवबोध मेरी प्रसन्नता का मूल कारण था। दोनों के मध्य कौन–सा ऐसा संबंध था? मैं मानता था कि यह विचारों की साझेदारी थी। उस साझेदारी में मुख्य भूमिका उसी की थी। वह अपनी अमूल्य निधि मुझे देना चाह रही थी, लोकहित में लगाने के लिए। पिछले कुछ दिनों में मैंने उसे जितना जो कुछ बताया था उस पर उसने विश्वास किया। उस विश्वास के आधार पर वह काम की कोई योजना गढ़ रही थी। उसकी देह पर बने गोदना–चित्र उस योजना के साधन बनेंगे। उस साधन से वह गरीब स्त्रियों के हित में कोई बड़ा काम खड़ा करने की बात सोच रही थी। हो सकता है, जितवारपुर की हरिजन स्त्रियों के लिए जो प्रयोग मैंने बिना बहुत विचारे ही कर दिया था और जो युक्ति उनकी आजीविका का जरिया बन गयी थी, उसीके किसी व्यवस्थित प्रयोग को वह मेरे माध्यम से करने की बात सोच रही हो। यह बेशक बहुत बड़ी बात थी जो मेरी समझदारी में उस समय अँट नहीं रही थी।

उसने बताया था कि मेरी इस बात पर कि उसकी देह के गोदना से हजारों औरतों का जीवन बदल सकता है, वह रात भर विचार करती रही; खाया भी नहीं। क्या सब सोचती रही होगी वह? इस तरह का सोच–विचार उसके लिए जरूर नयी बात रही होगी। एक हरिजन युवती (उन दिनों दलितों को हरिजन कहा जाता था), पढ़ी–लिखी भी नहीं, उसके मन में कितने तरह के विचार उठे होंगे कि उसमें उलझ कर उसने न खाया न सोई? मैंने अनुमान लगाया, उसकी चिंता में प्रमुख बात यह रही होगी कि अपने भीतरी अंगों के चित्र वह मुझे कैसे दिखलाए। उसकी शादी बचपन में ही हो गई थी मगर गोदना नहीं करवाने के कारण अभी तक उसका गौना (द्विरागमन) नहीं हुआ था। इसी गौना के लिए उसकी बहन ने उसका 'सरगतिया करवाया था; देह के सभी गात में गोदना। अपने पति के घर जाने के लिए ही उसने परंपरानुसार वह अत्यंत दुस्सह बल्कि भयानक कष्ट सहा और बीमार पड़ी थी। देह के गुप्त भागों में बने गोदना के वे चित्र केवल उसके पति के लिए बने हैं। दूसरा कोई पुरुष उन चित्रों को कैसे देख या छू सकता है? उन चित्रों का जादू देह चढ़कर बोलता है। जो उन चित्रों को देखेगा, देह में ही समा जाएगा। तब वह कैसे कर सकती है उन चित्रों का अनावरण, मुझ जैसे परपुरुष के आगे? यह बहुत कठिन प्रश्न रहा होगा उसके आगे, लेकिन जब कोई स्त्री कठिन निर्णय ले लेती है तो वह काली–दुर्गा की तरह शक्तिमयी हो जाती है; अडिग और दुर्निवार। मुझे लगा, बासमती ने सब कुछ सोच लिया है। वह अपने गोदना से वैसा कुछ करना चाहती है जैसा मधुबनी की स्त्रियाँ अपने लाभ के लिए करती हैं, लेकिन वहाँ स्त्रियाँ अपने लाभ के लिए चित्र बनाती हैं जबकि

बासमती सब कुछ दूसरों के लिए करना चाहती है। मेरी नजर में अनायास वह साधारण स्त्री से बदलकर महिमामयी हो गयी थी।

दोपहर बाद तक कई प्रकार के विचार मन को घेरे रखा। ऑफिस के काम से बाजार जाना था जो मैं दो दिनों से टाल रहा था। सोचा, बाजार की ओर निकल लूँ। मन भी बहल जाएगा। बाजार गए। वहीं किसी से मिलना था। ऑफिस का काम करने के बाद मन में आया कि बासमती के लिए लिखने–पढ़ने के कुछ सामान ले लूँ। आखिर दो नोटबुक, दो पेंसिल, पेंसिल कटर और मिटाने वाला रबड़ ले लिए। पहली बार बस देखने के लिए ही ये सामान उसके लिए लिया था। सोचा, देखूँ, उसे पसंद आते हैं कि नहीं। फिर एक झोला खरीदकर उसमें सब सामान रख लिया। मन में आया, पहली बार उसे कुछ दे रहा हूँ, मिठाई नही तो लेमनचूस ही सही; आठ–दस लेमनचूस भी ले लिया। बढ़ते–बढ़ते जानकी मंदिर की तरफ गया तो देखा, एक आदमी जमीन पर चादर बिछाकर बहुत तरह की पुस्तकें बेच रहा था – कई तरह की व्रतकथा, रामजानकी–कथा, रंग–विरंग की धार्मिक कथा, हातिमताई की कहानी, अकबर–विरबल की कहानी, गोनू झा के चुटकुले और बच्चों में लोकप्रिय कहानियाँ। उन पुस्तकों में एक थी सचित्र रामायण–कथा। गीताप्रेस, गोरखपुर की तीस–बत्तिस पृष्ठों की वह पुस्तक रंगीन चित्रों से भरी थी। दाम भी बहुत कम था। वह पुस्तक भी खरीद ली। वह पुस्तक खरीदकर मैं बहुत खुश था। सोचा, यह किताब उसे जरूर पसंद आयगी। चित्र देखकर कहानी भी समझ पाएगी और धीरे–धीरे पढ़ने की ओर मन जाएगा।

बाजार से वापस आकर पहले अपने कमरे में गया। एक नोटबुक अपने लिए रखकर बाँकी सब कुछ उसके लिए ले गए। जब उसके यहाँ पहुँचा उस समय वह रासबती के दोनों बच्चों के साथ ओसारे पर बैठी 'डासए कोस' खेल रही थी –– 'डायस कोस सिंगल बुलबुल मास्टर .....।' बासमती उस खेल में हुस गयी थी। उसके गाल पर एक चाँटा लग चुका था और दूसरा लगने वाला था तभी मैं आ गया। मुझे देखकर दोनों बच्चे भभाकर हँस पड़े। मैंने झोले से निकालकर एक–एक लेमनचूस दोनों बच्चों को देते हुए कहा, "यह ले लो और अपनी मौसी की जान बख्श दो .....।" बच्चे लेमनचूस पाकर खुश थे और बासमती मुझे देखकर। मैंने एक ठो लेमनचूस उसके मुँह में डाल दिया और बाँकी सब उसके हाथ में दे दिया। उसने एक की पन्नी खोलकर मेरे मुँह में डाल दिया। मैंने तृप्त भाव से उसकी ओर ताका, वह लजा गयी।

कोठरी की ओर मैंने ही पैर बढ़ाया और बिछावन पर झोला रखकर बैठ गया। झोले वाली वस्तु देखने की उत्सुकता के साथ वह भी मेरे पास आकर बैठ गयी। उसकी नजर झोले पर ही थी। मैंने सभी वस्तु निकालकर बिछावन पर रख दिया और कहा, "यह आपके लिए है .....।" उसके मुखड़े का रंग बता रहा था कि सभी चीज उसे पसंद थी, लेकिन प्रकट रूप में उसने भिन्न प्रतिक्रिया दिखलाते हुए कहा, "यह सब लेकर मैं क्या करूँगी .....? कोई बताने वाला तो है नहीं ..... दीदी ने आपसे कहा भी तो आपने सकारा ही नहीं .....।" इतना बोलकर उसने कृत्रिम रूप से मुँह लटका लिया। मुझे उसकी मनुहार अच्छी लगी। मैंने एक निश्चय के साथ उसे कहा, "कोई काम गछने से पहले सोचना पड़ता है न! अब सोच लिए हैं ..... मैं आपको पढ़ाउँगा.....।" सुनकर उसने मेरी ओर ताका। उसे जैसे एक साथ बहुत कुछ मिल गया हो। उसके भीतर का हुलास उछलकर ठोर पर आ गया, "..... सो तो मेरे चचेरे भाई ने मुझे कुछ–कुछ पढ़ाया था..... जब वह ननिहाल में पढ़ने चला गया तो मेरी पढ़ाई बंद हो गयी। देखकर थोड़ा पढ़ भी लेती हूँ और देखकर लिख भी लेती हूँ ..... खाली जुड़वाँ अच्छर नहीं पढ़ाता है .....।"

मैंने कहा, "मैं तो रोज पढ़ता हूँ। हमेशा पढ़ते रहने से ज्ञान बढ़ता रहता है.... जब लोग पढ़ना–लिखना छोड़ देते हैं तो अभ्यास कमजोर पड़ जाता है। मेरे लिए लिखाइ–पढ़ाई उतनी ही जरूरी है जितना कि भोजन करना ..... ।"

उसने पूछा, "आप क्या सब पढ़ते हैं?"

"मैं जहाँ भी जाता हूँ, साथ में कुछ पुस्तकें जरूर रखता हूँ। मैं हिंदी, मैथिली, अंगरेजी और संस्कृत की पुस्तकें पढ़ता हूँ। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आप थोड़ा–बहुत पढ़–लिख लेती हैं। रोज अभ्यास कीजिएगा तो जल्द ही सब ठीक हो जाएगा। मैं आपको एक पुस्तक भी दे रहा हूँ। यह पुस्तक पढ़ लीजिए तो और भी देंगे। अभी जो पुस्तक दे रहा हूँ वह आपको जरूर अच्छी लगेगी।" इतना कहकर मैंने उसे झोले से निकालकर 'रामायण–कथा' दी।

तीस–बत्तीस पृष्ठों की उस पुस्तक के कवर पर राम–जानकी का रंगीन चित्र छपा था। चित्र देखकर वह खुशी से चहक उठी, "कितनी सुंदर है यह किताब?" इतना कहकर पहले उसने किताब को कपार में सटाया फिर सावधानी से उसके पन्ने पलटने लगी। सभी पन्नों में चित्र छपे थे और चित्र के नीचे रामायण का कोई दोहा या गद्य में कुछ पंक्तियाँ छपी थीं। एक जगह वह पंक्ति पर उँगली रखकर अक्षर से अक्षर जोड़ते हुए पढ़ने लगी, "जनकसुता जग जननि जानकी, अतिसय पिय करुना निधान की। ताके जुग पद कमल मनावउँ, जासु कपा निरमल मति पावउँ।।" पहली बार वह मेरे समक्ष कुछ पढ़ रही थी। मैं तो यह सब देखकर खुश था ही, वह भी पढ़कर बहुत उत्साहित थी। वैसे उसने जोड़–तौलकर ही पढ़ा, फिर भी मात्र दो जगह थोड़ा गड़बड़ाया था; 'प्रिय' को पिय कह दिया था और 'कृपा' को कपा, मगर उस समय मैंने उसे इस गलती की ओर ध्यान नहीं दिलाया बल्कि उसका उत्साह ही बढ़ाया, "आप तो बहुत बढ़िया से पढ़ लेती हैं। अब इसी तरह से पढ़–पढ़कर नोटबुक में लिखते रहिए। आप जल्दी ही ठीक से लिखना–पढ़ना जान जाएंगी।"

उसने जिज्ञासावश उस पुस्तक के बारे में पूछा, "यह किताब तो बहुत सुंदर है, लेकिन यह किस चीज के बारे में है?" मैंने कहा, "आप रामायण के बारे में जानती हैं? रामायण में भगवान राम और उनकी पत्नी सीता की कहानी है। रामजी तो अयोध्या में जन्मे थे, लेकिन सीताजी का नैहर अपनी मिथिला में ही है। राम ने सीताजी से विवाह किया। विवाह के बाद वैसे तो सीताजी को बहुत दुःख उठाना पड़ा, लेकिन वह भगवती थीं, अंत में धरती में समा गयी। मिथिला के लोग उनको अपनी बहन मानते हैं। रामायण में सीता–राम की कहानी तो है ही, इसके अलावे और भी बहुत लोगों की कहानी है। हनुमानजी, रावण, सुरसा, सुपनेखा सबकी कहानी इसी में है। वैसे रामायण तो मोटी पुस्तक है मगर इस किताब में थोड़ा कुछ देकर छाप दिया है कि कम दाम में सब लोग खरीदकर पढ़ सकें। इस पुस्तक को करीब छः सौ वर्ष पहले तुलसीदासजी ने लिखा था। तुलसीदास ने जो पुस्तक लिखी उसका असली नाम 'रामचरितमानस' है, लेकिन लोग उसीको रामायण भी कहते हैं।"

इतना बताकर मैं तो चुप हो गया लेकिन वह मन ही मन सुने शब्दों को दुहराने लगी — रामचरितमानस ..... तुलसीदास .....।' कुछ देर तक गुनने के बाद वह बोली, "रमायन के बारे में तो थोड़ा मैं

भी जानती हूँ ..... मेरे गाँव में अरटजाम–नवाह हुआ था तो दूर–दूर से गवैया और रमलिल्ला वाले आए हुए थे। रात भर रमलिल्ला वाले गाते रहते थे – रामा हो रामा!"

अपनी बात बताकर वह फिर से किताब पलटने लगी। मेरी नजर उसके मुँह पर ही जमी थी। चित्र के साथ ही छपी पंक्तियाँ देखकर उसकी आँखें आश्चर्य से झिलमिला रही थीं। छपे होने के बावजूद चित्र उसे सजीव लग रहे थे। उसने पूछा, "किताब कैसे छपती है?"

उसका प्रश्न सुनकर मुझे प्रसन्नता भी हुई और उसका उत्तर कठिन भी लगा। मैं दो–चार बार अपने पिताजी के साथ लहेरिया सराय में तिर्हुत प्रेस तो जरूर गया था लेकिन उसे समझाने लायक बातें मैं कम ही जानता था। वह चित्र की छपाई के बारे में जानना चाहती थी। मैंने पूछा, "आप इतना तो जानती हैं न कि लोग फोटो खिचवाते हैं? आपने किसी को फोटो खिचबाते देखा है?"

"हाँ, सो क्यों नहीं जानेंगे! मेरी दीदी और मेहमान को भी फोटो है .....रुकिए, मैं दिखलाती हूँ ।" वह धड़फड़ाते हुए दूसरी कोठरी में गयी और किसी बकसे में रखे, सीसा लगे अपने बहन–बहनोई का फोटो ले आयी। फोटो कुछ पुराना था। फ्रेम का एक कोना टूट गया था और नीचे का अस्तर भी फट गया था जिससे फोटो में कहीं–कहीं फफूँदी लग गयी थी, मगर फोटो का चेहरा–मोहरा ठीक ही था। मैंने फोटो हाथ में लेकर कहा, "देखिए, यह फोटो कैसे छपा? पहले कैमरा से किसी ने फोटो लिया, उसके बाद वही चीज मसीन द्वारा छाप दिया गया। आपने कैमरा देखा है?"

"हाँ हाँ, केमरा भी देखे हुए हैं। डिब्बा जैसा होता है। उसमें आँख जैसा सीसा लगा रहता है ..... उसमें आँख लगाने से सब कुछ दिखता है..... जिस चीज का फोटो लेना हो, सीसा से देखकर बटम टीप दीजिए..... बस, फोटो खिंचा जाएगा। मेरी बहिनपा के बिआह में उसके एक ठो मेहमान केमरा लाए थे। उससे सभी चीज का फोटो खिचाता था। मेरे घर का फोटो ..... बकरी का फोटो ..... चैलची पर रखे चैला का फोटो ..... है, चैला पर जो चित्र बना था, सो भी फोटो में आ गया। जयनगर जाकर जब ऊ मेहमान केमरा वाला फोटो छपवाकर आया तो हमलोग देखे ..... ।"

"बहुत बढ़िया, तब तो आप बहुत बात जानती ही हैं ..... अब इस किताब में देखिए। इसमें जो चित्र है सो किसी आदमी ने, माने चित्रकार ने पहले कागज पर बनाया होगा। जब चित्र कागज पर पूरा बन गया होगा तो उस चित्र का फोटो कैमरा से खीचकर इसी तरह से बड़े मसीन में छपा लिया होगा।"

उसका मुँह देखने से मुझे लगा कि कुछ बात वह समझने लगी थी फिर भी कुछ दुविधा में थी। उसने चित्र के नीचे छपी पंक्तियाँ दिखलाकर पूछा, "यह तो चित्र नहीं है ..... यह कैसे लिखा गया?"

"जैसे कोई आदमी चित्र बनाता है, उसी तरह लिखने वाला लिखता है। चित्र बनाने वाले को चित्रकार कहा जाता है और लिखने वाले को लेखक। दोनों मिलकर काम करते हैं तो किताब तैयार हो जाती है। इसके बाद उसको छपने के लिए प्रेस में भेजा जाता है। प्रेस में बड़ी मशीनों से छपाई होती है। छपने के बाद पन्ना–पन्ना मिलाकर नत्थी की जाती है। इसके बाद उस पर गत्ता लगा दिया जाता है। बस, इतना सब हो जाने के बाद किताब बँटने या बिकने के लिए तैयार है। समझी कि नहीं?"

वह समझने का प्रयास कर रही थी। उसे फिर दो नए शब्द मिल गए थे — चित्रकार और लेखक। मुझे लगा, वह मन ही मन उन शब्दों को दुहरा रही थी। मैं उसके मुँह पर ही देख रहा था। उसकी आँखों में भविष्य का कोई सुहाना पल तिर रहा था। वह किसी गुनधुन में थी। कुछ पल बाद उसने कहा, "मैंने तो देखा था कि थैला पर जो चित्र बना था सो भी फोटो में छप गया ..... अपने गोदना वाले चित्र को अगर बढ़िया से कागज पर उतार दें तो वह छपेगा कि नहीं?"

मुझे उसकी बात सुनकर भारी अचंभा हुआ। मैं उतनी दूर की बात नहीं सोच पाया था। आश्चर्य से मैं उसकी ओर ताकता रह गया। उसके मन में एक बड़ी संभावना का उदय हो रहा था। मैंने उसका उत्साह बढ़ाते हुए कहा, "छपेगा क्यों नहीं! गोदना के ये चित्र अगर कागज पर उतर जाएँ तो यह भी छपकर किताब बन सकते हैं।"

उसने मुझे रामायण–कथा की वह पुस्तक दिखलाते हुए कहा, "जिस तरह यहाँ चित्र बना है वैसे ही इस जगह पर गोदना का चित्र रहेगा और जैसे इसके नीचे में लिखा हुआ है वैसे ही यहाँ चित्र का माने–मतलब लिख दिया जाएगा। सो हो सकता है कि नहीं? आप मेरी देह पर से चित्र कागज पर उतारिए, फिर उसको दोनों आदमी मिलकर बढ़िया से बना लेंगे..... जब चित्र ठीक से तैयार हो जाएगा तब आप चित्र के नीचे उस छाप का माने–मतलब लिख दीजिएगा। कहिए, ऐसा हो सकता है कि नहीं?"

मुझे बहुत जोर से हँसी लग गयी। वाह रे बासमती! वह अनायास ही बहुत बड़ी बात बोल गयी थी। मेरे पिताजी भी लेखक थे। 1948–'49 में उनका एक उपन्यास प्रकाशित हुआ था; मैथिली भाषा में, 'लालभौजी'। वे जीवन भर पैसे की तंगी से जूझते रहे। रुपए नहीं थे, इसलिए दूसरी पुस्तकें नहीं छपीं। पैसे की हालत इतनी खराब थी कि दो रुपए आठ आने की माहवारी फीस मैं स्कूल में नहीं दे पाया और एक दिन गुरुजी ने कान पकड़कर मुझे वर्ग से निकाल दिया। नहीं नहीं, मुझे लेखक नहीं बनना है! लेकिन यह लड़की भी तो मेरे साथ लेखक बनना चाहती है। इसे मैं क्यों रोक दूँ? क्या कहें? यह अगर लेखक बन जाए तो कितना अच्छा होगा? यदि ऐसी एक किताब बन जाए तो बहुत औरतें देख–देखकर ये चित्र बना लेंगी और रुपए कमा सकती हैं। बासमती ठीक कह रही है। गरीब औरतें कलम से कमाने लगेंगी ..... धीरे–धीरे कलम से लिखने भी लगेंगी ..... उनकी हालत सुधर जाएगी। गाँव–गाँव में किताब बँट जाएगी ..... हरिजन औरतें ..... दूसरी औरतें भी चित्र बनाकर बेचने लगेंगी ..... उनको अच्छे पैसे मिलने लगेंगे तो उनका खाना–पानी अच्छा हो जाएगा ..... उनके घर भी अच्छे से बनने लगेंगे ..... ! वाह रे वा! मेरी आँखों में बासमती ने एक सपना जनमा दिया। मेरी नजर में बदली हालात का, चहल–पहल से भरा एक बाजार पसरने लगा ..... हर तरफ दुकान–दौरी..... कमाइ–धमाइ ..... उजले कागज के शीट पर उभरते हाथी, लौंगलत्ती और टहलते–बूलते मोर–मजूर..... औरतों के झुंडमें बैठी बासमती सब के साथ 'हरिजन पेंटिंग' बना रही है ..... कहीं दुकान पर कोई स्त्री सामान खरीद रही है ..... कहीं कोई औरत नंबरी भजा रही है ..... छमककर कोई लड़की इधर आती है ..... ठुमककर कोई उधर जाती है ..... नयी साड़ी की सरसराहट ..... गिलट के गहनों की झनझनाहट ..... हर तरफ रौनक ..... हर तरफ गमक–झमक ..... ।" मैं ऐसा ही कुछ देखने में खो गया था कि बासमती ने मेरे हाथ पर अपना हाथ रखकर चेताया। मैंने उसका हाथ पकड़कर मुसकुरा दिया। वह निहाल हो गयी। बात एकदम पक्की हो गयी। पहले देह के चित्र कागज पर उतारे जाएंगे, उसके बाद बढ़िया से सजाकर चित्र बनाए जाएंगे, फिर चित्र के नीचे में बासमती से पूछकर उसका माने–मतलब लिखा

जाएगा। वह बनेगी चित्रकार, मैं बनूँगा लेखक! दोनों मिलकर बनाएंगे 'गोदना–पुस्तक'। यह किताब सब के लिए होगी, बदलाव के लिए होगी। वाह रे वाह!

एक बहुत बड़ी बात का निर्णय हो चुका था। इस निर्णय से हम दोनों प्रसन्न थे। मैंने पेंसिल कटर लेकर एक पेंसिल छीला और पेंसिल के साथ नोटबुक उसके आगे बढ़ाते हुए अपना नाम लिखने को कहा। उसके पेंसिल पकड़ने के ढंग से मुझे लगा वह बहुत लंबे अरसे के बाद कुछ लिखने जा रही थी, मगर उसके अक्षरों की काट बहुत सुंदर थी। गोले अक्षरों से उसने लिखा – बासमती पासवान। अपना नाम लिखने के बाद उसने नोटबुक मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, "अब आप अपना नाम–पता लिखिए.... ।" मैंने अपने नाम के साथ पूरा पता लिख दिया। उसने दोनों हाथ से नोटबुक पकड़कर आदरपूर्वक कपार से सटाया और सब कुछ समेटकर झोले में रख लिया। झोले को एक टिन के बकसे पर रखने के बाद वह बोली, "अब दूसरा काम .... मैं जरा आती हूँ .... ।" बोलते हुए वह फुरती से दूसरी कोठरी में गयी और मिनट भर में ही वापस आकर बोली, "दोनों बच्चे सो गए हैं ..... कल रात आपने पीठ में तेल लगा दिया ..... पहली बार तेल पड़ा था ..... मैं एकदम चैन से सोयी ..... ।"

उत्साह में वह हबर–हबर बोले जा रही थी। बोलते बोलते ही उसने तेल की मलिया में सीप के बटन जैसी कपूर की दो–तीन टिकिया मिलाया और मुझसे कहा, "आप जरा बाहर जाइए न ..... मैं कहूँगी तो आ जाइएगा ..... ।" मैं कोठरी से निकलकर ओसारे पर खड़ा हो गया, फिर पेशाब करने चला गया। कुछ देर बाद उसने मुझे भीतर बुला लिया। भीतर घुसा तो उसकी बागा–बानि देखकर मुझे जोर से हँसी आ गयी। वह भी खूब हँसी। उसने अपना ब्लाउज (अँगिया) तो निकाल लिया था मगर देह का अगला भाग झाँपने के लिए आँचल के दोनों खूँट को गरदन में बाँधकर गाँती जैसा बना लिया था। याद आया, बचपन में जाड़े से बचने के लिए माँ ऐसी ही गाँती बाँध देती थी। मैं कुतूहल से उसे देख रहा था कि उसने हाथ पकड़कर मुझे बिछावन पर बैठाया और मेरे बगल में तेल की मलिया रखकर खुद पीठ उघारे बिछावन पर पड़ रही। उसने एक गेंडुआ पर अपनी दोनों केहुनियों को टिकाया और दोनों हथेलियों पर अपना चेहरा रख लिया। उस मुद्रा विशेष में पड़ने से उसकी गरदन खड़ी और पीठ किसी चित्रपट की तरह नतोदर हो गयी थी। मैं उसकी बुद्धि और जोगाड़ पर मुग्ध, उँगलियों में कपूर मिला तेल लगाकर पीठ में हल्के–हल्के औंसने लगा। पीठ पर तेल के लेप से गोदना के चित्र तो फरचा गए थे लेकिन हाथ का दबाव पड़ने से पीठ गैंचकर अधिक नतोदर हो जा रही थी जिससे चित्र परखने में बन नहीं रहा था। मैंने एक हाथ से उसका पेट पकड़कर अपनी ओर खींचा। अब उसकी पीठ चौड़ी सपाट हो गयी। पूरी पीठ तरह–तरह के चित्रों से भरी थी। मेरे सामने गोदना चित्रों से भरा जैसे कोई छोटा जंगल उभर आया था। कुछ देर में तेल लसेरने का काम पूरा हो गया इसके बाद भी मैं उन चित्रों को निहारता रहा। कल जैसी उद्विग्नता आज नहीं थी। शांत मन से उठा और उसे भी उठने को कहा। हाथ धोने के लिए पानी माँगा। वह लोटे में पानी भरकर मेरे पीछे आँगन में आयी और हाथ पर पानी खसाने लगी। माटी पर हाथ रगड़कर उँगलियों की जड़ में लगा तेल छुड़ाया। हाथ धोकर उठा तो उसने अपने आँचल से हाथ पोंछ दिया। उसके शरीर से उठते कपूर की गंध से बँधा मेरा तन–मन अब उससे बहुत अलग नहीं था। मैं उसकी योजना को अब कुछ–कुछ समझने लगा था, लेकिन अभी भी कोई युक्ति मेरे हाथ नहीं लगी थी। मुझे मौन देखकर उसने पूछा, "क्या सोच रहे हैं ..... कोई परेशानी है क्या?"

"परेशानी यही है कि अभी मैंने आपकी पीठ पर गोदना के चित्र तो देखा ..... पूरी पीठ छोटे-छोटे चित्र से भरी हुई है ..... मगर इसे कागज पर कैसे उतारूँगा? एक बार देख लेने भर से चित्र कागज पर तो उतर नहीं जाएंगे!"

"इसमे दिक्कत की कोई बात नहीं है ..... बड़े आकार के जो चित्र हैं उसको मोहर कहा जाता है और अठन्नी जैसे छोटे आकार के जो चित्र हैं उनको बुट्टी कहा जाता है। आप पहले मोहर का खाका उतारिए ....."

"वही खाका बनाना तो कठिन है ..... एक बार देख लेने भर से हमसे नहीं बनेगा .....।" मैं सही में कुछ परेशान जैसा हो गया था।

"आप घबरा क्यों रहे हैं? इतनी देर में तेल देह में पच गया होगा ..... अब उसका काम हो गया। मैं पेटकैया होकर सोती हूँ ..... आप गमछा से रगड़कर पीठ में लगा तेल पोंछ दीजिए और पीठ पर कॉपी रखकर देख-देख के उतार लीजिए ..... ।"

उसकी युक्ति अद्भुत थी। वह पेट के बल पड़ रही। मैं बिछावन पर पड़े गमछा से उसकी पीठ रगड़ने लगा। यह किसी युवती की नंगी पीठ नहीं, रंग-बिरंगे चित्र से भरे किसी श्यामपट जैसी पाटी लग रही थी। वह एकदम शांत पड़ी हुई थी। अब चित्र को कागज पर उतारने का तरीका मुझे सोचना था; नोटबुक को पीठ पर रखें, जांघ पर रखें या सहूलियत के हिसाब से कहीं और रखें। मगर फिर भी एक दिक्कत थी। दिबाल में बने ताखे पर रखी ढिबरी का प्रकाश इतना मद्धिम था कि उस प्रकाश में चित्र बहुत फरचा नहीं रहे थे। इस परेशानी से मेरा मन खींजते जा रहा था। उसने मेरी असुविधा का ख्यालकर पूछा, "अब भी कोई दिक्कत है क्या?"

"अब दिक्कत है इजोत का ..... ढिबरी इतनी दूर पर रखी है कि इस इजोत में काम करना कठिन है।" उपाय फिर उसीने बताया, "एक काम कीजिए ..... वहाँ टॉर्च रखा है ..... अपने बगल में कंबल को गोलियाकर ऊँचा कर लीजिए और उस पर सुबिधा मोताबिक टॉर्च जलाकर इजोत कर लीजिए।" वैसा ही किया। टॉर्च के तेज प्रकाश में गोदना के चित्र चकचका उठे। अब कोई दिक्कत नहीं थी। हबर-हबर तीन चार चित्रों का खाका बना लिए, लेकिन इतने में ही मन अकबकाने लगा। पहली बार मन में कुछ डर जैसा लगा। वह जिस प्रकार बिछावन पर पड़ी थी और मैं पीठ पर काम कर रहा था, बड़ा अटपट लगा। मन में आया, अगर कोई देख ले तो क्या होगा? मैंने सोच लिया, अब और नहीं। मैंने उसे अपने मन का डर तो नहीं बताया, लेकिन उठ जाने को कहा। वह उठकर बाहर गयी, गाँती खोलकर ब्लाउज पहनी और पूछा, "पानी पीजिएगा?" पानी पीकर लगा, खतरा टल गया।

उतना करते हुए कल जैसा मन हो गया था, अधीर और बेदम, आज वैसा नहीं हुआ। मन में थोड़ा भय जरूर हो गया था, लेकिन पानी पीने के बाद लगा कि वह आशंका भी बेसबब थी; यहाँ अभी कौन आएगा? बासमती को मेरे द्वारा बनाए खाका देखने की उत्सुकता थी। मैं मानता था कि मेरे काम अच्छे नहीं थे मगर उसने मेरा उत्साह बढ़ाने के लिए कह दिया, "आपका खाका साफ-सुथरा है। इसे थोड़ा ही ठीक करना पड़ेगा।"

इमरजेंसी लगे पाँच मास से ऊपर हो गया था। इस बीच सभी बड़े पर्व–त्योहार, दुर्गापूजा, दिवाली, भरदुतिया और छठ बीत गए। लोगों ने त्योहार मनाया, लेकिन दबे–दबाए। मधुबनी से आए एक परिचित आदमी से भेंट हुई तो उसने बताया कि मधुबनी के शंकर चौक पर कुछ लड़के दिवाली की रात में पटाखे छोड़ रहे थे। एक छुरछुरी (साधारण पटाखा) पुलिस की गाड़ी के पास गिर गयी। इतनी सी बात के लिए आठ–दस लड़कों को दो दिनों तक थाने में बंद रखा गया। पुलिसिया दबदबा के आगे अब किसी की जुबान नहीं खुलती है। चाय की दुकान या चौक–चौराहों पर अब गपोड़ियों का जमावड़ा नहीं लगता है। गाँव–देहात के पसीखाने में पीने वाले अब झोंक में आकर गीत नहीं टेरते हैं। देश–दुनिया का असली हाल न कोई अखबार बताएगा और न रेडियो। 'ऑल इंडिया रेडियो' तो बहुत पहले ही 'ऑल इंदिरा रेडियो' हो गया था, अखबार भी केवल आपातकाल के 'गुणगान' से भरे रहते हैं। लोग खुश हैं कि रेलगाड़ी अब समय पर चलती है, किरानी–चपरासी अब ऑफिसों में बख्शिस नहीं माँगते हैं, हाकिम लोग समय पर ऑफिस आते हैं, बाजार में सामानों के दाम बलधकेल नहीं बढ़ जाते हैं। लोगों को और क्या चाहिए? सब कुछ एकदम ठीक है। हर कोई सकदम है। चूँ सबद नहीं बोलिए! पीछे मुड़कर नहीं देखिए, बाँधे जाइएगा! मेरे आध्यात्मिक गुरुजी, विनोबाजी से मिलकर इंदिराजी ने देश की प्रगति के बारे में जैसा समझा दिया, बाबा वैसा ही समझ गए। प्रधानमंत्री से अधिक सच कौन कह सकता है? बाबा ने कहा, 'यह अनुशासन पर्व है!'

जाड़े में पाँच बजे तो एकदम शाम हो जाती है, इसलिए सोचा कि थोड़ा पहले ही बासमती के यहाँ चला जाऊँ। मन में उत्सुकता थी कि उसने गोदना के खाका से कैसा चित्र बनाया। एक तरफ से मैं आँगन में पैठा और दूसरी ओर से रासबती ने प्रवेश किया। बीच आँगन में कुछ ईंटों को सटाकर एक आसन जैसा बना दिया गया था जिस पर एक महाशय आसीन थे। धोती–कुरता पहने, कपार में सिंदूर का ठोप लगाए वह आचार्य की तरह लग रहे थे। उनके आगे पलटू पासवान हाथ जोड़े खड़ा था। रासबती ने आँगन में प्रवेश करते ही उनको प्रणाम किया, "पाए लागौं सरकार ..... !" पंडीजी ने कहा, " ..... आन्द रहो!"

मैं इतना तो अंदाजा लगा रहा था कि वह व्यक्ति कोई ब्राह्मण देवता थे, मगर किसी हरिजन के आँगन में देवता के चरण कैसे पड़ गए, यह नहीं समझ रहा था। बात समझाया पलटू ने, "मादसाएब, यह सरकार हैं, पंडीजी महराज ..... मेरे ससुराल के हैं। किसी जनम का हमारा पुन्न बचा हुआ था कि इस अधम के इहाँ इनकर चरन पड़ गया।" मेरे तो वह महाशय न सरकार थे और न देवता, मगर शिष्टाचारवश मैंने उन्हें नमस्कार किया। उनको 'प्रणाम' के स्थान पर नमस्कार सुनने की आदत नहीं थी, इसलिए उन्होंने मेरे अभिवादन का कोई जवाब नहीं दिया। मेरी जिज्ञासा और बढ़ गयी। तभी पलटू ने उनको संबोधित करते कहा, "आप तो सरकार उधरे से आए हैं, जिधर आपको जाना था ..... ।"

उस महाशय ने कहा, "मुझे असल में जाना है नगराइन। लोगों ने कहा कि जनकपुर के पास है, इसीलिए इधर चले आए। बात है कि उमगाँव के तरफ से मैं आना नहीं चाहता था ..... ।"

पलटू पासवान दोनों बेगती उनके आगमन से अपने आप को धन्य मान रहे थे। अपनी कृतज्ञता दिखलाते हुए उसने कहा, "सो तो हमारा धन्न भाग कि भगबान के पैर हमारे दुआर पर पड़े ..... वैसे उमगाँव से पच्छिम हुआ पिपरौन, पिपरौन से सटा जटही आ जटही से उत्तर हुआ नगराइन ..... इहे तो रस्ता है ..... सरकार तो उधरे–उधरे चले जा सकते थे, नजीक होता।"

पलटू की बात पर भगवान ने कहा, "ऐ, मैं तो पुलिस के डर से उमगाँव थाना के तरफ से नहीं आया और समझो कि खेते खेत भागते हुए कहाँ से कहाँ आ गया। मैं तो सोच–विचारकर नहीं चला हूँ न, कि कोई सामान भी साथ लेते। ई तो जैसे सरकार आपातकाल कह रही है, वैसा ही विपत्तिकाल मेरे लिए हो गया।"

पंडितजी महाराज की बात सुनकर मेरे कान खड़े हुए। इनके लिए आपातकाल विपत्ति कैसे बन गया? मैंने कहा, "सो क्या हो गया पंडीजी? जरा समझाकर कहिए ..... ।" पहले उन्होंने मुझे गौर से देखा, फिर पूछा, "आप भी शिक्षक हैं क्या? यहीं किसी विद्यालय में हैं?"

मैंने टालने की गरज से महज हुंकारी देकर उनकी ओर देखने लगा। उन्होंने बताना शुरू किया, "बात है कि छठ पर्व के चार दिन बाद देवोत्थान एकादशी का व्रत होता है। उस दिन विष्णु भगवान की पूजा होती है। हमारे गाँव में एक पुराना राम मंदिर है। वहाँ हर साल देवउठाओन यज्ञ होता है। इस साल अधिक उत्साह से अयोध्या और बनारस से महात्मा लोगों को बुलाया गया। यज्ञ पूर्ण होने के बाद गाँव भर के लोग नगर–परिक्रमा करते हुए ढोल–झाल लेकर कीर्तन करते विदा हुए। कीर्तन मंडली में मैं भी था। तब तक कुछ कोमनिस्टों ने उमगाँव थाना में सनहा दे दिया कि हिंदू सब धार्मिक उन्माद फैलाने की नीयत से महजिद के पास ढोल–झाल बजा रहा है। हम लोग भजन–कीर्तन करते हुए जब गोआरटोली से आगे महजिद की ओर बढ़े तो आफत आ गयी। आगे में करीब पचास ठो पुलिस गाड़ी लगा कर रास्ता छेंके खड़ी थी। पहले तो पुलिस को देखकर भी हम लोगों को डर नहीं हुआ, लेकिन जब वह दुहत्थी लाठी भाँजने लगी तब तो जिसको जिधर भाग हुआ सो भागा। कीर्तन मंडली के जो भक्त पुलिस के हाथ लग गए, उन सबको मार–पीटकर पुलिस ने बाँकी सब का नाम उगलवा लिया। पुलिस घर–घर तलाश रही है। मैं तो एक ठो गुआर के घर में छिप गया, मगर बहुत लोग पकड़ाकर थाना में बंद हैं। रात में सब का यही विचार हुआ कि किसी तरह पुलिस से बचे रहिए। इमरजेंसी लगा हुआ है, अगर धर लेगा तो छोड़ेगा नहीं। मेरे एक संबंधी नगराइन में रहते हैं। सब का विचार हुआ कि वहीं चले जाएँ। नगराइन तो नेपाल में पड़ता है। इधर की पुलिस उधर नहीं जा सकती है। इसीलिए भागते–फाँदते नगराइन जाने के लिए जनकपुर आ गए। इधर जब पैर पड़े तो जान में जान आयी। किसी ने बताया था कि 'जनकपुर चुरोट कारखाना' में नगराइन के कुछ ब्राह्मण भी काम करते हैं। उन्हीं लोगों को खोजते हुए कारखाना के गेट पर चले गए। वहीं बाहर में टहल रहे थे तो इस बेचारे पर नजर गयी। गाँव–ठिकाना पूछने पर इसने बताया कि हरखू पासवान का दमाद है। तब समझ लीजिए कि मन थिर हुआ।"

पंडितजी की आपातकालीन विपत्ति–कथा सुनकर मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ बल्कि हालात का अनुमान लग गया। इनके जैसे असंख्य लोग हैं जिनको आंदोलन और राजनीति से किसी तरह का संबंध नहीं है, लेकिन किसी न किसी कारण से ऐसे लोगों को भी जेलों में बंद कर दिया गया। सरकार असल में लोगों को आतंकित करके उन पर शासन चलाना चाहती है, इसीलिए दमनचक्र चला रही है। थोड़ा दम ले के पंडितजी ने फिर बोलना शुरू किया, "यहाँ दूसरे देश में बोलने से कोई हर्ज नहीं है .... हम लोग सब दिन से कांगरेस पाटी को ही भोट देते आए हैं और सो देखिए कि किस हालत में हमको पहुँचा दिया ..... ।"

मैंने कहा, "पंडितजी, आपकी विपत्ति सुनकर दुःख हुआ। आपने तो कितने धर्म–पुराणों का अध्ययन किया होगा। ऐसी अनेकों कथा है कि आततायी राजा भी प्राचीनकाल में दिग्विजय करने के लिए यज्ञ का घोड़ा छोड़ते थे। उन घोड़ों के रास्ते में जो कोई आ जाता था, वह मारा जाता था। इमरजेंसी वैसे ही किसी

यज्ञ का घोड़ा है। जो कोई इस घोड़े के रास्ते में आ जाएगा, मारा जाएगा ..... चाहे वह कांगरेस को वोट देता हो या विरोध करता हो। यह आततायी सरकार है। इसका नाश होने के बाद फिर से प्रजातंत्र का नया अवतरण होगा।'' पंडितजी महाशय यद्यपि कि सरकार के दमनचक्र का शिकार हुए थे, फिर भी कांगरेस–मोह के कारण उन्हें मेरी बात पसंद नहीं आयी, यह उनकी मुखाकृति देखने से पता चलता था। बात को दूसरी ओर घुमाने की मंशा से मैंने रासबती से पूछा, ''पंडितजी के भोजन और विश्राम का क्या इंतजाम हो रहा है?''

मेरी जिज्ञासा का उत्तर दिया पलटू पासवान ने, ''भोजन तो हम उधरे करा दिए माट्साएब, सियाराम की दुकान में..... चूड़ा–दही मिठाई..... अब सोने के लिए तो हमारे पास यही झोपड़पट्टी है, और जो ओढ़ना–बिछौना है सो तो आप जानते ही हैं।'' पलटू की बात में टीप देते हुए उसकी घरवाली ने कहा, ''हाँ माट्साएब, बढ़ामन भोजन कराने का पुन्न जो हमारे कपार में लिखा था सो तो हो गया। अब सोने का देखा जाएगा ..... सरकारे पार लगाबे।''

रासबती की स्तुति से प्रसन्न होते हुए पंडितजी ने उसे एक पुरानी बात बतायी, ''तुम्हारा बाप हरखू पासवान बड़ा बलिष्ठ था। पूरे पचगामा के दुसाध उसको अपना सरदार मानते थे। उस समय दुसाधों की रोजी–रोटी चोरी से ही चलती थी। उस समय अंगरेजों का शासन चलता था। जमिंदार के रिपोट पर ऊपर से हुकुम आया कि गाँव भर के दुसाधों को पकड़कर जेल में बंद किया जाए। सब दुसाध जहाँ–तहाँ भागे। तुम्हारा तो उस समय जनम भी नहीं हुआ होगा। हमको भी तो पिताजी ने ही यह खिस्सा सुनाया। तुम्हारी माँ उस समय एकदम नयी–नवेली थी। उसने मेरे दादा की सेवा करना सकार लिया ..... दादाजी ने तुम्हारे बाप को गाछी वाले भुसकोंड़ में छिपा लिया तब उसकी जान बची। अभी तो साक्षात कलियुग है। दुनिया में इतना पाप बढ़ गया है फिर भी यह धरती कैसे टिकी हुई है? अभी भी धरम–करम करने वाले लोगों की कमी नहीं है। कलियुग में गौ और ब्राह्मण की सेवा से बढ़कर कोई धरम नहीं है।''

उस आगंतुक महोदय की अनट बात सुनकर मुझे रहा नहीं गया। मैंने कहा, ''ओ महाशय, इन लोगों ने आपको भोजन कराया और आश्रय दिया जिसके इनाम में आप इन लोगों को ऐसी अपमानजनक कहानी सुना रहे हैं। आपके दादा कितने बड़े पतित थे जो पुलिस का भय दिखलाकर एक युवती के साथ व्यभिचार किया? और उससे भी बड़ा पतित तो आप हैं जो उस स्त्री की संतान को यह सब सुना रहे हैं।''

मेरी बात सुनकर पंडितजी एकदम तमतमा गए। वह बोले, ''सुनिए, आप कौन हैं और धर्मशास्त्र की बात समझने की आप में कितनी योग्यता है यह मैं नहीं जानता हूँ, लेकिन आप भी एक शिक्षक हैं इसलिए आपको शास्त्र की बात समझा देता हूँ। विष्णुस्मृति में कहा गया है कि, ''प्राणनर्थांस्तथा दारान ब्राह्मणार्थे निवेदयत। स शूद्रजातिर्भोज्यः स्याद भोज्यः शेष उच्यते।।'' इसका अर्थ कुछ समझे? इसका अर्थ यह हुआ कि शूद्र यदि अपने प्राण, धन और स्त्री ब्राह्मण की सेवा में अर्पित कर दे, उसी शूद्र का भोजन ग्रहण करने योग्य है। अब और सुनिए। आप जिस घटना को पतितकर्म कह रहे हैं सो आप अज्ञानी हैं, इसीलिए ऐसा बोल रहे हैं। मनुस्मृति को हिंदू धर्म का पकिया कानून कहा गया है। उस में स्पष्ट लिखा है कि ''श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति। हूयमानश्च यज्ञेषु भूयएवाभिवर्द्धते। एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु। सर्वथा पूज्याः परमं दैवतं हि तत्।।'' इस श्लोक का अर्थ भी मैं आपको समझा देता हूं — जिस प्रकार तेजस्वी अग्नि श्मशान में मुरदा जलाने पर भी अपवित्र नहीं होती है और यज्ञ में हवन करने से और भी वृद्धि प्राप्त कर लेती है, उसी प्रकार ब्राह्मण यदि किसी तरह के निंदनीय कर्म में भी प्रवृत्त हो जाता है तब भी वह सबके लिए पूज्य है; क्योंकि ब्राह्मण परम देवता स्वरूप है। मनुस्मृति और अन्य सभी धर्मशास्त्रों में इसीलिए ब्राह्मण जाति को इस

पृथ्वी का स्वामी माना गया है। किसी ब्राह्मणी की कोख से जन्म प्राप्त करते ही ब्राह्मण–शिशु यह अधिकार प्राप्त कर लेता है और मृत्यु पर्यंत इस पृथ्वी का भोग करता है। पता नहीं, आप इतनी बड़ी बात का कुछ अंश भी समझ पाए कि नहीं।''

मैं ब्राह्मण अतिथि का कतई अपमान नहीं करना चाहता था किंतु उनकी गर्वोक्तियों का उत्तर देना अनिवार्य था इसलिए मैंने कहा, ''आपने अपना जो पक्ष रखा, उसे मैंने ध्यानपूर्वक सुना। अब आप भी धैर्यपूर्वक सुनिए और समझकर जवाब दीजिए। ..... आप कहते हैं कि शूद्र निकृष्ठ वर्ण है और ब्राह्मणी की कोख मात्र से जन्म लेने वाला समस्त ब्राह्मण इस पृथ्वी का स्वामी हो जाता है। मैं समझता हूँ कि आप भारी भ्रम में हैं। आपका इतिहास संबंधी ज्ञान भी संकुचित है। हिंदू धर्मग्रंथ और इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिककाल में आर्य और अनार्यों के बीच लंबे समय तक घोर संघर्ष चलता रहा, मगर कालक्रम में दोनों जातियों के मध्य मनोमालिन्य कम हो गया और वे परस्पर एक–दूसरे के करीब आते गए; इतना तक कि दोनों में वैध या अवैध यौन संबंध भी स्थापित होता गया जो आज तक जारी है। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सभी जातियों के रक्त मिश्रित हो गए। इस मिश्रण के बाद ऐसी कोई जाति नहीं बची जो ताल ठोंककर दावा कर सके कि वह प्राचीन आर्य या अनार्य जाति की शुद्ध संतान है। जिनको अपनी जाति की रक्त–शुद्धता और श्रेष्ठता का अभिमान हो, उस व्यक्ति को 'वज्रसूच्यूपनिषद' पढ़ना चाहिए जिसमें जिज्ञासु शिष्य अपने गुरु से पूछता है कि जात्या ब्राह्मण? क्या, जाति से कोई ब्राह्मण होता है?' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए गुरुजी ने वशिष्ठ आदि श्रेष्ठ ऋषियों के जन्म का जिस प्रकार रहस्योद्घाटन किया वह सुनिए — 'जातिर्ब्रह्मण इति चेत् तर्हि अन्य जातौ समुद्भवा बहवो महर्षयः सन्ति। ऋश्यशृंगो मृग्यां जातः कौशिक कुशस्तवात् गौतमः, शशपृष्ठे वल्मीकिः वाल्मीक्यां व्यासः कैवर्त्त कन्यायां पराशरश्चांडालीगर्भोत्पन्नः वशिष्ठो वेश्यानां विश्वामित्रः क्षत्रियाणां अगस्त्यः कलसाज्जातः मांडव्यो मांडुकि गर्भोत्पन्नः मातंगो मातंगीपुत्रः अनुचरो हस्तिनी गर्भोत्पन्नः भरद्वाजः शूद्रीगर्भोत्पन्नः नारदो दासीपुत्रः इति श्रूयते पुराणे। तेषां जाति बिनापि सम्यग् ज्ञानविशेषाद् ब्राह्मणत्त्वं स्वीक्रियते तत्माज्जात्या ब्राह्मणे न भवत्येव।''

इतने उपनिषद–वाक्य सुनकर अतिथि भगवान हतप्रभ थे। मैंने उनको संबोधित करते हुए कहा, ''आप तो शास्त्रों के ज्ञाता हैं और इन वाक्यों का अर्थ समझ ही गए होंगे, लेकिन आपके आश्रयदाता लोगों को संस्कृत का ज्ञान नहीं है। इसीलिए इन लोगों को मैं अर्थ बता देता हूँ।'' मैं बासमती–रासबती और पलटू की ओर मुखातिब होते हुए बोलने लगा, ''जब चेले ने गुरुजी से पूछा कि जाति से ही कोई ब्राह्मण हो जाता है? तो गुरुजी ने कहा कि नहीं, जाति मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता है। बहुत ऐसे ऋषि–मुनि हो चुके हैं जो दूसरी जातियों में पैदा हुए थे। शृंगी ऋषि, जिन्होंने राजा दशरथ का पुत्रेष्ठि यज्ञ करवाया था, हरिणी के पेट से जन्मे थे; कौषिक ऋषि कुश के गुच्छे से जन्मे थे; अगस्त ऋषि घैला से जन्मे थे; मांडव्य ऋषि मांडुकी अर्थात मेढक से; अनुचर हथिनी से; भरद्वाज शूद्री से और नारद ने दासी के गर्भ से जन्म लिया था, ऐसा पुराणों में कहा गया है। इन महर्षियों का ब्राह्मणत्व, जाति नहीं रहने पर भी, उत्तम ज्ञान के कारण मान्य रूप से स्थापित हुआ। अतः जाति से कोई ब्राह्मण नहीं होता है।''

वार्त्ता के इस दौर में परिवार के सभी लोग शामिल थे। मैं एक चटाई पर बैठा था, रासबती और उसका पति एक बोरिया पर बैठा था, बासमती अपनी कोठरी के मुँह पर बैठी थी और दोनों बच्चे अपनी मौसी के अगल–बगल बैठे टुकुर–टुकुर ताक रहे थे। ओसारे पर एक तरफ ढिबरी और दूसरी ओर लालटेन जल

रहा था। बातचीत में भाग लेते हुए पलटू ने आश्चर्य–मिश्रित स्वर में पूछा, "अँए ओ माट्साएब, यह जो आपने कहा कि कोई हरिणी से जन्मे और कोई हथिनी से, सो कैसे हुआ?"

मैंने उसे समझाते हुए कहा, "यह सभी औरतों के ही नाम थे ..... छोटी जाति की औरतों के नाम। आज भी आप ऐसे नाम सुनते होंगे..... कबुतरी, सुगनी, हरिणी, बिलैया ..... जिन लोगों को यह महाशय छोटे या नीच लोग कहते हैं, वे लोग आज भी दुलार से अपने बच्चों के नाम पशु–पक्षियों के नाम पर रख देते हैं। यही बात है। तब रही बात घैला से या कुश की जड़ से बच्चा जनमने की, तो आप देखते होंगे कि आज भी ऐसा हो रहा है। कई बार ऐसा हल्ला उठता है कि फलाँ–फलाँ में नाजाएज संबंध था, बच्चा हुआ तो घैला–मटका मे रखकर कहीं छोड़ आया; कोई मंदिर में रख देता है तो कोई अस्पताल में। रोते हुए नवजात की तरफ किसी का ध्यान गया तो उसको उठाकर ले गया और पाला–पोसा। पुराने समय में भी ऐसा होता था। यह जो कोई कहेगा कि पहले के समय में देवता की कृपा से हवा में बच्चा जनम गया इसीलिए उसका नाम पवनसुत पड़ गया, सो बात संभव नहीं है; बच्चा तभी जनम सकता है जब स्त्री–पुरुष की भेंट हो। ये जितने ऋषि–मुनि की बात बतलाए हैं, उन सबकी माँ आप जैसी जातियों की स्त्री और ब्राह्मण बाप से पैदा हुए थे। ऐसी स्त्रियों के जब बच्चा पैदा हो जाता था तो लोकलाज से उसका बाप अपनाने को तैयार नहीं होता था; कहीं फेंक आने को कहता था। जो देखा सो ले गया, पाला–पोसा, पढ़ाया–लिखाया। संयोग अच्छा रहा तो वही बच्चा ज्ञानी होकर ऋषि–महात्मा बन जाता था। मेरे गाँव में एक चमारिन का नाम फेकनी है। परसौती के काम में वह बहुत निपुण है।"

रासबती इस मामले को और फरचाकर समझना चाहती थी, "तो वैसा बच्चा जब जनमता था तो कौन जाति का बच्चा कहाता था? उसकी माँ जब छोट जात की होती थी तब तो बच्चा भी छोटे जात का हुआ न!"

मैंने उसकी शंका का समाधान करते हुए कहा, " वैसे तो नीची जाति के लोगों का पढ़ना–लिखना उस जमाने में मना था और इसका भारी जुर्माना होता था, लेकिन ऐसे बच्चों का ब्राह्मण बाप कभी–कभी दुलार के कारण चाहे बच्चे की माँ की जिद के कारण चोरा–नुकाकर अपने उस नाजायज बच्चे को पढ़ा देता था। बढ़िया से पढ़–लिख लेने पर सब कुछ बदल जाता है। आगे चलकर ऐसे ही बच्चे ब्राह्मण जाति के बड़े ऋषि–महात्मा कहलाए, बल्कि ब्राह्मणों के पुरखा, उनके गोत्र कहलाए। ऐसे ऋषियों में वशिष्ठ, पराशर, विश्वामित्र, कौशिक, भरद्वाज, गौतम ये सब खासकर बड़े ब्राह्मण हुए जिनके नाम पर अनेकों बड़े ब्राह्मणों का वंश चलता है। अब मैं पंडितजी को कुछ और खिस्सा सुनाता हूँ, आप लोग भी ध्यान से सुनिए।"

मैंने पंडितजी की ओर मुखतिब होते हुए कहा, "अभी तक ब्राह्मणों के जितने गोत्र–प्रवर्तक ऋषि हो चुके हैं, उनमें ऋषि वशिष्ठ का एक खास स्थान है, यह तो आप भी जानते ही होंगे पंडितजी। वह सूर्यवंशीय क्षत्रिय राजाओं के परम पूज्य कुलगुरु थे, जिनकी चरण–धूलि को शिरोधार्यकर स्वयं श्रीरामचंद्र भी अपने आपको भाग्यवान और पुण्यवान मानते थे। अब इन महर्षि वशिष्ठ की गोत्र–कथा सुनिए। यह महाशय एक नीच जाति की स्त्री अक्षमाला को अपनी पत्नी बना लिए और उसका नाम बदलकर अरुंधति रख दिए। इसी अक्षमाला या अरुंधति से वशिष्ठ का पुत्र शक्ति ने जन्म लिया। वह शक्ति जब जवान हुआ तो कुत्तों की अँतरी को राँध–पकाकर खाने वाली चाण्डाली श्वपाकी से प्रेम करने लगा और उससे जन्मे पराशर ऋषि। पराशर जब जवान हुए तो मलाह की बेटी सत्यवती के संग संभोग करके विश्वविख्यात लेखक व्यासजी को जन्म दिया। व्यासजी का पूरा नाम कृष्ण द्वैपायन व्यास है, जिन्होंने वेदों के विभाग किया।"

पंडितजी मेरी बातों से खबखबाए तो थे ही, खींज भरे स्वर में उन्होंने मुझसे पूछा, "आप जो इतना बकबक कर रहे हैं, उसका कोई प्रमाण भी है या ऐसे ही किसी से कुछ सुनकर गाल बजा रहे हैं?"

मैंने कहा, "मैं भी उसी मनुस्मृति के प्रमाण से बोल रहा हूँ जो कहता है, 'अक्षमाला वशिष्ठेन संयुक्ताधम योनिजा, सारंगी मंदपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम।' इस श्लोक में सारंगी और मंदपाल की भी चर्चा है, लेकिन इनका खिस्सा बाद में। पहले वशिष्ठजी का खिस्सा पुराने दीजिए। इनके बारे में महाभारत जो बतलाता है सो तो आप जानते ही होंगे — 'गणिकगर्भ संभूतो वशिष्ठश्च महामुनिः, तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम।' और ..... 'जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः स्वपाक्यास्तु पराशरः, बहवोऽन्येपि विप्रत्वं प्राप्ताये पूर्वमद्विजा।'..... क्या माने? इसका माने तो यही हुआ न कि महामुनि वशिष्ठ वेश्या के गर्भ से उत्पन्न हुए, किंतु कठिन तपस्या और अध्यवसाय से उन्होंने ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया। इसी प्रकार व्यास मलाह की बेटी के पेट से और पराशर चाण्डाली के गर्भ से उत्पन्न हुए और आगे चलकर कितने बड़े ज्ञानी हुए सो संसार जानता है। व्यास एकदम काला–कलूटा थे और उनके शरीर से भयानक दुर्गंध आती थी। वह तो सत्यवती के कौमार्य अवस्था की संतान थे और नाना–नानी के घर पल रहे थे। बाद में सत्यवती से महाभारत के सम्राट शांतनु ने ब्याह किया, जबकि शांतनु को पहले से ही एक बेटा था, देवव्रत। वही देवव्रत आगे चलकर भीष्म कहलाया। देवव्रत ने अपने सौतेले भाई विचित्रवीर्य के लिए काशिराज की कन्या अंबा और अंबालिका का अपहरण किया। कुछ समय बाद विचित्रवीर्य बिना संतान पैदा किए ही मर गया। उसे क्षयरोग (टीबी) था। तब महारानी सत्यवती ने अपने कानीन पुत्र व्यासजी को बुलवाया और अपनी दोनों पतोहुओं से उनका संभोग करवाकर महाभारत के राजाओं को जन्म दिलवाया। यह कथा तो सब कोई जानते ही होइएगा?"

धर्मशास्त्रों में वर्णित महाघोटाला वाली कथा में परिवार के सभी लोग रुचि ले रहे थे। मेरी बात सुनकर रासबती ने कहा, "ओ माट्साएब, हमलोगों को कौन कहेगा यह खिस्सा सब? जरा कहिए न समझा के!"

रासबती की इच्छा जानकर मैंने बासमती की ओर ताका। उसने भी मूँड़ी हिलाकर अपनी बहन का समर्थन किया। मैंने सोचा, इन लोगों को कौन धर्म–अधर्म की कहानी बताएगा? अच्छा है कि जब चर्चा हो ही रही है तो ठीक से हो। यह बात तो सत्य है कि इन लोगों को हजारों बरस से इस चर्चा से जबरदस्ती दूर रखा गया। यह भी सच है कि धर्मचर्चा में भाग लेने वालों का अंग–भंग कर दिया जाता था। अब अवसर है कि इन्हें सब कुछ जानने दिया जाए।

मैंने पिछली चर्चा को जोड़ते हुए कहा, "देखिए, महाभारत की कथा तो बहुत लंबी है ..... तीन महीना तक भी बोलते रह जाएँ तो पूरा होने वाली नहीं है ..... इसीलिए अभी मैं इतना बता देता हूँ कि राजा शांतनु को गंगाजी से एक बेटा जन्मा, देवव्रत। राजा के बड़े बेटा वही थे। जब देवव्रत जवान हुए उस समय की बात है। एक दिन राजा शांतनु गंगाजी के तट पर टहल रहे थे तब उसने देखा कि एक सुंदर स्त्री नाव चलाकर लोगों को पार उतार रही थी। राजा का मन उस स्त्री पर चला गया। जब वह स्त्री नाव छोड़कर जाने लगी तो राजा उसका पिछोर धरे उसके घर तक आ गया। वह मल्लाह की बेटी थी, घर के सब लोग मछली पकड़कर और नाव चलाकर गुजारा करते थे। उस स्त्री का नाम मछगंधा था, लेकिन बाद में उसका नाम सत्यवती रखाया। यहाँ मैं थोड़ी बात शांतनु से पहले की बता देना चाहता हूँ ..... एक दिन सत्यवती नाव लेकर घाट पर थी तभी पराशर ऋषि आ गए और उसे पार उतारने को कहा। नाव जब बीच धार में पहुँची तो पराशर ने उसके साथ संभोग कर लिया। पराशर और सत्यवती के उस संभोग से व्यासजी पैदा हुए।

इतनी बात तो बता ही दिए थे ..... अब फिर राजा शांतनु की कहानी पर आ जाइए ..... राजा शांतनु सत्यवती का पीछा करते उसके घर आ गए और उसके साथ ब्याह करने के लिए उसके माता–पिता की खुशामद करने लगे। राजा ने जब बहुत खुशामद की तो राजा वाली बात, उसके माता–पिता ने तो बात मान ली लेकिन सत्यवती ने राजा के सामने एक शर्त रख दी; शर्त यह कि राजा के बाद उसका बेटा ही सिंहासन पर बैठे। राजा के लिए यह शर्त मानना बहुत कठिन था, काहे कि उसको पहले से ही एक ठो जवान बेटा था, देवव्रत। देवव्रत को राजपाट नहीं देकर बाद में जन्मे बच्चे को राजा बनाने से उसकी बदनामी होती। इसीलिए राजा सत्यवती की शर्त मानने को तैयार तो नहीं हुआ, लेकिन उसकी सुंदरता ने राजा को इतना मोहित कर दिया था कि उसका चित्त सत्यवती पर से हँट नहीं रहा था। राजा घर लौटा और चिंता में अन्न–पानी छोड़ दिया। राजा की चिंताजनक हालत देखकर उसका बेटा देवव्रत घबरा गया। उसने बाप से हालचाल पूछा। बाप ने लाज से कुछ नहीं बताया। आखिर देवव्रत को पता लगा कि कुछ दिनों से राजा मलाहों की बस्ती में जाता था। वह पता लगाकर सत्यवती के परिवार में पहुँचा। वहाँ उसे सभी बात का पूरा पता लग गया। सत्यवती ने उसे बता दिया कि राजा अगर उससे जन्मे बेटे को अपना उत्तराधिकारी बनावे तभी वह राजा से ब्याह करेगी। देवव्रत ने उसकी शर्त मान ली फिर भी सत्यवती राजी नहीं हुई। उसने देवव्रत से कहा कि वह भले अपने समय में राजा नहीं बने, लेकिन उसके बच्चे नहीं मानेंगे; बाद में गद्दी पर दावा करने लगेंगे। सत्यवती की इस शंका का समाधान करने के लिए देवव्रत ने एक कठिन प्रण किया और उसी समय घोषणा की कि वह जीवन भर कुँवारा रहेगा। देवव्रत की उस कठोर प्रतिज्ञा के कारण ही उनका नाम भीष्म पड़ गया। अब सत्यवती मान गयी। राजा शांतनु के साथ मल्लाह की बेटी का ब्याह हुआ, सत्यवती महाभारत की महारानी बन गयी।"

कथा सुनने में सबका मन लग रहा था ..... "सत्यवती से ब्याह के बाद उसे दो बेटा हुआ, चित्रांगद और विचित्रवीर्य। चित्रांगद गंधर्वों के साथ युद्ध करते मारा गया। बच गया विचित्रवीर्य। वह क्षयरोग से ग्रस्त था। उसके लिए गंगापुत्र भीष्म ने काशिराज की दो कन्या अंबा और अंबालिका का अपहरण किया और अपने सौतेले भाई से दोनों का ब्याह कराया। कुछ समय बाद वह विचित्रवीर्य भी बिना संतान पैदा किए ही मर गया। अब राजमाता सत्यवती को राजपाट के उत्तराधिकारी की चिंता होने लगी। उसने भीष्म से विचार विमर्श करने के बाद अपने पहले पुत्र व्यास को बुलवाया और दोनों विधवा पतोहुओं से सहवास करने के लिए उसे राजी किया। इस तरह का नियम उन दिनों बड़े लोगों में चलता था। इस विधि को नियोग–विधि कहा जाता था। व्यासजी तो अपनी माँ के प्रस्ताव से बहुत प्रसन्न थे मगर अंबा व्यास के साथ सहवास के लिए तैयार नहीं थी। सत्यवती ने राजपाट बचाने के लिए इसे अनिवार्य कहकर जब उस पर दवाब दिया तो वह मान गयी, किंतु संभोगकाल में व्यास का चेहरा–मोहरा देखकर वह इतना डर गयी कि उसने अपनी आँखें बंद कर ली। समय आने पर उसे जो बच्चा पैदा हुआ, उसकी आँखें भी मुँदी थीं। अंबा की वही संतान धृतराष्ट्र था, जन्म से ही अंधा। सत्यवती की दूसरी पतोहू अंबालिका के साथ संभोग के लिए जब व्यासजी गए तो वह उनको देखकर इतना डर गयी कि उसका समूचा शरीर भय से पीला पड़ गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जब बच्चा पैदा हुआ तो जन्म से वह पीलिया रोग से ग्रस्त था। उस बच्चे का नाम पाण्डु रखाया। अंबा और अंबालिका के अलावे व्यासजी ने अंबा की एक दासी से भी संभोग किया। उस दासी ने खुशीपूर्वक व्यासजी के साथ सहवास किया और समय आने पर एक स्वस्थ बच्चे को जन्म दिया। उस बच्चे का नाम विदुर रखा गया। आगे चलकर, ज्येष्ठ संतान रहते हुए भी, जन्म से ही अंधा रहने के कारण धृतराष्ट्र राजा नहीं बन पाया लेकिन उसने गांधार देश की राजकुमारी गांधारी से ब्याह किया और एक सौ पुत्रों को जन्म दिया। यही

एक सौ बच्चे आगे चलकर कौरव कहलाए। राजगद्दी पर बैठा छोटा भाई पाण्डु। पाण्डु ने दो राजकुमारियों से ब्याह किया। उसकी दोनों स्त्रियों के नाम कुंती और माद्री थे मगर पाण्डु रोग होने के कारण वह अपनी स्त्रियों से सहवास नहीं कर सकते थे। चिकित्सकों ने बताया था कि सहवास करने से उसकी मृत्यु हो सकती थी। राजा के समक्ष उत्तराधिकारी का प्रश्न फिर मुँह बाए खड़ा था। अंत में राजा पाण्डु ने संतान के लिए उसी विधि के प्रयोग की बात सोची जिस विधि से उसका अपना जन्म हुआ था, नियोग विधि।''

राजा पाण्डु ने अपने मन की बात बड़ी रानी कुंती से कही। कुंती ने भी कुँवारी अवस्था में सूर्य के साथ एक बच्चे को जन्म दिया था जिसे उसने लोकलाज के कारण एक संदुक में रखकर नदी में बहा दिया था। उस बच्चे को पानी से निकालकर एक रथवाह घर ले आया और अपने पुत्र की तरह पाला। वही बच्चा आगे चलकर कर्ण नाम से विख्यात हुआ। जो हो। पाण्डु ने जब अपनी रानी पर बहुत जोर दिया तब उसने तीन देवता, धर्मराज, वायु और इन्द्र के साथ संभोग करके युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन को जन्म दिया। इसी प्रकार पाण्डु की दूसरी पत्नी माद्री ने अश्विनी कुमार दोनों भाइयों के साथ सहवास करके नकुल और सहदेव को जन्म दिया। नियोग नियम के अनुसार अलग-अलग देवताओं से जन्मे ये पांचों बच्चे आगे चलकर पाण्डव कहलाए।''

संक्षेप में महाभारत की कथा सुनाने के बाद मैंने सुनने वालों की प्रतिक्रिया जानने के लिए पूछा, ''क्या औ सुनने वाले सब, हिंदू धर्म का यह नियम-कानून आप लोगों को कैसा लगा? ब्राह्मण अपने हित के लिए धर्म के नाम पर कानून बनाता था और क्षत्रिय राजा उन नियमों को अपने हित के लिए लागू करता था। दूसरी जाति के लोगों के शोषण के लिए ही ये नियम बनाए जाते थे। उस समाज में ताकतवर लोगों के लिए स्त्रियाँ केवल भोग की वस्तु थी।''

मेरी बात सुनकर पलटू तपाक से बोला, ''हम लोगों को तो सुनकर ही घिरना लग रहा है माट्साएब ..... कैसा विचित्र समय था..... ।''

धर्मवार्ता में पलटू की भागीदारी से पंडितजी एकदम बिफर उठे, ''रे तुम क्या जानो धर्म-अधर्म ..... जादा फटर-फटर नहीं करो ..... ।'' पलटू पर आँख तरेरते हुए पंडितजी ने अब मेरी ओर मुँह घुमाते हुए कहा, ''आप भी सुन लीजिए मास्टरजी ..... कुछ चालू खिस्सा सुनकर आप धर्म का मर्म नहीं समझ जाइएगा ..... समस्त हिंदू जाति का आदि धर्मग्रंथ वेद है और इन वेदों के अंतर्गत 'पुरुषसूक्त' का जो मंत्र है, वही वर्ण-व्यवस्था का आधार है। वेद-वाक्यम ब्रह्म-वाक्यम। आप अगर थोड़ा भी पढ़े-लिखे हैं तो मैं आपको ऋग्वेद के दसवें मंडल में वर्णित पुरुषसूक्त का मंत्र सुना रहा हूँ। जरा ध्यान से सुनिए और जानिए कि संसार की रचना का रहस्य क्या है ..... ''यत्पुरुषं व्यदुधुः कतिधा व्यकल्पयन, मुखं किमस्य को बाहू कावुरु पादाउच्यते। ब्राह्मणो'स्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः, उरुतदस्य यद्वैष्यः पद्भ्यां शूद्रो'जायत।''..... यह वेदमंत्र है, सबों को सुनाने वाली विद्या नहीं है, लेकिन आप अधर्म को प्रोत्साहन देने पर अड़े हुए हैं इसलिए मुझे बताना पड़ रहा है ..... इस मंत्र का अर्थ यह हुआ कि प्रजापति ने जिस मानव-समाज रूपी पुरुष का विधान किया, उसकी कल्पना कितने तरह से की गयी? इस पुरुष का मुख कौन है? इसकी दोनों बाँहें कौन हैं? कौन इसकी दोनों जांघ हैं और कौन इसके दोनों पैर हैं? इन प्रश्नों के उत्तर भी इसी मंत्र में दिया गया है ..... इस आदि पुरुष का मुख ब्राह्मण है, बाँहें क्षत्रिय है, दोनों जांघ वैश्य है और दोनों पैर शूद्र हैं। इसी पुरुषसूक्त के आधार पर मनु भगवान और दूसरे ऋषियों ने अपने-अपने धर्मशास्त्रों में चारों वर्णो की उत्पत्ति और कर्त्तव्यों का वर्णन किया है। मनु भगवान का वचन है — 'लोकानां तु विवृद्धयर्थं मुखवाहुरुपादयतः, ब्राह्मणक्षत्रियवैश्य

शूद्रं च निरवर्त्तयत्।' इस श्लोक का अर्थ भी वैसा ही है। मनु भगवान कहते हैं कि प्रजापति ने प्रजा के हित के लिए मुख, बाहु, उरु और चरण से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को उत्पन्न किया। बात है कि आपको धर्मशास्त्र का कोई ज्ञान तो है नहीं, इसलिए अप्रिय और धर्म–विरुद्ध बातें इन अशिक्षित लोगों को सुनाकर भड़का रहे हैं। अब आप कुछ और मंत्र ध्यान से सुनिए। मैं आपको फिर समझा देता हूँ कि ये मंत्र सबों को सुनाने के लिए नहीं बने हैं लेकिन आप जैसे हठधर्मी को रास्ते पर लाना भी जरूरी है, इसलिए आपको सुना–समझा देता हूँ। मनु भगवान का आदेश है कि — 'ब्राह्मणो जायमानोहि पृथिव्यामधिजायते, ईश्वरः सर्वभूतानां धर्म–कोशस्य गुप्तये। सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम्, श्रेष्ठयेनाभिजनेनेदं सर्व वै ब्रह्मणोर्हति।।' इस मंत्र का अर्थ ध्यान से सुनिए। इसका अर्थ यह है कि ब्राह्मण जन्म से ही पृथ्वी के समस्त जीवादि में श्रेष्ठ होता है। वह सभी प्राणियों का ईश्वर और धर्म के खजाना का रक्षक होता है। इस संसार में जिस प्रकार की भी संपत्ति है, वह ब्राह्मणों की निजी संपत्ति है। ..... अब आप बताइए कि अभी भी आपका अज्ञान दूर हुआ कि नहीं?"

पंडितजी अपनी जाति की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए जोर लगा रहे थे और स्वयं अपने तर्क से संतुष्ट भी थे। अब उत्तर देने की मेरी पारी थी। रासबती भी कुछ पूछने के लिए सपर रही थी। मैंने उसकी ओर ताका तो वह पूछ बैठी, "बढ़ामन तो समझते हैं मात्साएब, लेकिन ई सुदर के हुआ सो नहीं समझे.....।"

रासबती को संक्षेप में ही समझाते हुए मैंने कहा, "ब्राह्मण तो आप समझते ही हैं; क्षत्रिय माने समझिए आज कल जिनको राजपूत कहते हैं..... पहले वही लोग राजा होते थे और दुकान–दौरी चलाने वाले या खेती–बाड़ी करने वालों को वैश्य कहा जाता था..... बाँकी जो किसी जाति के लोग बचे, खासकर आप जैसे जातियों को शूद्र कहा जाता था, बहुत बाद में जिनको गांधीजी 'हरिजन' माने भगवान का आदमी कहने लगे.....।" बातचीत में जगह पाकर रासबती का उत्साह बढ़ गया था। उसने फिर एक प्रश्न किया, "अँए ओ मात्साएब, ऊ लारी ऑफिस में जो लालाजी हैं, ऊ भी त ऊँचे जात के हैं, कायथ हैं न .....?"

मैं उसकी जिज्ञासा को रोकना नहीं चाहता था। हजारों वर्षों से तो ये लोग रोके हुए ही थे। मैंने उससे कहा, "आप बात कर रही हैं यहाँ और आपका ध्यान लालाजी पर लगा हुआ है ..... वैसे आपने पूछा है तो बताने में हर्ज नहीं है..... कायस्थ लोग चार वर्ण वाला नियम नहीं मानते हैं और न वे लोग किसी को छोटा–बड़ा मानते हैं। वे लोग सब दिन से पढ़े–लिखे हैं और सब दिन से राजपाट चलाने या लिखा–पढ़ी के काम में रहते आए हैं, इसलिए उनको 'कलम का धनी' कहा गया है। उनके भगवान चित्रगुप्त हैं, कलम–दवात के देवता।"

मेरी बात पर असहमति दर्ज कराते हुए पंडितजी ने कहा, "आपके कह देने भर से कोई वर्ण–व्यवस्था से बाहर चला जाएगा, यह होने वाला नहीं है। सरकार भी वर्ण–व्यवस्था मानती है। सभी वर्ण का अपना–अपना काम है, इसी आधार पर सरकार भी खास तरह के काम में शूद्र को लगाती है। यहाँ नेपाल में भी हिंदू धर्म का राज है। आपको पता करना चाहिए कि ब्राह्मण–धर्म में कायस्थों के बारे में क्या कहा गया है .....।"

मैंने पंडितजी की गर्वोक्ति का उत्तर देते हुए कहा, "ब्राह्मण–धर्म में कायस्थों को शूद्र से भी नीच कहा गया है क्योंकि कायस्थ लोग खुद भी पढ़ते–लिखते थे और दूसरों को भी पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते थे, जबकि ब्राह्मण–धर्म में सबों के लिए शिक्षा की अनुमति नहीं थी। 'तत्वविवेक' नामक ग्रंथ में कहा गया है कि 'लिपीनां देश जातानां लेखनं स समभ्यसेत्, गणकत्वं विचित्रं च बीजपाटी विभेदतः। वृत्यानयावर्त्तनं

स्यात् कायस्थस्य विशेषतः, अधमः शूद्रजातिभ्यः पंचसंस्कारवानसौ।' इसका अर्थ यह हुआ कि कायस्थ लोग देश की लिपियों को सीखकर उनके लेखन का अभ्यास करें। इन लोगों की योग्यता हिसाब–किताब, अंकगणित और बीजगणित में विशिष्ट है। ये लोग लेखक और गणक के रूप में अपनी जीविका चलावें। ये शूद्र से भी अधम और पाँच संस्कार वाले हैं ..... ऐसा ब्राह्मणग्रंथों में कहा गया है, किंतु जो समुदाय पढ़ा–लिखा है वह इस भ्रमजाल में क्यों पड़ेगा?" मैंने पलटू की ओर ताकते हुए कहा, "आप लोग भी अपने आप को किसी से हीन नहीं मानिए, पढ़ाई–लिखाइ में लगिए और आगे बढ़ने का प्रयास कीजिए। ..... अब मुझे पंडितजी को जवाब देने दीजिए ....।"

पंडितजी मेरे उत्तर की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। मैंने कहा, "पंडितजी, आपने जितने प्रमाण ऋग्वेद और मनुस्मृति से दिया उसे मैंने सुना। आपने उन मंत्रों के जो अर्थ बताया उससे भी मैं सहमत हूँ। अब आप भी धैर्यपूर्वक मेरा उत्तर सुनिए। पहला जवाब तो मैं 'पुरुषसूक्त' के संबंध में दे दूँ। आप विद्वान हैं। धर्मशास्त्रों का गंभीर अध्ययन आपने किया है। वेद को गूढ़ और आद्य ज्ञान कहा गया है। वेदमंत्रों का अर्थ लेकिन मात्र आक्षरिक रूप से नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वेद आद्य काव्य भी है। वेदों में अनेक स्थलों पर आलंकारिक प्रयोग प्रचुर रूप में हुआ है। इसीलिए पुरुषसूक्त के अभिप्राय को आक्षरिक रूप में लेने से कई प्रकार की अड़चनें पैदा हो सकती हैं। पहली अड़चन तो जगत्स्रष्टा के स्वरूप को लेकर खड़ी होगी। यदि यह मान लिया जाए कि परमात्मा मुख आदि अवयवधारी कोई विशिष्ट व्यक्ति है तब तो उसके साथ किसी स्त्री का होना भी अनिवार्य है, क्योंकि प्रकृति का यही नियम है कि सभी मनुष्यों का जन्म माता के जननेन्द्रिय से होता है। ईश्वर भी प्रकृति का नियम नहीं तोड़ता है, इसीलिए किसी पुरुष के मुँह, बाँह, जांघ या कि पैर से मनुष्य के जन्म की बात मानकर चलना तो नितांत अनर्गल, अवैज्ञानिक और कपोल–कल्पित होगा। दूसरी ओर, यदि पुरुषसूक्त का आलंकारिक अर्थ लिया जाए तो एक ज्ञान की स्थापना होती है। इस रूप में अर्थ करने से सूक्त का अभिप्राय मेरे विचार से यह हो सकता है कि जिन लोगों ने अपने बुद्धि–बल का संवर्द्धन किया वे समाज के मुखिया बन गए; जिन लोगों ने अपने भुज–बल को बढ़ाया वे क्षत्रिय कहलाए; जिसने अपनी जांघ के परिश्रम से कृषि–वाणिज्य आदि कर्म द्वारा समाज का भरण–पोषण किया वे वैश्य कहलाए और जिन लोगों ने इन तीन प्रकार की योग्यता को बढ़ाने का प्रयास नहीं किया वे समाज के सभी नीच सेवाकर्म में लग गए। ऐसे ही लोग शूद्र संज्ञा के अधिकारी बने। ..... दूसरी बात यह भी कि पुरुषसूक्त का आक्षरिक अर्थ लेने से उन श्रुतियों का विरोध होता है जो परमात्मा को निराकार और हस्त–पाद आदि अवयव–विहीन मानते हैं। उदाहरण के लिए 'श्वेताश्वतर' की इस श्रुति को लिया जाए — 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यक्षुः सशृणोत्य कर्णः, सवेत्ति वेद्यं च तस्यानस्ति वेत्ता तमाहुरग्रयं पुरुषं महान्तम्।' आप तो इसका अर्थ जानते ही होंगे, स्रोता लोगों को भी समझा देता हूँ कि वह परमात्मा बिना पैर वाला होते हुए भी तेजी से चलता है; बिना हाथ वाला होते हुए भी किसी को पकड़ लेता है; नेत्रहीन होते हुए भी वह सब कुछ देखता है और बिना कान के भी सब कुछ सुनता है। .... मैं उम्मीद करता हूँ कि आप इस अर्थ से सहमत होंगे।"

मेरी बात से पंडितजी सहमत हुए कि नहीं ऐसा तो उन्होंने प्रकट रूप में कुछ नहीं बतलाया, किंतु उनकी मुखमुद्रा देखने से पता लगा कि वे थोड़ा नरम जरूर पड़े। अब मुझे 'वर्ण' और 'जाति' से संबंधित उनके भ्रम पर विचार करना था। मैंने चर्चा प्रारंभ करते हुए कहा, "पंडितजी, मुझे लगता है कि आप 'वर्ण' और 'जाति' को समानार्थक शब्द मान रहे हैं। सर्वसाधारण लोग वर्ण और जाति में कोई अंतर नहीं देखते हैं, लेकिन दोनों शब्दों के अर्थ में आकाश–पाताल का अंतर है। 'जाति' प्राकृतिक हैं, जबकि 'वर्ण' कृत्रिम। जाति

जन्म से प्राप्त आकृति–विशेष पर, किंतु वर्ण वैयक्तिक गुण–कर्म पर आश्रित रहता है। विभिन्न शास्त्रों में जो परिभाषा दी गयी है, उसके अनुसार मनुष्य मात्र एक जाति है। इसी प्रकार घोड़ा एक जाति है और घोड़ा जाति में जैसे कि अरबी, काबुली, भोटिया, गदहा आदि उसके अवांतर भेद हैं। जो कोई व्यक्ति ब्राह्मणादि चार वर्ण को गाय, घोड़ा, गदहा आदि की तरह प्राकृतिक अवांतर भेद मानते हैं, वे या तो स्वयं भ्रमग्रस्त हैं अथवा स्वयं वस्तुस्थिति जानते हुए भी दूसरों को ठग रहे हैं। इस बात को ऐसे समझ सकते हैं कि गाय, घोड़ा, गदहा आदि में परस्पर यौन संबंध द्वारा प्रसव–क्रिया नहीं हो सकती है, किंतु ब्राह्मण और शूद्र के बीच ऐसी क्रिया हो सकती है। मनुष्य मात्र एक जाति है, इसका समर्थन 'सांख्यकारिका' ने भी किया है — 'अष्ट विकल्पो दैवस्तैर्यग् योन्यंश्च पंचधा भवति। मनुष्यश्चैकविधः समासतः भौतिक सर्गः।' वाचस्पति मिश्र की व्याख्यानुसार इसका अर्थ यह होता है कि ब्रह्मा, प्रजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस और पैशाच : ये आठ प्रकार की देवयोनियाँ हैं। तिर्यक योनि पाँच प्रकार की है : पशु, मृग, पक्षी, सरीसृप और स्थावर। मनुष्य योनि एक ही प्रकार की है। ब्राह्मणादि चारों वर्णों में किसी प्रकार का पार्थक्य नहीं होने से वह मनुष्य जाति का अवांतर भेद नहीं माना गया है।''

मैंने विश्लेषण को आगे बढ़ाते हुए कहा, 'गौतम न्यायसूत्र' में जाति का लक्षण इस प्रकार कहा गया है — 'समान–प्रसवात्मिका जातिः। समानः तुल्यः प्रसवः जनन–व्यापारः आत्मा–स्वरूपो यस्याः सा जातिः' ; अर्थात जिसका स्वरूप एक ही तरह का जनन–व्यापार है, वह जाति है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिन प्राणियों की जनन–क्रिया एक जैसी होती है, वे परस्पर सजाति हैं।''

जाति और वर्ण से संबंधित मेरे विवेचन से पंडितजी महाराज निरुत्तर हो गए थे किंतु वह अभी भी अड़े हुए थे, ''आपके कह देने से गेहूँ और घुन एक ही जाति के नहीं हो जाएंगे, तथापि वर्णाश्रम धर्म की स्थापना सभी मनुष्य बल्कि सभी जीवों के कल्याण के लिए हुआ था।''

पंडितजी से बहस करना व्यर्थ था। वह किसी रूप में यह नहीं मान सकते थे कि भारत के पचास करोड़ से भी ज्यादा लोगों की दुर्दशा का मुख्य कारण वर्णाश्रम धर्म पर आधारित जाति–प्रथा थी। मैंने स्पष्ट शब्दों में उन्हें बता दिया, ''सुनिए पंडितजी, अब मुझे आपसे कोई तर्क नहीं करना है। आपके साथ बहस करना निरर्थक होगा, मगर आपकी उपस्थिति में इन लोगों को कुछ बता देना मैं उचित मानता हूँ। अब आप मात्र सुनिए और यदि आपको लगे कि मैं किसी श्लोक का अर्थ गलत बता रहा हूँ तो अवश्य टोकिए। .... आप लोगों ने धर्म के नाम पर जिस प्रकार का अत्याचार लोगों को अछूत और शूद्र कहकर किया है, वह किसी नरसंहार से कम नहीं है। हजारों वर्षों से इन लोगों को न रहने को घर, न पहनने को वस्त्र, न पेट भरने को अन्न और न शिक्षा से संबंध रहा। इस कारण से जिस प्रकार के अधम जीवन जीने के लिए इन्हें बाध्य किया गया, इसका एकमात्र कारण आप लोगों की जाति–प्रथा और इसको सत्य बतलाने वाले धर्मशास्त्र हैं। आपने शुरू में ही बताया था कि शूद्र यदि अपने प्राण, धन और स्त्री ब्राह्मण की सेवा में अर्पित कर दे, उसीका अन्न भोजन योग्य है, अर्थात वह अछूत नहीं है। बात तो आपने सोलहो आने ठीक कही है, कारण जब वह अपना सब कुछ, यहाँ तक कि अपने प्राण और स्त्री तक अर्पित कर दिया तब उसके पास अब बचा ही क्या? आप लोगों ने धर्म के नाम पर जिस प्रकार कसाई जैसा व्यवहार इन लोगों के साथ आज तक किया है, उसका उदाहरण विश्व–इतिहास में कहीं मिलना कठिन है। महर्षि अत्रि ने क्या लिखा — ''वध्यो राजा सवै शूद्रो जपहोमपरश्च यः, यतोराष्ट्रस्य हता'सौ यथा वह्नेश्चवै जलम्।' इसका अर्थ क्या है? अत्रि ने कहा कि राजा उस शूद्र का वध कर दे जो शूद्र पूजा–पाठ, जप–होम करता है; क्योंकि जिस प्रकार जल

अग्नि को नष्ट कर देता है उसी प्रकार पूजा–पाठ करने वाला शूद्र संपूर्ण राज्य को नष्ट कर देता है। .... और इसी नियम के आधार पर राजा राम ने, जिसे लोग भगवान मानकर पूजते हैं, शंबूक नामक शूद्र की गरदन काट दी। उसका अपराध क्या था? यही कि वह पूजा–पाठ करता था? हाय रे धर्म! जैसा यह नियम बनाने वाला अत्रि, वैसा ही कसाई राजा राम!''

मैं कुछ अपने मन से गढ़कर नहीं बोल रहा था। यही शास्त्र के वचन थे। पंडितजी चुप थे। मैं मगर चुप बैठना नहीं चाहता था। मैंने उनसे पूछा, ''ओ महाशय, ब्राह्मण दूसरे की स्त्री के साथ अधिकारपूर्वक व्यभिचार करे और शूद्र सदाचारी रहे, यह कैसा धर्म था आपका? हारीत महराज ने नियम बनाया — 'धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम्, स्वदारेषु रतिश्चैव परदारविवर्जनम्।' इसका अर्थ यह हुआ कि शूद्र फटा–पुराना वस्त्र पहने, ब्राह्मणों की जूठन खाए, अपनी स्त्री मात्र से प्रेम करे। .... अगले श्लोक में तो हारीत भगवान ने जो आदेश दिया है उसे सुनकर हँसी छूट जाती है — 'इत्थं कुर्यात्सदाशूद्रो मनोवाक्कायकर्मभिः, स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापः सुपुण्यकृत्।' अर्थात फटे–पुराने पहनावा और ब्राह्मणों की जूठन खाते रहने से शूद्र के पाप कट जाते हैं और मरने के बाद वह इन्द्र का पद प्राप्त करता है।' एह , झूठ की भी सीमा होती है! ऐसे झूठे लोग कहाँ मिलेंगे?''

मेरी बात से पंडितजी तिलमिला गए थे, लेकिन मैं वही बोल रहा था जो धर्मशास्त्रों में वर्णित था। मैं श्लोकों के अर्थ गलत नहीं बता रहा था, फिर वह आँखें तरेरकर मुझे कैसे डरा सकते थे? अब मैंने श्रोताओं को वार्ता में सीधे जोड़ते हुए पूछा, ''आप लोग आज भी जो ऐसी बुरी दशा में जी रहे हैं, उसका कारण जानते हैं? इसका असली कारण इन लोगों द्वारा बनाया धर्म का कानून है। इनके मनु भगवान ने नियम बनाया कि 'शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः, शूद्रो हि धनमासाद्य ब्रह्मणानेव बाधते।' इस श्लोक का अर्थ यह हुआ कि शूद्र यदि कमाकर धन जमा करने लायक हो, फिर भी वह धन जमा नहीं करे, क्योंकि धन पाकर वह ब्राह्मणों को दुःख पहुँचाएगा।' इस नियम को और कठोर बनाने के लिए मनु ने आगे लिखा है, 'विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद द्रव्योपादानमाचरेत्, नहि तपस्यास्ति किंचित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि कः।' इस श्लोक में मनु कहते हैं कि यदि किसी प्रकार शूद्र धन जमा कर ले तो ब्राह्मणों को चाहिए कि वह उस शूद्र का धन बिना किसी भय या संकोच के ले ले, क्योंकि शूद्र का अपना कुछ नहीं है। उसका धन उसके मालिक, अर्थात ब्राह्मण द्वारा हरण करने योग्य है।' .... ऐसा अन्याय संसार में कहीं और नहीं हुआ होगा। धर्म के नाम पर इन लोगों ने शूद्रों को तरह–तरह से शारीरिक कष्ट तो दिया ही, सबसे बढ़कर घोर मानवीय अपराध तो यह किया कि इनको पढ़ने–लिखने से रोक दिया। महर्षि गौतम ने अपने दण्ड–विधान में लिखा कि — 'शूद्रो द्विजातीनभिसन्धायाभिहत्य च वाग्दंड, पौरुष्याभ्यामंगं मोच्यो येनोपहन्यात्। आर्यस्त्र्यभिगमने लिंगोद्धारः, स्वप्रहरणं च गोप्ता चेद्वधो'धिकः। अथहास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपु, जतुभ्यां श्रोत्रपरिपूरणम् उदाहरणे जिह्वाच्छेदः धारणे शरीरभेदः। आसन शयन वाक्पथिषु समप्रेप्सुर्दंड्य शतम्।।''

''इस कानून में कई बातों के लिए दण्ड तय किया गया है। कहा गया है कि शूद्र यदि किसी ब्राह्मण के प्रति निंदा या तिरस्कार करे अथवा उसके ऊपर चोट करे तो राजा उस शूद्र का वही अंग कटवा दे जिस अंग से उसने चोट किया था। शूद्र यदि अपने से बड़ी जाति की स्त्री के साथ संभोग करे तो राजा उसका लिंग कटवा दे अथवा वह स्वयं अपनी जान दे दे; यदि वह किसी तरह अपनी जान बचाने का प्रयास करे तो राजा उसका वध कर दे। शूद्र यदि किसी प्रकार वेद–वाक्य सुन ले तो राजा उसके कान को सीसा अथवा लाह पिघलाकर भर दे। यदि वह वेदमंत्र का उच्चारण करे तो राजा उसकी जीभ कटवा दे। यदि वह वेदमंत्र

याद कर ले तो राजा उसका शरीर कटवा दे। शूद्र यदि आसन, बिछावन, बातचीत अथवा रास्ते में चलते समय ऊँची जाति की बराबरी करे तो राजा उस पर सौ पण (करीब एक लाख रुपए) का दण्ड लगावे।' .... _ क्या ओ पंडितजी, यही कानून था न! हाय रे हिंदू धर्म के अन्यायी !''

धर्म के इस रहस्योद्घाटन से पलटू का परिवार आश्चर्यचकित था। मेरी बात सुनकर वह बोला, ''बाप रे बा! ऐसन जुलुम चलता था और हम समझते थे कि यह सब नसीब की बात है। एही अत्याचार के ओजह से आज तक हम सब दरिद्दर आ मुरुख रह गए। हम लोगों को तो न कभी पेट भर खाना मिला आ न देह पर बस्तर जुटा ...... दो अच्छर का अकिल कहाँ से होता! आज एतना समझ में आया कि ई सब खाली बड़का लोक के किरदानी था। अब समझ में आ रहा है कि एतना जुलुम का खेला ई लोग कैसे चलाता था। अच्छा, अब ऊ बात चलने वाला नहीं है।''

पलटू की बात का समर्थन करते हुए मैंने कहा, ''ओ पलटू, जितने दुःख की बात आपने बताया वह सब दुःख हिंदू धरम के ऐसे कानून के पेट से ही जनमा है। एक ठो बात मैं और बता देता हूँ , धर्म का कानून कहता है कि 'एक जातिर्द्विजातींस्तु वाचा दारुणया क्षिपण, जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्य प्रभवो हि सः।'' इसका माने यह हुआ कि शूद्र अगर किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य को किसी तरह की कठोर बात कह दे तो उस शूद्र की जीभ काट लेना चाहिए, क्योंकि उसने सबसे नीच जाति में जन्म लिया है। ...... और बतलावें? अगर किसी ब्राह्मण का नाम लेकर बुरा लगने वाली बात कह देते, जैसे कि फलाँ ब्राह्मण कैसा कसाई है, कैसा अन्यायी है, तो जानते हैं, इस बात का दण्ड क्या था? सुनिए, मनु भगवान इस बारे में क्या कहते हैं — ''नाम जातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः, निक्षेप्यो यो मयः शंकुर्ज्वलन्नास्ये दशांगुलः।।'' इस कानून का मतलब ठीक से जान लीजिए; इसका अर्थ यह हुआ कि ब्राह्मण यदि आप पर किसी तरह का अत्याचार करे तो भी उसका विरोध नहीं कीजिए, कोई कठोर बात नहीं कहिए और न किसी तरह की गाली दीजिए। यदि नाम लेकर ब्राह्मण को गाली दे देते तो जानते हैं इसका दण्ड क्या था? इसका दण्ड यह था कि गाली देने वाले शूद्र के मुँह में खूब लाल करके दहकाया हुआ दस अंगुल लंबा लोहे की छड़ घुसेड़ दिया जाता था। क्या ओ पंडीजी, यही दण्ड था न!''

यह बात सुनते ही बासमती समेत सभी लोग क्षोभ से तिलमिला उठे। पलटू का ध्यान कहीं और था। उसने ठीक से बात नहीं समझने के कारण टोका, ''हम नहीं समझे माट्साएब, जरा फिर से कहिए।''

''मैं आपको उदाहरण देकर समझा देता हूँ .....देखिए, जैसे कि आपकी बासमती है ...... कितनी सुंदर है! लगता है जैसे कोई फूलकुमारी हो! मान लीजिए कि उस जमाने में आप इसके साथ कहीं जा रहे होते और किसी ब्राह्मण की नजर इस पर पड़ जाती या इसकी सुंदरता पर उसका मन चला जाता तो वह इसको जबरदस्ती खींचकर ले जा सकता था; और यदि इसके लिए आप उस ब्राह्मण को गाली दे देते तो जानते हैं गाली देने का क्या दण्ड आपको मिलता? आपके मुँह में दस अंगुल लंबा लोहे का लाल करके धिपायी हुई छड़ घुसा दिया जाता। और अगर अपनी साली को उस राक्षस से बचाने के लिए आप उस पर हाथ–पैर चला देते तो आपका हाथ–पैर कटवा दिया जाता क्योंकि मनु भगवान का यही आदेश है — ''येन केन चिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्टमन्त्यजः, छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम्।'' आप लोग पंडितजी से ही इसका माने पूछ लीजिए। ...... इसका माने हुआ कि शूद्र यदि हाथ–पैर अथवा जिस किसी अंग से अपने से बड़ी जाति पर प्रहार करे तो राजा उसका वही अंग कटवा दे। समझ गए? मनु भगवान इस दण्ड के बारे में ठीक से समझा दिए हैं — ''पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति, पादेन प्रहरन् कोपात् पादच्छेदनमर्हति।'' इसका

माने हुआ कि शूद्र यदि अपने से बड़ी जाति के किसी आदमी पर चोट करने के लिए हाथ या कोई डंडा उठाये तो उसका हाथ कटवा देना चाहिए; क्रोध में आकर यदि पैर चला दे तो उसका पैर कटवा देना चाहिए। क्या ओ पंडितजी, यही अर्थ हुआ न?"

पंडितजी धर्म–कानून के रहस्योद्‌घाटन से एकदम खीज गए थे। उन्होंने दग्ध स्वर में कहा, "ओ, आप मुझे क्या पूछ रहे हैं? आप तो आग लगा रहे हैं। लेकिन आप यह नहीं बता रहे हैं कि इन लोगों को संरक्षण भी तो वही ब्राह्मण–क्षत्रिय देता था!"

मैंने पंडितजी की बात का उत्तर देते हुए कहा, "आप किस तरह के संरक्षण की बात कर रहे हैं यह मैं नहीं समझ पा रहा हूँ, लेकिन मैंने तो मनुस्मृति में यही पढ़ा है कि — "सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः, कट्या कृताङ्को निर्वास्य स्फिचं वास्याव कर्त्तयेत्"। ओ पलटू, इस श्लोक का माने बतावें? इसका माने यह हुआ कि शूद्र अगर ब्राह्मण के साथ किसी तरह के एक जैसे आसन पर, या बेंच–बैठकी पर बैठ जाए तो राजा उसकी कमर को लोहे की धिपायी हुई छड़ से दाग दे और उसे अपने राजपाट से निकाल दे, अथवा उसका चूतड़ कटवा दे।' अब आप ही कहिए पंडीजी कि किस तरह का संरक्षण शूद्र को मिला हुआ था।

इतनी बात सुनते ही पलटू की घरवाली दुःख से बिफर उठी और अत्यंत खीज भरे स्वर में बोली, "अरे बाप रे बा! ओ माट्साएब, अब हम लोगों को सुना नहीं जाता है ...... एतना जुलुम ...... हम तो समझ रहे थे कि भगबाने के ईहाँ से हम सब नीच बन के आए हैं आ सब दिन नीचे बन के रहना है। ई तो आप जेतना बता रहे हैं उससे पता लगता है कि हम सब केतना धोखा में थे ...... बाप रे बा ...... अब कुछ न बताइए माट्साएब ...... अब हमरी आँख खुल गयी है ...... अब किसी का जुलुम चलने नहीं देंगे ...... ।"

इस वार्ता से सबकी आँख खुल गयी थी। बासमती ओसारे से उठकर अपनी बहन के पास बैठ गयी। पंडीजी अभी भी अपनी शेखी थामे हुए शान से बैठे थे और उसी गर्व के साथ बोले, "ओ महाशय, मैं तो आपका नाम भी नहीं जानता हूँ, आपने सबको भड़का दिया ...... ऐसे में ही कहा गया है कि छोटी जात के लोगों को दो ठो पैसा दे दीजिए लेकिन ज्ञान नहीं दीजिए ...... 'न शूद्राय मतिं दद्यात्'...... उसमें भी ये लोग दुसाध हैं। दुसाध जब दूसरे की बात सुनकर भड़क जाता है तो तो फिर सम्हाल में नहीं आता है। इसीलिए कहा गया है कि दुसाध की छाँह में भी जाने से हड्डी तक छुआ जाती है ...... ।"

पंडितजी की यह बात सुनकर मेरा धैर्य समाप्त हो गया। रात अधिक हो गयी थी। उनके साथ बतकुट्टन करने से कोई लाभ नहीं था। मैंने उनकी बात के जवाब में इतना ही कहा, "देखिएगा पंडितजी, अब जमाना बदल गया है; छाँह की बात जाने दीजिए ...... अभी आप दुसाध के आश्रय में ही ठहरे हुए हैं ...... जाग के ही रहिएगा ...... कहीं बासमती आपकी हड्डी में न पैठ जाए ...... ।" इतना कहकर मैं अपने ठौर पर लौट आया।

दिसंबर का जाड़ा अपने सभी हथियार के साथ आ धमका। कल शाम से जो धुंध लगी सो रात भर में और भी घनी हो गयी। महाभारत में खिस्सा है कि पराशर ऋषि को नाव में बैठाकर सत्यवती मछगंधा जब बीच गंगा में पहुँची तब तक उसका रूप और यौवन ऋषि महोदय को बेवश कर चुका था। ऋषि ने सत्यवती से कहा, मैं तुम्हारे साथ संभोग करूंगा। ऋषि–ब्राह्मण वाली बात, शूद्र–कन्या मना नहीं कर सकती थी। उसने कहा, "इस तरह दिन–देखार बीच नदी में, लोग देखेंगे तो मुझे क्या कहेंगे? आपको लाज–शरम नहीं है, लेकिन मैं तो स्त्री हूँ।" उसकी बात पर ऋषि ने कहा, "तुम इसकी चिंता नहीं करो। मैं मंत्रबल से ऐसी धुंध लगा दूँगा कि सिर्फ तुम मुझे देखोगी और मैं तुम्हें देखूंगा।"

यह कहानी इस कारण से याद पड़ गयी क्योंकि ध्यान असल में पंडितजी पर लगा हुआ था। रात में वह कैसे सोए? अभी दिन के दस बज गए। उनके नाश्ता–पानी का क्या हुआ? यही चिंता करते जब बासमती के आँगन में पहुँचे तो देखा कि एक ठो बड़ी रोहू मछली अढ़िया में रखी थी और उसको घेरकर दोनों बच्चे बैठे हुए थे। रासबती ओसारे पर बैठी बोरसी में हाथ सेंक रही थी और बासमती सेजौट ठीक कर रही थी। पंडितजी वहाँ नहीं थे।

मुझे देखकर दोनों बहन बहुत खुश हुई। रासबती हलसते हुए बोली, "रात तो माट्साएब, आपने पन्नीजी को एकदम पस्त कर दिया। हम सब नहीं जानते थे कि आप भी एतना बड़ा पंडित हैं ...... उनका कोई सक–बक नहीं चला ......।"

मुझे पंडितजी का समाचार जानने की व्यग्रता थी। तब तक बासमती भी सेजौट ठीक करके मेरे पास आ गयी। मैंने उससे पूछा, "आर्य–देवता चले गए क्या? लगता है, रात वह आपके पास ही सोये ......।" उसे लाज हो आयी, "धत् ...... जाइए, कैसी बात करते हैं! आप तो चले गए, बहुत झमेला हुआ। आप तो जानते ही हैं, हमारे घर में ओछान–बिछाओन की क्या हालत है ...... दीदी ने उनसे कहा कि खजूर पत्ते की चटाई बिछा देते हैं, आपको कंबल है ही, ओढ़ के सो जाइए ...... सो वह कहते थे नहीं, खजूर की चटाई अशुद्ध होती है ...... खजूर के गाछ पर चढ़कर पासी ताड़ी उतारता है ...... उसके पत्ते वाली चटाई पर कैसे सोएंगे? दूसरी बात कि जिस चटाई पर हम लोग सोते हैं उसी पर वह कैसे सोते? तब तो एक जैसा आसन–बासन हो जाएगा न!"

मेरी व्यग्रता बढ़ती जा रही थी, पूरी बात जानने के लिए। मैंने बिगड़ते हुए पूछा, "तब वह कैसे सोये? माटी पर ही?" बासमती ने कहा, "नहीं, उनकी नजर मेरे सेजौट के पुआल पर गयी। उन्होंने कहा, दो मुट्ठी पुआल अगर पसार दोगी तो उस पर गमछा बिछाकर सो जाएंगे। तब पुआल निकालकर ओसारा पर फैला दिए, उसी पर वह पड़ रहे। भोरे कब चले गए सो हम लोग नहीं जान पाए ......।"

"चलो अच्छा हुआ, मैं समझ गया। बात खतम कीजिए ...... वह नगराइन चले गए होंगे। यहाँ एक हरिजन के घर में ठहरने का प्रायश्चित न उनको कहीं करना पड़ जाए। जो हो, आप क्या कीजिएगा? उनका धर्म, उन्हीं का पाप; अपना धर्म–कर्म वही जानें! अब जरा आग सेंकने दीजिए।" इतना बोलकर मैं बोरसी के पास बैठ गया। बासमती भी घुसकुनिया मारकर वहीं बैठ गयी। रासबती हँसुआ ले आयी और

मछली निकाने लगी। मछली का खोंइचा छोलते हुए वह बोली, "माट्साएब, आपने तो जो अकिल्ल का बात सब बताया सो जिनगी में पहली बार ही सुने थे मगर ओतने से हम लोगों का दिमाग खुल गया ...... अब बड़े लोगों का सब ठो खेला–बेला हम भी समझ गए हैं ...... लेकिन एक ठो बात जो पन्नीजी बोले, हमरी माइ के बारे में, सो खिस्सा ऊ पूरा–पूरी नहीं बताए ...... आप तो ऊ बात पर उनको ऐसा लथाड़े कि जिनगी भर याद रहेगा मगर आपके मन में होता होगा कि इसकी माइ कैसी थी जो दूसरे के पास जाती थी ......।"

"आपकी माँ के बारे में मैं कुछ भी बुरा नहीं सोच रहा हूँ। उस समय बड़े लोग करते ही थे ऐसा बेबहार ...... लेकिन आप अगर पूरा खिस्सा सुना दीजिएगा तो अच्छा ही होगा। आखिर हम भी तो समझेंगे कि उन लोगों का रवैया कैसा था ......।" मैंने उसे उत्साहित करते हुए कहा।

रासबती माछ की अढ़िया और हँसुआ लेकर मेरे नजदीक चली आयी और ओलती में बैठकर मंद स्वर में बोलने लगी, "माट्साएब, आपको पूरा खिस्सा सुनावेंगे तो आप भी कहिएगा कि इसका माइ–बाप कैसा बीरबंका था ...... बड़े–बड़ों से टक्कर लेने वाला। बात है कि ऊ सब बड़ा जुलुम करता था हम लोगों पर ...... फगुआ का समै रहता था तो जिसके खुट्टा पर खस्सी–बकरी देख लेता था, खोल लेता था ...... अनदिना भी जिसके छप्पर पर कद्दू–कुम्हड़ा देख लेता था, जबरदस्ती तोड़ लेता था। एही सब उपदरब के चलते हमर बाबू सब दुसाध को गोलिया के एक किया आ जबरदस्ती के बदला चोरी का फैसला किया। हमर बाबू सब मिल के चोरी से धान काट लेता था ...... मकई काट लेता था। लेकिन बाभन–राजपूत सब का ऊठ–बैठ तो बड़ा–बड़ा हाकिम तक रहता है, सो ऊ सब दुसाध लोग का नाम चोर के लिस्ट में लिखा दिया। उसके बाद पुलिस दुसाध सब का खिहार करने लगा। जौन बेर के बात पन्नीजी बता रहे थे सो मामला ठीके था ...... हमरे बाबू को पन्नीजी का दादा ठीके अपन गाछी में नुका लिया आ हमरे माइ भी ठीके बुढ़वा पन्नीजी के खुस करे के बात सकार लिया मगर हमरे माइ होसियारी से समै खेपते जा रही थी...... बुढ़वा के पास बैठ जाती थी आ एन्ने–उन्ने कुछ करके, झूठ बोल के कि महीना हो गया है, कन्नी काट के निकल जाती थी ...... एही में दस दिन बीत गया ...... मामला सांत हो गया आ हमर माइ–बाबू अपन घर चला आया। ऊ बुढ़वा पन्नीजी तो ठगा गया लेकिन इससे ऊ बहुत गोस्सा गया।"

इतना बोलकर रासबती ठहर गयी। मुझे लगा कि आगे की बात बहुत भारी थी जो वह अपनी बहन के सामने नहीं बोलना चाहती थी। उसने अपनी बहन से कहा, "गे बौआ, जाओ न, हाली से थोड़ा लहसुन आ हल्दी पीस लो ...... माछ तो निका गया।" बासमती फुरती से उठी और दूसरी कोठरी में चली गयी। उसके जाने के बाद रासबती ने फिर अपना किस्सा चालू किया, "बुढ़वा पन्नीजी तो माट्साएब, बढ़िया से ठगा गया था, सो ऊ सब बात जमींदार भैरो मालिक को बता दिया। ऊ दोनों में बड़ा मेलजोल रहता था आ जमींदार के बारे में क्या बतावें ...... ऊ चालचलन का बड़ा खराब आदमी था ...... गाँउ भर के केतना जनी–जात के इज्जत खराब कर दिया था। हमरे टोला पर तो उसका ई खेला नहीं चल पाता था मगर मुसहर टोला पर ऊ बुढ़िया तक को नहीं छोड़ता था। अब ऊ जमींदरवा बुढ़वा पन्नीजी के बदला लेवे के लिए हमर माइ के टोह में लग गया। जब–तब हमरे घर चला आता था। जमींदार वाली बात, उसको कौन रोक सकता था ...... ऊ चाहता तो हमरा घर उजार के गाँउ से भगा देता ...... इधर हमरे माइ सब बात बाबू को बता देती थी। आखिर हमरे माइ–बाबू बिचार किया कि इस जमींदरवा को मजा चखाया जाए। एही बात पर हमर माइ जमींदार भैरो मालिक का बात सकार लिया। उसके साथ पक्का कर लिया कि जब महजिद में

अजान पड़ता है उसी समै में गाछी बाला मड़ैया में आइए। हमरे घर के पछारी में भैरो मालिक का बहुत बड़ा गाछी था आम का। ओइ गाछी में ऊ इनार आ खूब बढ़िया मड़ैया बनाके रखा था। ...... जहिया के बात बता रहे हैं, ऊ अन्हरिया रात था। इधर हमरा माइ आ बाबू भी खूब बढ़िया से इंतजाम कर लिया। साँझे में हमर बाबू मोटरी–गठरी में सब सामान बान्ह लिया आ हाथ में लाठी धर लिया। माइ भी बढ़िया से चाटी–पाटी करके कमर में घास काटे बला हँसुआ खोंस लिया। ऊहाँ गाछी में बाबू एक ठो गाछ में सट के नुका रहा आ माइ मड़ैया में बैठ गयी कि तभिए जमीदरवा आ गया। हमर माइ पहिले उसको हँसी–मजाक में लगा दिया आ इधर–उधर के खेला करके उसका मन बौरा दिया। उसी खेला में ओकर धोती खोलके कोना में फेंक दिया। जब उसका देह आ मन एकदम तनतना गया तब मुट्ठी में ओकर इंद्री पकड़ के हँसुआ से घास के जैसे काट लिया। माट्साएब, ई बात सब बोले में भी खराब लगता है ...... इंद्री कटा के ऊ भैरो मालिक त मुरगी के जैसे छटपटाते भागा ...... ओन्नी हमर बाबू लाठी ले के खड़े था ...... टँगरी पर लाठी मारके पहिले ओकरा गिरा दिया आ एक ठो रस्सी ले के ओकर हाथ पीठी पर घर के उल्टा बान्ह बाँध दिया ...... जब ऊ बन्हा गया तब हमरी माइ अपने हाथ में जो ओकर कटलहवा इन्द्री रखे थी सो ओकर मुँह में ढूँस के गमछा से मुँह बाँध दिया ...... एतना सब करने के बाद हमर माइ–बाबू लत्ते–पत्ते ऊहाँ से भागा। भागते–भागते दुनू आदमी राताराती दरभंगा चला आया। ...... माट्साएब, हमरा तो जन्मो नहीं हुआ था। माइ–बाबू दरभंगा में दू–चार दिन नुकाके बिताया आ बाद में कलकत्ता चला गया। ऊहाँ हमरे नाना एक ठो बड़का सेठ के इहाँ नोकरी में थे। नाना हमरे बाबू को वहीं काम धरा दिया। दू–तीन साल बाद देस अजाद हो गया। बाद में जमीदारी भी खतम हो गया। अब किसी का डर नहीं था। तब तक हमहूँ पाँच साल के हो गए तो माइ–बाबू हमरा ले के गाँउ चला आया। हम सब गाँउ आए तो किसी का हिम्मत नहीं पड़ा कि कुछ बिगाड़ता। हमरे माइ तो सब जनीजात को ई खिस्सा सुनाती थी कि सबका हिम्मत बनल रहे आ किसी के जुलुम के आगे मूँड़ी नहीं झुकाना पड़े।"

रासबती ने एक सुर में पूरा किस्सा बता दिया। यह पद–मर्दित लोगों की विजय–गाथा थी। बोलते–बोलते उसका मुँह–कान उत्तेजना और क्षोभ से एकदम ललौन हो गया था और आँखों में काँसे की थाली पर पड़ती सूर्य की किरणों से बनी झिलमिलाहट जैसी चमक थी। मैं उसका किस्सा सुनकर अभिभूत था, किंतु उसकी मुखमुद्रा अभी भी तनी हुई थी। मैंने वातावरण को हल्का करने के विचार से हास्य का एक पुट छोड़ा, "तो रासबती जी, वह छुछुरकटा (लिंग–कटा) जमींदार उसके बाद भी जिंदा रहा कि मर गया?"

'छुछुरकटा' शब्द सुनकर रासबती को बहुत हँसी आयी। वह बहुत जोर से हँसने लगी और देर तक हँसती रही। उसको हँसते देखकर बासमती भी हँसने लगी, मैं भी हँसने लगा और दोनों बच्चे भी ताली बजाते हुए कूदने लगे। हँसते–हँसते रासबती का पेट दुखने लगा। उसने दम धरते हुए कहा, "माट्साएब, ऊ तो पैसा बला बड़ा आदमी था ...... इलाज कराके बँच गया लेकिन जब तक जिया, छुछुरकटा बनके ही जिया ......।"

बोरसी में आग का ताव कम हो गया था। आग को फिर से जगाने के लिए बासमती ने उसमें थोड़ी खुहड़ी और गोइंठा डाल दिया। सीत में भींगी खुहड़ी गरमाने पर इतना धुँआ देने लगी कि हम दोनों उठकर खड़े हो गए। टाट में अड़कर खड़ी बासमती मुझसे बिलकुल सट गयी थी। उसकी देह के सामीप्य से मेरे तन–मन में एक सुखद गरमाहट भर रही थी मगर मुझे लगा, जब–तब ऐसे स्वाद की चाहत करना अच्छी

बात नहीं है। अनायास बासमती ने मेरा हाथ पकड़ लिया। उसके मुँह पर अनुराग–मिश्रित विनती का भाव पसरा हुआ था। बहुत सधे स्वर में उसने कहा, "आपसे एक प्राथना ...... ।" वह आगे बोल नहीं पायी। मैंने उसे बोलने के लिए उत्साहित किया, "प्रार्थना की क्या जरूरत है ..... आप बोलिए ...... क्या बात है?"

बासमती और मेरे बीच में वैसे तो बहुत खुलापन आ गया था, लेकिन हम लोग उस समय तक खान–पान से दूर ही थे। बासमती ने टुकड़े–टुकड़े में कहा, "मछली बन रही है ..... आप भी आज यहीं खाइए न!" उसका निमंत्रण मुझे अच्छा लगा। मैं कुछ देर तक उसकी आँखों में ताकता रहा; इसमें कहीं मेरी छवि भी है क्या? मैंने उसके आग्रह से खुश होकर कहा, "इतनी बात बोलने में आपको भारी क्यों लग रहा था? मैं भी आपको पंडितजी जैसा आदमी लग रहा हूँ क्या? मुझे आपसे कोई परहेज तो नहीं है! मैं कुछ न कुछ आज खाऊँगा, लेकिन पहले चाय पिलाइए।" मैंने मन ही मन सोचा, मेरा तो तन–मन पहले ही उससे छुआ गया है, अब और क्या छुआएगा? मेरी स्वीकृति की बात सुनकर उसे जैसे कोई अलभ्य वस्तु मिल गयी थी। उसकी मनोदशा बहुत भावुक लग रही थी। मुझे लगा जैसे वह कहीं खो गयी थी। उसकी चेतना जैसे अछूत–परिचायक पुरानी देह के पिंजरे से निकलकर कहीं और चली गयी थी। वह विस्मृतप्राय मुझसे और सट गयी। फिर लगा जैसे उसके पैर ठोस धरातल से छुआए, वह अनिमेष मेरी ओर ताकती रही। अनायास उसकी पलकें सिमसिमायी और वह दहोबहो रोने लगी। उसको रोते देखकर मैं कुछ विचलित सा हुआ लेकिन फिर सोचा, इसे रोने दें ...... यह शूद्र–जाल से विमुक्ति का क्रन्दन है। जब यह खूब रो लेगी तो जन्म–जन्मांतर से स्फीत इसकी दमित ग्रंथियाँ फूटकर बाहर आएंगी ...... इसे पिघलने दीजिए! अपने ही लोर से जब यह दहोबहो हो जाएगी, तभी सद्यःस्नाता कोई मानुषी खड़ी होगी। मगर उसे रोते देखना मेरे लिए कठिन था। मैंने उसके कंधे पर अपने हाथ से हल्के–हल्के थपकी दी। वह चुप हो गयी और आँख पोंछते अपनी दीदी के पास चली गयी। मुझे लगा, उसे बताने गयी थी कि मैं भी उसके यहाँ खाउंगा। कुछ ही देर में दोनों बहन हलसते हुए मेरे पास आयी और रासबती ने प्रसन्नता के स्वर में कहा, "माट्साएब, हमरा धन्न भाग जो आप हमारा भोजन गरहन करेंगे।"

मैंने उसकी भावुकता को बल देते हुए कहा, "आप यह क्यों मानती हैं कि आप अछूत हैं? मैं तो किसी को ऐसा नहीं मानता हूँ। मैं आपकी चाय का इंतजार कर रहा हूँ।" रासबती उल्लसित थी। उसने कहा, "मछली में भर पेट अंडा था ...... घर में बेसन, प्याज, तेल सब कुछ है..... हम झट से थोड़ी पकौड़ी बना लेते हैं ...... इस सितलहरी में गरमागरम पकौड़ी मजेदार रहेगी ..... उसके बाद चाय ......।" उसके हाथ–पैर में गजब की तेजी आ गयी थी। उसने बासमती से कहा, "गे बौआ, तब तक तुम माट्साएब से बतियाओ..... हम तुरत पकौड़ी छान के आ जाते हैं।"

हम दोनों बोरसी पर हाथ फैलाए सितलहरी में आग का आनंद ले रहे थे। बोरसी में कुछ लकड़ी दहककर पझा गयी थी, कुछ टुहटुह लाल होकर दहक रही थी और कुछ धुँआने के बाद लहकने जा रही थी। मुझे लगा, बासमती की माँ, उसकी बहन रासबती और वह खुद बोरसी की लकड़ी की तरह है; पता नहीं, किसकी आग समय की हवा पाकर दहक उठे। ऐसा ही कुछ सोच रहे थे कि बासमती ने टोका, "मैं एक तो बात नहीं समझती हूँ..... आपने आते ही पूछा कि आर्य भगवान कहाँ गए? रात में भी विदा होते समय आप बोले कि भगवान राम आर्य थे और हम सब अनार्य हैं तो उनकी पूजा कैसे कर सकते हैं? आपने बताया

कि उसी पूजा करने के कारण राम ने शंबूक दुसाध की गरदन तलवार से काट दी ...... यह आर्य अनार्य वाली बात क्या है?"

उसकी जिज्ञासा से प्रसन्न होकर मैंने कहा, "आपके इस सवाल से मैं बहुत खुश हुआ। सभी झंझट की जड़ यही दोनों शब्द हैं। अभी मैं आपको मोटामोटी बात समझा देता हूँ। आप देखते होइएगा कि अपने समाज में जादे लोगों का रंग साँवला है; कुछ लोग तो आपके बहनोई जैसे काले हैं। जो लोग साँवले या काले हैं उनके पुरखे भी उसी रंग के थे। यह देश–कोस के मौसम के कारण होता है। भारत देश का मौसम बहुत गर्म है, इसलिए यहाँ के ज्यादा लोग साँवले हैं। लेकिन यहीं नेपाल में जो लोग पहाड़ पर रहते हैं उनका रंग गोरा है। ...... अब आपको इतिहास की बात बतलाता हूँ ...... बहुत पुरानी बात है ...... करीब चार हजार वर्ष पहले की बात। किसी बहुत ठंढा देश, बर्फ के देश से चलकर हजारों–हजार लोग दूसरे कई देशों को पार करते हुए भारत में प्रवेश कर गए। ठंढे देश में जनमने के कारण उनकी कद–काठी लंबी, रंग गोरा, नाक की हड्डी पतली और आँख–केस का रंग भूरा था। वे सब अपने को आर्य कहते थे और जो कोई उनके जैसा नहीं था, माने यहाँ वाले साँवले लोग, जिनके शरीर का डीलडौल कम लंबा और केस का रंग काला था, उन सबको वे अनार्य कहते थे। आर्यों की बोली भी बदली हुई थी, वे संस्कृत बोलते थे। जब आर्य लोग इस देश में आए तो यहाँ के लोगों के साथ उनकी लड़ाई होती रही। आर्य लोग अपने साथ हजारों पशु लेकर चलते थे। उनके पास घोड़े भी थे। वे घोड़े पर चढ़कर ही अपने पशुओं को रोमते थे और उसी पर चढ़कर लड़ाई भी करते थे। इधर के अनार्य भी वीर थे लेकिन उनके पास उस समय तक घोड़े नहीं थे। दूसरी बात कि यहाँ के अनार्य लोग बहुत धनी थे। उनके पास अच्छे घर भी थे और सोना–चाँदी भी था लेकिन उनको लोहे का ज्ञान नहीं था। आर्य लोग तेज सवारी घोड़े पर चढ़कर लोहा के तीर–धनुष से लड़ते थे इसलिए जीत गए और यहाँ के लोगों को अपना गुलाम बना लिए। इतना तो आप भी जानती होंगी कि जो जीता सो राजा, जो हारा सो गुलाम। इसके बाद आर्यों ने भी अपने बीच में काम बाँट लिया — जो लोग पढ़ने–लिखने या पूजा–पाठ के काम में लगे वे ब्राह्मण कहलाए और जो लोग लड़ाई–भिड़ाई के काम में लगे वे क्षत्रिय कहलाए। क्षत्रिय लोग जीते हुए इलाके पर शासन चलाने का काम करते थे और उन्हीं के बीच से राजा होता था। जो लोग गोरे रंग वाले आर्य थे, माने ब्राह्मण और क्षत्रिय, यहाँ की सभी धन–संपत्ति, जमीन उनकी हो गयी और यहाँ वाले जो लोग थे, सब उनके सेवक हो गए। यहाँ वाले जो लोग खेती–बाड़ी, पशुपालन, बनिज–व्यापार में लगे वे वैश्य कहलाए और सभी तरह के नीच काम शूद्र के जिम्मे पड़ा। इसी शूद्र को आज कल हरिजन कहा जाता है। अब तो आप समझ गयी होंगी कि बड़े–छोटे और ऊँच–नीच का बटवारा कोई भगवान नहीं बल्कि राजा तय करता है। यह धर्म का भी मामला नहीं है, यह तो पूरा–पूरी राजनीति का विषय है। अब आप बताइए कि आर्य–अनार्य की बात समझे कि नहीं?"

इतनी देर तक आर्य–अनार्य के चक्कर में बोरसी की आग कब बुत गयी सो पता नहीं चला। रासबती थोड़ा गोइठा ले आयी और बोरसी की आग को पजारते हुए बोली, "सब कुछ समझ गए माट्साएब, अपना फैदा के लिए जात–पात बनाके हम लोगों को एतना दुःख देने वाला यही आर्ज–फार्ज था ...... एतना हजारो बरिस से हम लोगों को पढ़ने–लिखने नहीं दिया आ जनावर बनाके खटाया ...... हमरे धन से ऊ सब मातबर बन गया आ हम सब दरिद्दर बने रहे ...... खैर, जो हो गया सो हो गया ...... अब ऊ बात नहीं चलने देना है ......।"

मैंने रासबती के तनाव को कुछ कम करने के ख्याल से, उसमें नई उम्मीद जगाने के विचार से कहा, "वैसे तो समाज में जात–पात का फर्क अभी भी बना ही हुआ है, फिर भी अब कोई अपने आप को आर्य कहकर अत्याचार नहीं कर सकता है ......।"

रासबती मेरी बात से आश्वस्त नहीं हुई। उसने कहा, "माट्साएब, ई दुनिया में हम लोगों जैसन कउनो परानी अगर है त ऊ है कीड़ा–मकोड़ा...... एक ठो कीड़ा जहिया से जनमता है खाली खाता है, हगता है आ मर जाता है...... हमरा में आ कीड़ा में केतना फरक है? हम लोग को न कुछ समझने आता है न ठीक से बोलने आता है...... लेकिन एक ठो बात है माट्साएब, हमरे दिमाग में भी कभी–कभी कुछ सोचाता है ...... हो सके है कि हमरे जैसन बुड़बक के बात लोक को खराब लगे, मगर बात पर बात चलने से बात निकलवे करता है। हजारो बरिस से दबलहवा मरलहवा तो अभियो छुदरे बनल रह गया आ जो सब पहिले बड़का था ऊ सब आज आउरो बड़ा हो गया। आप बोलते हैं कि आज के जमाना में आर्ज–फार्ज बला बात नहीं है, मगर हम तो बूझते हैं कि आज के जमाना में ऊ आर्ज सब आउरो बलगर हो गया है, भले ओकर नाम बदल गया हो ...... ई सब नया जमाना के आर्ज है...... ई नएका आर्ज पहिले बला आर्ज से जादा झुट्ठा आ जादा खतरनाक है ...... कौन है ई नएका आर्ज, जानते हैं कि नहीं? ई नेता आ मंतरी...... सब धन ओकरे है ...... देस चलावे के नाम पर देस को लूटने का काम एही लोग कर रहा है...... जो जेतना बड़ा झुट्ठा सो ओतना बड़ा नेता...... सब धन नेताजी का ...... आ ओकरा में भी जे गरीब है, ऊ सब नेता का झंडा ले के हुलेलुले करते फिरता है ...... एकरा सब से बच के रहिएगा ...... ।"

रासबती ने कुछ गलत नहीं कहा था। यह इमरजेंसी क्या है? भारतीय राजनीति में एक खानदानी आर्य के वर्चस्व की लड़ाई ही तो है! मगर इस लड़ाई में भी अब साधारण लोगों को ठेलकर पार्टी वाले नेता आगे आ गए हैं। अब जेपी की ताकत बनी छात्र–वाहिनी किनारे कर दी गयी है। तो क्या, जेपी आंदोलन भी मात्र राजनीतिक आर्यों की लड़ाई बनकर रह जाएगी? ऐसी लड़ाई जेपी अगर जीत भी लेते हैं तो 'संपूर्ण क्रांति' का उनका सपना साकार हो पाएगा? क्या ये राजनीतिक नेता समाज में कभी बदलाव आने देंगे? मेरे जैसे लाखों युवक जिस बदलाव की आशा में अपना सब कुछ दाव पर लगाकर आंदोलन में कूद पड़े हैं वह सब हो पाएगा? ...... मैं कुछ बेचैनी महसूस करने लगा। रासबती की बातों ने मेरे अंदर एक हलचल मचा दिया। मैं आग तापना छोड़कर टाट में ओठंग गया। मैं अपने में खोया था मगर बासमती मेरे अंदर की हलचल से बेखबर नहीं थी। अब वह मेरे चेहरे के रंग में आने वाले बदलाव को कुछ–कुछ समझने लगी थी। उसने शायद मेरा ध्यान टालने के लिए कहा, "आग तापने का भी नियम होता है ...... आप जानते हैं कि नहीं?"

मैंने आश्चर्य से उसकी ओर ताककर कहा, "ऐसी बात तो मैं पहली बार सुन रहा हूँ कि आग तापने का भी कोई नियम होता है। यह क्या होता है?"

उसके होंठों पर स्मिति की एक क्षीण रेखा उभरी और बिला गयी। उसने कहा, "ये नियम सब गरीबों के लिए बने हैं और उन्हीं लोगों को बूझने भी आता है। जाड़ा का महीना हरिजन–गुरजन के लिए बहुत कठिन होता है। गरीब–गुरवा की जिनगी, न पेट में अन्न और न देह पर बस्तर ...... जाड़े में उनकी मौगति हो जाती है। आधा पेट रूखा–सूखा खाकर संतोख कर लेना तो उनकी जन्माउ आदत रहती है, लेकिन

जाड़ा के महीना में फटी–पुरानी गुदड़ी पहनकर रात काटना पहाड़ हो जाता है; उसमें भी अधपेटा खोराक पर जाड़ा बेसी कँपाता है।"

उसके भोगे–परखे सत्य जब शब्द बनकर बहराने लगे तो बकारी ने साथ नहीं दिया; गला अवरुद्ध हो गया और आँखें नम हो गयीं। उसने मूँड़ी टेढ़ियाकर ठेहुने से टिका लिया। मैंने उसके माथे पर पड़ी बोरसी की राख को फूँक मारकर उड़ा दिया और उसके माथे को सहला दिया। अपनत्व का वह स्पर्श उसके उत्साह को बढ़ाया होगा; वह फिर से बोलने लगी, "जानमारू ठिठुरन से बचने का एक ही उपाय उनके पास रहता है ......देह में देह सटाकर ......पँजियाकर सोइए और समझिए कि गरमा गए। खेनरा भी कहाँ बना पाते हैं सब लोग। कम से कम पाँच–सात ठो साड़ी को एक साथ नत्थी करेगा तब कहीं जाकर एक ठो पतला खेनरा बन पाएगा। एतना लूगा–बस्तर कहाँ से लावेंगे ये लोग? जादा लोग गोन या गोनर बना लेते हैं...... उसीको दिन में बिछा भी लिया और रात में ओढ़ लिया ......।"

मैं समझा नहीं। खेनरा तो मैं जानता था। हमारे घर में भी बनता था। साल भर में जितनी धोती–साड़ी या किसी तरह की चादर जैसा कोई वस्त्र फटा–पुराना रहता था, उसे माँ जमा करते रहती थी और समय आने पर सबको एक साथ साटकर बड़ी सूई से सीकर खेनरा–सलगा तैयार कर लेती थी। हमारे बगल के आँगन वाली दादी बहुत हुनरमंद और निपुण शिल्पी थी। वह सलगा पर सूई–धागे से तरह–तरह की सुजनी और मोर–मजूर बना लेती थी। गाँवों में उन दिनों यही ओढ़ने–बिछाने का रिवाज था। हमारे गाँव में ऐसे बहुत कम परिवार थे जो तोशक और रजाई बनवा सकते थे। आसिन–कातिक के महीने में हर साल खेनरा और सलगे की मरम्मत का काम शुरू होता था; छोटे बच्चे पैर के लथाड़ से जहाँ कहीं खेनरा की परतें फाड़ दिए रहते थे, वहाँ नयी चिप्पी लगाकर ठीक किया जाता था। ...... लेकिन मैंने गोनर नहीं देखा था। मैंने उससे पूछा कि गोनर किसे कहते हैं। उसने कहा कि यह पुआल से बनता है; पुआल की एकडोरिया बुनी हुई पटिया को गोनर कहते हैं। मैं सोच नहीं पा रहा था कि पुआल से बनी पटिया ओढ़कर कैसे कोई सो सकता है। शायद बासमती मेरी दुविधा समझ गयी। उसने कहा, "गोनर पर अगर कोई बोरा–चट्टी रख दिया जाता है तो उतना जाड़ा नहीं लगता है। ...... जाड़ा भगाने का दूसरा उपाय आग तापना या दिन में धूप सेंकना है। नियम है कि 'रौद (धूप) तापिए पीठ में, आग तापिए पेट में।' लोग गोबर–माटी से इसी तरह की बोरसी बना लेते हैं और जो कुछ जलाने लायक मिल गया, उससे अगियासी करके पेट गरमा लेते हैं। कहता है कि पेट गरम रहने से जाड़ा मे अच्छा रहता है और भूखे पेट में जो मरोड़ उठता है, सो भी पेट गरमाने से नरम रहता है। किसी तरह रात कट जाने पर भोर में किरिन फूटने पर लोग पीठ सेंककर टनमना जाते हैं। मजदूर चाहे कुदाल पाड़े कि ईंटा ढोए, सारा बोझ तो पीठे पर पड़ता है न! धूप में पीठ सेंकाने से उसको खटने भर का दम मिल जाता है। शाम होते–होते फिर से पीठ अकड़ जाती है तो देह में सटकर सोने से अकड़ कुछ कम हो जाती है। ...... वैसे तो बड़े लोगों की पीठ भी सोये–सोये दुखने लगती है ......।" यह बात बोलकर वह हँसने लगी। मुझे लगा कि वह मुझे बड़ा आदमी समझकर व्यंग्य कर रही है। तब मैंने भी उसे याद करा दिया, "जैसे सुंदर स्त्री की पीठ कुड़ियाने लगती है ......।" पिछली बात याद आने से उसे हँसी लग गयी। उसे हँसता देखकर मैं भी खूब हँसा।

हँसी की लहर जब थमी तो उसे एक खास बात याद आ गयी। उसने कहा, "जाड़े में लेकिन एक और बात होती है ...... ।" उसकी आँखों में एक रहस्यमय चमक देखकर मुझे लगा कि जरूर कोई खास

बात है। मैंने पूछा, "सो क्या?" वह बोली, "पता नहीं, यह बात आपको कैसी लगे, लेकिन ऐसा होता है.....। दुसाध–मुसहर के तो घर भी जादातर एक ही होता है। एक ही घर में बुढ़वा–बुढ़िया, बकरी–खस्सी, बेटा–पुतोहू ...... सब कोई एक ही जगह। जिसका घर थोड़ा बड़ा रहा तो बीच घर में माटी से बनी कोठी रख दिया ..... कोठी के एक तरफ बेटा–पुतोहू और दूसरी ओर बाँकी सब लोग। घर अगर छोटा रहता है तो कोठी नहीं अँट सकती ...... तब बुढ़वा–बुढ़िया को बाहर जाना पड़ता है। गरमी के मौसम में तो कोई कहीं पड़ रहता है, लेकिन जाड़ा में कहाँ जाएगा, दोनों सट के किसी कोना में पड़ रहते हैं। तब तो आप समझ ही गए होंगे ...... मन मानता नहीं है ...... बुढ़िया को बच्चा हो जाता है। वैसे भी गाँव–देहात में बिना कपड़ा–लत्ता वाले जादा गरीब लोगों को पूस–माघ (नवंबर–दिसंबर) में बच्चा ठहर जाता है जो भादो–आसिन (सितंबर–अक्तूबर) में जनमता है। बहुत औरत को तो नहीं चाहने पर भी जाड़ा के कारण बिआना पड़ता है ... ... समझे, जाड़ा का खिस्सा?"

मैं बासमती के सामाजिक ज्ञान और मानविकी की समझदारी पर अचंभित था। मैं नहीं जानता था कि वह इतना कुछ समझती होगी। मैंने पूछा, "आप इतनी बात कैसे समझती हैं?" उसने कहा, "आप लोग पढ़ने–लिखने से यह सब समझते हैं लेकिन एक हरिजन लड़की को बचपन से ही यह सब समझना पड़ता है, क्योंकि उसको यही सब उठाना पड़ता है। वैसे आप भी बहुत बात जानते हैं। रात में आप पंडितजी के आगे ऐसी बात रख दिए कि उनकी बोलती बंद हो गयी, लेकिन एक ठो बात जो आप बोले सो ठीक नहीं कहे ..... . ।" इतना कहकर वह लजा सी गयी। मैंने रात की बात पर ध्यान लगाया लेकिन मुझे स्मरण नहीं हो रहा था, ऐसी कौन बात मैंने कह दी जो इसे ठीक नहीं लगी। मुझे सोच में पड़ा देखकर उसने कहा, "नहीं याद पड़ा? आपने मेरे बारे में कहा था ...... ।"

मुझे धक् से वह बात याद आयी जो मैंने बासमती का नाम लेकर कही थी, "ओहो...... याद पड़ा ...... आपके बारे में मैंने कहा था कि 'कितनी सुंदर है ...... लगता है जैसे कोई फूलकुमारी हो ...... सो तो मैं आपको अभी भी कह रहा हूँ ..... यह झूठ थोड़े है!" वह कुछ बोली नहीं, लेकिन लाज और उमंग के झकास से उसके होंठ कँपकँपाए, अपनी ही गर्म उसाँस ने उसका पसाहन कर दिया और मधुर भावों के उछाह से प्रकंपित उसके हाथ मेरे हाथ को कसकर थाम लिया। तभी उसकी बहन ने हाँक दिया, "गे बौआ, जरा इधर आ ...... ।" उसने मुसकियाकर मुझे देखा और बहन के पास चली गयी।

माछ के अंडे से बनी पकौड़ी तैयार हो गयी थी मगर दोनों बहन में गुनधुन इस बात को लेकर हो रही थी कि इसको परोसा कैसे जाए। मैंने देखा, चीनीमिट्टी के प्लेट केवल दो थे। मैं समझ गया और समस्या सुलझाते हुए कहा, "एक प्लेट में मैं और बासमती ले लूँगा और दूसरे प्लेट में माँ–बच्चे ...... ले आइए।"

बासमती एक प्लेट उठाकर आयी और एक पकौड़ी मेरे मुँह मे रख दी। उसने आगे में प्लेट रखा और मुझसे सटकर बैठ गयी। मैंने भी एक पकौड़ी उसके मुँह में डाल दी। वह निहाल हो उठी। रासबती दोनों बच्चों के साथ ओसारे के दूसरे भाग में बैठकर खाने लगी। मैंने पकौड़ी की प्रशंसा करते हुए कहा, "एह ..... पकौड़ी तो लाजवाब बनी है ...... एकदम खास्ता और मजेदार ...... ।" मेरी प्रशंसा से उत्साहित होते हुए रासबती ने कहा, "माट्साएब, हम लोगों को छोटा आदमी कहा जाता है, मगर जरा बिचारकर देखिए तो एक तो मुसहरनी कन में से अन्न बीछकर लाती है, उसको झाड़–फटककर सुअन्न बनाती है आ पाँच परानी का पेट भरती है। अगर उसको एतना अकिल्ल नहीं रहता तो उसका गुजर कैसे चलता?...... आ रहे हैं चाह बना के त एक ठो बात पूछेंगे ......।" वह हबर–हबर खा के चाय बनाने चली गयी। हम दोनों चुपचाप खा रहे थे। कभी–कभी वह मेरे मुँह में एक ठो रख देती थी और मुसकियाने लगती थी।

कुछ देर में रासबती दोनों हाथ में चाय के कप पकड़े चली आयी। उसने दोनों कप बोरसी के पास रख दिया और अपने लिए एक ठो अलमुनिया की कटोरी में लेकर सुरकने लगी। दो–चार घूँट पीने के बाद वह एक ईंट पर पोन रोपते हुए बोली, "हमरा एक ठो बात के बड़ा अचरज लगता है माट्साएब, जो ई कइसे हुआ ...... पन्नीजी बोले कि जइसे मुरदा को जलाने से भी आग पबित्तरे रह जाता है वैसे ही कउनो गलत काम करे से भी बढ़ामन के पाप नहीं लगता है ...... इसीसे ऊ अगर कवनो नीचा जात के औरत के पास चला जाता है तइयो उसको नजाएज नहीं कहा जाता है, लेकिन ऊहे औरत जब ओकरा पास से हँट जाती है तो फिर से अछूत हो जाती है ...... ।"

मैंने उसकी बात को संदर्भ से जोड़ते हुए कहा, "मैंने तो पहले ही आपको बता दिया कि सत्यवती मलाहिन के साथ पराशर ऋषि ने नाव पर संभोग कर लिया जिससे व्यासजी का जन्म हुआ, लेकिन पराशर खुद किसके बेटा थे? जिनको भगवान राम कहा जाता है, उस राम के कुलगुरु थे वशिष्ठ ऋषि। उस वशिष्ठ ने नीच जाति की स्त्री अक्षमाला से ब्याह किया और उसका नाम अरुंधति रख दिया। अरुंधति और वशिष्ठ को बेटा हुआ तो उसका नाम रखा गया शक्ति। शक्ति ने एक ठो डोमिन से ब्याह किया। वह डोमिन कुत्ते की अँतरी–मोतरी को राँध–पकाकर खाती थी। उसको लोग श्वपाकी कहते थे। उसी श्वपाकी डोमिन और शक्ति से पराशर ने जन्म लिया।"

"सो ही त कहते हैं माट्साएब, बड़का जात के लोग नीचा जात के औरत के साथ रह लेता था आ बाद में ओकरे छुद्दर कहके घिरना करने लगता था। असली छुतिहा त ऊ अपने हुआ न! इसीको कहता है, इत्तर का पानी भित्तर गया, चुम्मा लेते जात गया ......।"

उसकी बात सुनकर मुझे जोर से हँसी आ गयी। मैंने कहा, "आप तो ऐसा–ऐसा मुहावरा सब बताती हैं जो मैंने कभी सुना भी नहीं था। इसका माने–मतलब क्या हुआ?"

रासबती तो बोलना ही चाह रही थी। उसने कहा, "त सुनिए माट्साएब, हम भी आपको एक ठो डोमिन बला खिस्सा सुना रहे हैं। आप त धरम सास्त बला खिस्सा बताए हैं, हम एकदम जिंदा खिस्सा बता देते हैं जो हमरे फुफू के गाँउ में हुआ था। बाबू के बहिन को आप लोग पीसी बोलते हैं आ हम सब फुफू बोलते हैं। हमर फुफू के गाँउ में कमला नदी है। ऊ नदी के किछेर पर धानुक, बढ़ही, हजाम, दुसाध, मुसहर आ दोसर–दोसर जात सबका घर था, लेकिन एक बार नदी में बाढ़ आ गया आ कटाव से धसना गिरने लगा। बहुत घर नदी में बह गया। सब कोइ ऊहाँ से भागके जहाँ–तहाँ चला गया मगर मंदिर को कुछ नहीं हुआ। पुरना जगह पर रह गया खाली ऊ मंदिर आ एक घर डोम। मंदिर का पुजारीजी कउनो दोसर गाँउ का था। जो चढ़ौना आ सामान होता था सो मोटरी बान्ह के दू महीना पर अपना घर चला जाता था आ सब कुछ रखके दू दिन में आ जाता था। एही तरह से पूजा–पाठ चलता था। इधर डोमवा के घर में दू परानी बुढ़वा–बुढ़िया आ एक ठो लड़िकी। ऊ छोकड़ी जवान आ देखाऊ थी, बड़ा खाबसूरत। छौंड़ी सब दिन सूअर चराके आती थी तब नहा–धोके बढ़िया से चाटी–पाटी करके आ एक ठो चटाई ले के चली आती थी मंदिर के पीपर बला छाँउ में आ ऊँहे आराम करती थी। कुछ दिन हुआ, देखते–देखते पुजारीजी उस छौंड़ी पर लोभा गया। अब ऊ पुजारीजी ओकरा परसाद देने लगा, मगर हँटिए के। पुजारीजी सब दिन केला, बतासा, लड्डू आ कि जो परसादी चढ़ता था सो एक ठो पत्ता पर रखके ओकरा नजीक में माटी पर रख देता था आ ऊ छौंड़ी उठाके खा लेती थी। होते–होते दुनू में साँठ–गाँठ बैठ गया। साँझ में जब आरती–उरती हो जाता था, भगबान के भोग लग जाता था तब ऊ छौंड़ी पहिले से ठिकाना पर चली जाती थी, उधर से पुजारीजी भी अपना कंठी–माला सब उतार के, चंदन–उंदन पोछ के गमछा पेन्ह लेता था आ छौंड़ी के पास चला जाता

था। हमरा लगता है कि पुजारीजी कउनो तरह से नाक–मुँह दाब के कुछ देर छौंड़ी के साथ रहता था आ अपना काम निकाल के हडबड़ाएले भाग आता था। एक रात ऊ छौंड़ी पुजारीजी को भँर पाँजा पकड़ लिया आ छोड़े के लिए तैयारे न हो। ऊ छौंड़ी जोर–जोर से बोलने लगी आ पुजारीजी से सवाल करने लगी ...... " तू अगल–बगल से कर के अपना मन सांत कर लेता है आ हमरा न तू ठीक से दुलार करता है, न पाँजा में लेता है आ न चुम्मा लेता है, सो काहे?" पुजारीजी के त हल्ला से हालत खराब हो रहा था। ऊ कहने लगा, " तुमको छूने से हमरे धरम का नोकसान त होइए गया, अब हम तोरा चुम्मा ले के जात–पात का नोकसान कइसे कर लें?" एतना सुन के छौंड़ी का दिल टूट गया। ऊ बोली, " जाव रे बइमान, इत्तर का पानी भित्तर गया, चुम्मा लेते जात गया ...... दूर हँट रे बइमान, तोरा साथ नहीं रहना है ......।" अब आप ही जरा बिचार के देखिए माट्साएब, तोरा जो मन में होगा सो हमको करेगा लेकिन छुतिहा समझ के न ठीक से देह छुएगा आ न दुलार करेगा ...... ई कइसा परेम हुआ? ऊ छौंड़ी सब को कहते फिरती थी पुजारी के किरदानी, मगर बड़का जात बला बात ...... कोइ छौंड़ी के बात पर कान नहीं देता था। उलटे लोक कहता था कि डोमिनिया छौंड़ी पगला गयी है। यही निसाफ होता है? अँए! हम त अब समझ गए हैं माट्साएब, छुतिहा–छुतिहा कह के ई सब अइसन हाल बना दिया है हमरा जइसन जात के कि कोइ भगबान भी निसाफ करने बला नहीं मिला। अगर कहीं हरिजन का भगबान मिलता त जानते हैं माट्साएब, हम क्या निसाफ माँगते? हम बोलते, तू सत के भगबान है त पुजारी के डोमिनिया के साथे कुत्ता जइसन नडरसटा लगा दे ...... तब ओकरा दुनिया देखता आ डंटा मार के छोड़ाता ...... सब दिन का बदला चुकाता ......।" इतना बोल के रासबती रोने लगी।

रासबती अपने समाज की दुर्दशा देखकर दग्ध थी। वह पीड़ित लोगों की अभिव्यक्ति बनकर अपने शब्दों में बेधड़क बोल रही थी। पढ़े–लिखे लोगों की तरह परिमार्जित और झँपे–पुते साहित्यिक शब्द उसके पास नहीं थे। वह जितनी सहजता से पुजारी वाली कहानी सुना गयी, उस सहजता से मैं उस घटना को पचा नहीं पा रहा था। इस खिस्सा ने कंठ में जैसे कोई काँटेदार तीता फल घुसेड़ दिया था। मैं कुछ सोच नहीं पा रहा था, लेकिन मन घूम–फिरकर उस कन्या के साथ पुजारी के व्यवहार का दृश्य आँकने लगता था। वह अबोध तरुणी ठेहुनिया मुद्रा में रहती होगी और पीछे से पुजारी कामक्रिया करते हुए, दोनों हाथ से अपनी कंठी–माला पकड़कर हाथ उठाए, देह–स्पर्श से बचते हुए अपनी उत्तेजना शांत कर भाग जाता होगा। तभी तो रासबती उसे कुत्ते जैसा दण्ड दिलवाना चाह रही है। गली–मुहल्लों में, खासकर जाड़े के महीनों में, कुत्ते–कुतियों को संभोग करते हुए प्रायः ऐसा हो जाता है। तब नटखट बच्चे उनके संधि–स्थल पर लाठी मारकर तमाशा करते हैं। कुत्ते केंकियाते रहते हैं और पाजी बच्चे उन्हें लाठी मारते रहते हैं। रासबती पुजारी का ऐसा ही इलाज चाहती है। रति–क्रिया के क्षण में भी देह–वंचना और जातीय घृणा से आहत उसका मुहावरा कितना सारगर्भित था : इत्तर का पानी भित्तर गया, चुम्मा लेते जात गया : क्या अर्थ हुआ इसका? मैंने अनुमान लगाया, इत्तर का पानी माने इत्र का रस, माने दुर्लभ वीर्य भीतर चला गया फिर भी चुंबन से परहेज! एक आर्त्त नारी–मन की हूक से सनी यह वाणी कैसी प्रतीकात्मक और वजनी रही होगी? एक स्त्री होने के नाते रासबती ने उस पीड़िता की चोट को समझा, तभी तो वह भगवान से ऐसा विचित्र इंसाफ माँगने की सोचती है। यदि रासबती के मन मुताबिक ऐसा हो भी जाता तो क्या होता? लोग उस कन्या की पीठ पर ही लाठी बरसाते। पुजारीजी आवेश में धड़फड़ाकर धूल में औंघरा जाते ...... देह झाड़ते उठते और नहा–धोकर फिर मंदिर में चले जाते। वह कन्या वहीं काठ की मूरत बनकर पड़ी रहती। देखने वाले बिना कुछ बोले उधर से बच के निकल जाते ...... कहीं छुआ न जाए।

इतनी देर में रासबती सम्हल चुकी थी। वह उठी, पानी से आँख–मुँह पोंछकर बचा हुआ पानी पी गयी, फिर ताजादम होकर बोली, ''माट्साएब, आप सब के जइसन हम पढ़े–लिखे नहीं हैं, एही ओजह से हमरी बोली कुछ बेलौस है ...... माफ करिए, मगर एक ठो बात है ...... हम सब को न कोइ पढ़ने दिया आ न कोइ बोलने दिया ...... लोक बोलता है कि अब समय बदल गया मगर हमरे जइसन बुड़वकहा के लिए अभियो ओइसने अंधेर का जमाना है। मान लीजिए कि हमको बोलने नहीं आता है त भला आदमी के सामने चुपे रहना है, मगर हमरा सब के कलेजा में एतना जमाना से जो आग धधक रहा है ऊ कलेजा को हम कहाँ जा के फेक आवें? आखिर ऊ आग त निकलबे करेगा कभी न कभी ......।''

रासबती का चेहरा अभी भी उत्तेजना से तना हुआ था। उसे संयत करने के विचार से बासमती अपनी बहन से सटकर बैठ गयी। बहन का स्पर्श पाकर रासबती कुछ भावुक होते हुए बोली, ''माट्साएब, आपको भी हरिजन सब कै दुरदासा के बारे में बहुत कुछ पता है। आप भी हीरा डोम का गाना जरूर सुने होइएगा ...... एक जमाना में हीरा डोम के गाना का परचार रमाएन जइसन हो गया था ...... हमको त माइ हीरा डोम का ई गाना सिख दिया...... सुनिए, हीरा डोम का भोजपुरिया गाना आ बताइए कि हम कउन बात झूठ बोलते हैं ......।'' रासबती पालथी लगाकर बैठ गयी और कान पर हाथ लगाकर गाने लगी —

''हमनीं के रात दिन दुखवा भोगत बानी
हमनीं के साहेब से बिनती सुनाइबि
हमनीं के दुख भगवनओं न देख'ता जे
हमनीं के कबले कलेसवा उठाइब।

पदरी सहेब के कचहरी में जाइब जा
बेधरम होके रंगरेज बनि जाइबि
हाय राम! धरम न छोड़त बनत बा जे
बेधरम होके कइसे मुँहवा देखाइबि।

खंभवा के फारि पहलाद के बचवले जे
ग्राह के मुँह से गजराज के बचवले
धोती जुरजोधन के भइया छोरत रहे
परगट होके तहाँ कपड़ा बढ़वले।

मरले रवनवा के पलले भभिखना के
कानी अँगुरी पे धके पथरा उठवले
कहँवा सुतल बाटे सुनत न बाटे अब
डोम जानि हमनीं के छुएसे डेरइले।

हमनीं के रात दिन मेहनत करीलेजा
दुइ गो रुपयवा दरमाहा में पाइब
ठकुरे जे सुख से त घर मे सुतल बानीं
हमनीं के जोति जोति खेतिया कमाइबि।

हाकिम के लसकरि उतरल बानीं जे
त उँहवो बेगरिया में पकरल जाइबि
मुँह बान्हि ऐसन नोकरिया करत बानीं

ई कुल खबरि सरकार के सुनाइबि।
बभने के लेखे हम भिखिया न माँगब जा
ठकुरे के लेख नाहीं लउरी चलाइबि
सहुआ के लेखे नाहीं डाँड़ी हम मारब जा
अहिरा के लेखे नाही गइया चराइब।
भँटऊ के लेखे न कवित हम जोरब जा
पगड़ी न बान्हि के कचहरी में जाइबि
अपना पसिनवा के पइसा कमाइबि जा
घर भर मिलि जुलि बाँटि–चोटि खाइबि।
हड़वा मसुइया के देहिया ह हमनी के
ओकरे के देहिया बभनओ के बानी
ओकरा के घरे–घरे पुजवा होखत बा जे
सारे इलकवा भइलें जजमानी।
हमनी के इनरा के निगिचे न जाइलें जा
पाँके में से भरि–भरि पिअतानीं पानी
पनही से पिटि–पिटि हाथ–गोड़ तुड़ि देलें
हमनीं के उतनी काहे के हलकानी।"

रासबती गा रही थी और बासमती उसे संग दे रही थी। लगता था जैसे समदाओन के राग में वह बिरहा की टेक लगा रही हो। हीरा डोम के गीतों के बारे में मैंने सुना जरूर था, लेकिन किसीको गाते पहली बार सुना था। हरिजन समाज की इस दशा का चित्रण प्रेमचंद के कथा–साहित्य में भरपूर हुआ है। उन दिनों की घोर सामाजिक परिस्थिति और अभी तक के धीमे बदलाव की प्रक्रिया पर किंचित विचार करते हुए मेरा मन क्षोभ से भर गया। मुझे अन्यमनस्क देखकर बासमती ने पूछा, "कुछ दिक्कत हो रही है क्या?" मैंने कहा, "नहीं, दिक्कत तो नहीं है, लेकिन बहुत देर हो गयी है, ऑफिस में सब लोग मुझे खोजते होंगे। अब मैं चला जाउंगा। वह तुरत बहन के पास चली गयी और एक प्लेट में तली हुई कुछ मछली लेकर चली आयी, "आप इतना ही खा लीजिए तब चले जाइएगा।" मैं हबर–हबर खाने लगा। वैसे तो मैं मछली के काँटे निकालकर ही खा रहा था मगर रोहू मछली के काँटे इतने महीन होते हैं कि उसे निकालने में थोड़ा समय लग जाता है, इसलिए मैंने थोड़ा खाकर प्लेट को टाल दिया और उठना चाहा। बासमती ने उठने नहीं दिया और खुद काँटे निकालकर मुझे खिलाने लगी। उसी समय उसकी बहन वहाँ आ गयी और बोली, "हमरा धन्न भाग कि सबरी के हाथ से भगबान बेर खा लिए .....।" मैंने रासबती की बात का तुरत उत्तर दिया, "आप अपने मन से सबरी बनिए कि मीरा सो आप जानिए, लेकिन मैं न राम हूँ और न बनना चाहता हूँ ..... उनको लोग भगवान कहते हैं, लेकिन उन्होंने एक भला आदमी, शंबूक दुसाध की गरदन काट दिया था यह भी लोग कहते हैं और सीताजी जैसी महान स्त्री को जो दुःख दिया, यह भी सबको पता है।..... दूसरी बात कि जो राजा किसीको ब्राह्मण और किसीको शूद्र कहकर भेद करता है, वह आदर्श राजा या भगवान कैसे हो सकता है? ..... अच्छा, आपने बहुत अच्छी मछली खिलायी, इसके लिए आप दोनों बहन को बहुत धन्यवाद! फिर कभी पूरा भोजन होगा। अब जाने दीजिए।" इतना कहकर मैं विदा हो गया।

6

सितलहरी की धुंध कल से अधिक घनी हो गयी थी। मेघ कंबल के जैसे ऐसे लटक गया था कि चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा लग रहा था। मौसम ने अपना ऐसा बाना धर लिया था कि लोग असकताकर घर पकड़ लिए। जहाँ–तहाँ लोगों ने लकड़ी के ढेंग में आग लगाकर अलाव जला लिया था जिसे घेरकर सभी उमर के लोग आग ताप रहे थे और हँसी–ठट्ठा में मस्त हो रहे थे। चार बजे के करीब मैं भी बासमती के यहाँ चला आया।

उसके आँगन में नीरवता पसरी थी। दोनों बच्चे अपनी माँ के साथ दुकान पर चले गए थे। ओसारे के एक भाग में बकरी–पाठी खंभे से बँधी मुनगा की डाल से पत्ते टोंग रही थी। ओसारे के दूसरी ओर, अपनी कोठरी के मुँह पर बासमती टाट से ओठंगकर घोकरियाई हुई बैठी थी। उसने अपनी मूँड़ी को ठेहुने पर टिका लिया था, आँखें बंद थीं। उसके आगे में बोरसी से धुँए की एक पतली रेख उठ रही थी। मैं चुपचाप, पैर दाबे उसके पास बैठ गया। उसने आँखें नहीं खोली। मैं उसको छूकर उठाना ही चाहता था कि औचक उसके गाल पर मेरी नजर गयी। लगा जैसे कुछ देर पहले वह रो रही होगी। उसके गाल का जो भाग देखाव था, उस पर आँसू बहने के चिन्ह साफ स्पष्ट थे। उसकी मुखमुद्रा एकदम शांत थी, कपाल और भौंहों पर तनाव के कोई चिन्ह नहीं थे, मगर वह रोयी क्यों होगी? मुझे नहीं रहा गया। मैंने हल्के हाथ उसके माथे को छुआ। वह आँखें मुँदे ही अस्फुट स्वर में बोली, 'आमाय केन ...... बसिए राख' ...... एका ...... द्वारेर पाशे......।' मुझे अचंभा हुआ। यह तो रवींद्रनाथ की पंक्ति है। यह कैसे नींद में बंगला गीत बड़बड़ा रही है? अब मैंने उसके कंधे को हल्के से थपथपाया। उसने हड़बड़ाकर आँखें खोल दी और बगल में मुझे देखकर चैतन्य होते हुए कहा, "बैठे–बैठे नींद आ गयी ...... आप कब आए? रुकिए, मैं तुरत चाय गरमा के ले आती हूँ ......।"

मैं उस समय उससे अलग होना नहीं चाहता था। मैंने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा, "चाय आपसे अच्छी थोड़े है ...... बैठिए!" लेकिन वह उठ गयी थी। बोली, "चाय बनाकर और छानकर पहले ही रख लिए थे ...... खाली उसको गरमाना है।" मैं उसकी रहस्यमयता में बँध गया था और उसी सम्मोहित स्थिति में बना रहना चाह रहा था। मैं उसके पीछे–पीछे चूल्हे तक चला आया। उसने मेरे लिए चूल्हे से सटाकर एक बोरा रखते हुए कहा, "यहीं बैठके पी लेंगे सो भी अच्छा ही होगा।" अलमुनिया के ससपैन में पहले से चाय छान–बनाकर रखी थी। उसने तख्ते पर रखी मिट्टीतेल की ढिबरी से चूल्हे में लगी लकड़ी पर दो बूँद तेल गिराया और दीयासलाई रगड़कर आँच सुलगाया। चूल्हे में लगी लकड़ी शायद ओस में भींगी हुई थी सो आग से अधिक धुँआ ही उगल रही थी। थोड़ी देर में ससपैन की चाय खदकने लगी। चाय गरमाने के बाद उसने दो प्यालों में ढाला। अब उसने देह पर से चादर हँटाकर उसे तहिआया और अलगनी पर डालने के बाद अपने आँचल को समेटकर कमर में फेंटा की तरह लपेट लिया, जैसे पहाड़ी स्त्रियाँ कमर बाँधे रहती हैं। उस समय उसकी छरहरी चुस्त देह किसी महाकवि की नायिका से अधिक आकर्षक लग रही थी। मुझे अच्छी तरह याद है, पहली बार मैं उसके सौंदर्य को टकटकी लगाए देखता रहा था। उसने मेरे इस अप्रत्याशित व्यवहार को देखा और मुसकियाकर मेरे बगल में ही बैठ गयी।

इतनी देर से रखी चाय की गरमी कुछ कम हो गयी थी मगर उसकी धुँआएन गंध और तेज हो गयी। एक बार चाय की चुस्की लेते हुए उसने कहा, "यह चाय तो असली धुँइचाय हो गयी ...... लगता है

जैसे धुँआ के साथ चीनी घुलकर और मीठी हो गयी है......।" मैंने उसकी बात में जोड़ते हुए कहा, "जैसे आपका बंगला गीत मौसम के साथ घुलकर और भी मीठा हो जाता है ...... आमाय केन बसिए राख', एका द्वारेर पाशे ......।" मेरी बात सुनकर वह अकचका उठी, "आपने कहाँ सुना यह गीत?" मैंने कहा, "आप से ही. ......।" मुझे लगा, वह अपने दिमाग पर जोर देकर याद करने का प्रयास कर रही थी। पता नहीं, उसे कुछ याद आया कि नहीं, मगर मुझे लगा कि मन पर जोर देने से यादों की उसकी कोई खिड़की खुल गयी हो और धुँधली स्मृति के आवरण ने उसे अपने अवगुंठन में समेट लिया। उसकी आँखें अतीत के झाँझ में कहीं उलझ–सी गयी थी। मैं उस मांत्रिक मनस्थिति में उसे जाने नहीं देना चाहता था, इसलिए टोक दिया, "आप नींद में गीत की यह पंक्ति बड़बड़ा रही थीं, लेकिन मुझे अच्छी तरह याद है कि यह रवींद्रनाथ की पंक्ति है; आपने कैसे सीखा?"

"मैंने तो पहले ही बता दिया था कि मेरे नाना कलकत्ता में एक बड़े सेठ के यहाँ काम करते थे। नानी भी वहीं रहती थी। नानी तब नयी थी। सेठ की कोठी पर एक मास्टरनी दीदी आती थी, बच्चों को पढ़ाने। उसी मास्टरनी दीदी ने मेरी नानी को बंगला और हिंदी पढ़ा दिया। नानी उनको दीदी कहती थी। उस दीदी ने मेरी नानी को बहुत गीत सिखाया; रवींद्र संगीत, बाउल संगीत और विद्यापति के गीत। बाद में नानी गाँव चली आयी, लेकिन उसने एक भी गीत नहीं भुलाया। जब तक नानी जिंदा थी, मैं जादा समय उसीके पास रहती थी। नानी मुझे बहुत तरह की कहानी सुनाती रहती थी। कुछ कहानी मैं ठीक से समझ नहीं पाती थी मगर नानी एक बार बोलना शुरू करती थी तो बोलते–बोलते कहीं बहक जाती थी। जब नानी साग निकाने के लिए या कि चावल बीछने के लिए बैठती थी तो कोई गीत जरूर गाती थी। ऐसे ही मैं उसने मुझे भी सिखा दिया।" इतना बोलकर बासमती शून्य में ताकने लगी। मुझे लगा, उस समय भी वह नानी की स्मृति में ही उलझी थी।

बासमती के बुद्धि–गुण से मैं पहले–दूसरे दिन से ही प्रभावित हो गया था। अब तो मैं रोज उसके गुणों का प्रसाद पा रहा था। मैंने उसे गीत सुनाने का आग्रह किया। मेरा आग्रह वह कैसे टालती? उसने कहा, "चलिए उस कोठली में ...... ।" दोनों आदमी चूल्हे के पास से उठकर उसके कमरे में आए और बिछावन पर बैठ गए। कुछ देर वह गुमसुम रही। लगा जैसे वह मुझसे हँटकर गीत का संग पकड़ रही थी। फिर उसकी आँखें मुँदा गयीं और धीरे–धीरे भीतर से ध्वनि का सोता झरने की तरह फूटने लगा। मुझे लगा जैसे विह्वलता रस बनकर कोठरी में जहाँ–तहाँ टपकने लगी थी —

"मेघेर 'परे मेघ जमेछे
आँधार करे आसे,
आमाय केन बसिये राख', एका द्वारेर पाशे।
काजेर दिने नाना काजे
थाकि नाना लोकेर माझे,
आज आमि ये बसे आछि, तोमारि आश्वासे।
आमाय केन बसिये राख', एका द्वारेर पाशे।
तुमि यदि ना देखा दाओ
करे आमाय हेला,

केमन क'रे काटे आमार
एमन बादल–बेला।
दूरेर पाने मेले आँखि
केबल आमि चेये थाकि,
परान आमार कैंदे बेड़ाय
दूरन्त बातासे।
आमाय केन बसिये राख', एका द्वारेर पाशे ..... एका द्वारेर पाशे।''

गीत पूर्ण होते–होते वह जैसे किसी मोमबत्ती की तरह पिघल गयी। उसने थसककर अपनी मूँड़ी मेरे कंधे पर टिका लिया, फिर भी उसके होंठ अस्फुट स्वर में दुहरा ही रहे थे, ''एका द्वारेर पाशे..... एका द्वारेर पाशे।'' भावावेश से लरजी उसकी देह को मैंने अपने कंधे से अँटकाए रखा। वह किसी बच्चे की तरह निढाल हो गयी। कुछ देर के बाद वह सामान्य हुई। वैसे मैं रवींद्रनाथ की 'गीतांजलि' कई बार पढ़ चुका था, लेकिन किसीके कंठ–स्वर में पहली बार यह गीत सुना था। उसके स्वर के जादू ने मुझे अनुरक्त कर दिया था। वह अभी भी अपने अधीन में नहीं थी। मैंने सोचा, पानी सब कुछ धो देता है, मनोभावों को भी। मैंने उठकर थैला से एक बट्टा पानी ढारकर लाया और उसके होंठों से लगा दिया। वह किसी प्यासी बाछी की तरह गटगट पूरा पानी पी गयी। थोड़ा जो बच गया, उससे मैंने उसका गला पोंछ दिया। अब वह पूर्ण चैतन्य थी।

बासमती पालथी लगाए मूँड़ी झुकाकर बैठी थी। उसके केस छितराकर मुँह पर किसी टाट की तरह लटक रहे थे। मेरे मन में गीत के बोल बुलबुलों की तरह बन और फूट रहे थे, दूसरी ओर ऊपर से शांत लगती उसकी मुद्रा–कपाट के दूसरी ओर जरूर कुछ हलचल थी जो मैं समझ नहीं पा रहा था। आखिर उसीने मौन तोड़ा, ''मेरी नानी के मरे आज कितने साल हो गए, कभी उसे नींद में वैसा नहीं देखा जैसा आज वह दिखी। .....मेरी नानी बंगला बोलती थी लेकिन मैं नहीं बोल सकती हूँ ..... गीत का माने–मतलब भी थोड़ा–बहुत जितना नानी ने बताया था, वही कुछ याद है ..... इस गीत का मतलब अगर आप बता देते तो बड़ी कृपा होती ..... ।''

''इसमें कृपा की कोई बात नहीं है, तब मुझे जो समझ में आ रहा है सो मैं जरूर बताउंगा। मुझे भी बंगला बोलना नहीं आता है लेकिन मैं पढ़ना जानता हूँ, काहे कि मैथिली भाषा जिस मिथिलाक्षर में लिखा जाता है वह भी बंगला अक्षर जैसा ही है। लेकिन मैं 'गीतांजलि' का अंगरेजी अनुवाद बढ़िया से पढ़ा हूँ। इस कविता में एक आकुल प्रेमिका अथवा भक्त की आतुरता गीत बनकर फूटी है। जैसे कोई प्रेमिका अपने प्रेमी से मिलन के लिए आतुर रहती है उसी तरह इस कविता में कवि ईश्वर से अपनी दूरी का दुःख व्यक्त कर रहा है। असल में प्रेम जब फुनगी पर पहुँच जाता है और मिलन की इच्छा सभी बंधन को तोड़कर सिर चढ़ जाती है, तब ऐसी ही हालत होती है। यह प्रेम की चरमावस्था में विछोह की परिस्थिति है ..... नजदीकी में दूरी ..... पास में रहते भी जैसे बहुत दूर हों..... बंद दरवाजे के पार ईश्वर और दरवाजे के बाहर उसको चाहने वाला। गीत और कविता में इस परिपाटी को रहस्यवाद कहा जाता है जब भक्त अपने आप को प्रेमिका या पत्नी और उस परमात्मा को पति मान लेता है। इस गीत में कहता है कि 'मेघेर 'परे मेघ जमे छे, आँधार करे आसे ..... मेघ पर मेघ सटा हुआ है जिससे घना अंधेरा हो गया है ..... आमाय केन बसिए राख', एका द्वारेर

पाशे ..... ऐसे विकट समय में मुझे कैसे बिठाकर छोड़ दिया, दरवाजे के इतने पास में ..... ? गीत में आगे कहता है कि अनेक प्रकार की सांसारिक व्यस्तता को छोड़कर, मात्र उसके भरोसा पर वह कब से वहाँ बैठा है और अगर अब भी दर्शन से वंचित ही रह जाएगा तो किस प्रकार ऐसा मेघाच्छन्न वृष्टिकाल काट पाएगा? अंधकार से भरे आकाश पर वह निरंतर टकटकी लगाए ताक रहा है और उसका ह्रदय बेचैन करते झंझावात से विलाप कर रहा है ..... मुझे क्यों अकेले बैठाकर छोड़ गए, देहरी के इतने नजदीक में .....?"

बासमती तो पहले से ही कई प्रकार के भावों में डूब–उतरा रही थी, गीत के भाव पर मेरी व्याख्या सुनकर वह और भी गंभीर हो गयी। वह कुछ बोल नहीं रही थी, किंतु उसकी मनस्थिति देखकर लगता था कि गीतवाली आकुलता उसमें समाते जा रही थी। वह ठेहुने पर अपने गाल टिकाकर एक ठो काठी से जमीन पर लकीरें पाड़ रही थी। तभी मैंने देखा, एक चींटी उसकी साड़ी पर चढ़ी ऊपर जा रही थी। उस चींटी को बेराने के लिए मैंने हाथ बढ़ाया ही था कि मेरे हाथ पर आँसू की एक गर्म बूँद गिरी। मैं चिंतित होकर उसकी ओर ताका ही था कि उसने रुदन भरे स्वर में कहा, "इस गीत में रोकर या गाकर, इतना तो बोलती है न कि किसी के भरोस पर वह अकेले द्वार पर बैठी है। जो आदमी इतना भी नहीं बोल सकती है, उसके मन पर क्या बीतता होगा?" इतनी बात बोलकर वह बेसम्हार रोने लगी। मेरे लिए यह अप्रत्याशित स्थिति थी। रोते–रोते वह फुरती से बाहर निकली और टाट से घेरकर बनाए निकास के ठौर पर चली गयी। कुछ देर वह वहीं रही, फिर आँख–मुँह पर पानी देकर मेरे पास चली आयी, मगर अभी भी उसके मन में उछाह नहीं था। मुझे कुछ अनुमान नहीं लग रहा था, लेकिन मेरा मन बेचैन जरूर हो गया था।

वह मेरे सामने में पालथी लगाकर बैठी थी और एकटक मुझे ही घूर रही थी। रोते रहने से उसकी आँखें शुष्क नीरस लग रही थीं। उसकी मुखाकृति बिलकुल भावहीन, सपाट थी। मुझे कुछ बोलने का साहस नहीं हो रहा था, लेकिन कारण जाने बिना रह भी नहीं सकता था। आखिर मैंने पूछा, "आज आप पहले से रो ही रही थीं। पहले नींद में रो रही थीं, अभी जगे हुए में रो रही हैं। आखिर बात क्या है?"

"बात कुछ नहीं है .....नानी को सपने में देखे सो कुछ याद पड़ गया, उसीसे रोना आ गया ..... ।"

उसकी बात से मेरी चिंता का समाधान नहीं हुआ। मुझे लगा, वह बात टाल रही थी। ऐसी हालत मे मेरी उद्विग्नता बढ़ती जा रही थी। मैंने उसके दोनों हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा, "सुनिए, इतना तो मैं समझ रहा हूँ कि बात कुछ भारी है जो भीतर ही भीतर आपको परेशान कर रही है। मुझे यह पता नहीं चल पाया कि आप कितने दिनों से इस परेशानी में हैं और इस परेशानी का कारण क्या है, मगर मैं जब आप लोगों के साथ इतना जुड़ गया हूँ तो अब इस बात को अनसुनी करके आगे चलना कठिन है। तब यह अलग बात है कि आप मुझे अपना आदमी समझती हैं कि नहीं। आपके जीवन में कोई निजी बात हो और आप नहीं बताना चाहें इसके लिए मैं आप पर कोई दबाव नहीं दे सकता हूँ, लेकिन इतना तो मैं भी जान ही जाऊँगा कि मेरे साथ आपको कितना अपनापन है।"

यह बात सुनकर वह विह्वल हो उठी, "ऐसी बात नहीं बोलिए..... मैं आपको किस रूप में देखती हूँ, यही तो मैं नहीं बोल सकती ..... ।"

"मुझे तो लगता है कि अनजाने में आपसे भेंट हुई, इतने दिनों से अपरिचित रहकर ही दोनों बेमतलब की बातों में भटकते रहे और किसी दिन अनजाने में ही दोनों कहीं अलग हो जाएंगे ..... मैं तो आपके गुणों के आकर्षण में ऐसा बँध गया कि संबंध तौलने की कभी फुरसत ही नहीं मिली। सच है, मैं आपका हूँ ही कौन जो ..... "

यह अंतिम बात अधूरी ही रह गयी। उसने मेरे होठों पर अपनी उँगलियाँ रखते हुए कहा, "ऐसी बात नहीं बोलिए ..... आप मेरे लिए क्या हैं यही तो मैं बोल नहीं सकती हूँ ..... ।"

"सो क्यों नहीं बोल सकती हैं? कोई कसम खायी हुई हैं क्या?"

"कसम अपने से नहीं ले लिए हैं ..... किसी ने कसम दे रखी है।"

"कौन है वह आदमी? आपके बहन–बहनोई हैं क्या? क्या कसम खिलाया है ..... मुझसे नहीं मिलने का?" मैं थोड़ा उत्तेजित हो गया था। मुझे लगा कि उसके बहन–बहनोई मेरे साथ उठने–बैठने से मना कर रहे थे। मैंने सोचा, यदि उसके अभिभावक मना करते हैं तो यह उनका अधिकार है, मगर यह बात मुझसे छिपाना नहीं चाहिए। मैंने कहा, "आपके घर के लोग अगर मेरे साथ बैठने–बतियाने से मना करते हैं तो आपको उनकी बात मान लेनी चाहिए और मुझे भी बता देना चाहिए। यदि मेरे साथ उठना–बैठना आपको खुद खराब लग रहा हो तो यह बात भी मुझे बता देना चाहिए।" मेरे लिए उस समय की परिस्थिति असहज थी। मैं वहाँ से चले जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

मुझे उत्तेजित देखकर वह बेकल हो गयी। वह भी खड़ी हो गयी और मेरा हाथ पकड़कर बोली, "आप जो सोच रहे हैं वैसी कोई बात नहीं है। न मेरे बहन–बहनोई ने किसी बात के लिए मना किया है और न मुझे खुद कुछ बुरा लगा है। बात तो एक शपथ की ही है, लेकिन यह बात बताने में मुझे दिक्कत हो रही है।" उसने मेरे हाथ पर जोर देकर मुझे बैठा लिया। अब मुझे लगा कि बात कुछ दूसरी है। मैं शांत मन से बैठ गया। वह भी मेरे सामने ही बैठी थी और लगा जैसे अपनी बात रखने का साहस बटोर रही थी। आखिर उसने बोलना शुरू किया, "एक ठो लड़की के जीवन में कई बार ऐसी बात हो जाती है जिसे वह न भूल पाती है और न किसी को बता सकती है..... लड़कियों का असल में कोई दोस्त तो होता ही नहीं है, ऐसी बातें वह अपने पति को भी नहीं बता सकती है। मैंने तो देखा है कि कई औरतों से उसका पति फुसलाकर पिछली बात जान लेता है और बाद में जब कभी कहासुनी हो जाती है तो चोरनी–छिनरी कहकर गरियाने लगता है .....।"

उसकी बात में सत्यता थी। सभी जातियों के पुरुषों में ऐसा देखा गया है। मैंने कहा, "मैं आपके अनुभव को काट नहीं रहा हूँ, लेकिन मैं तो आपका ऐसा कोई संबंधी नहीं हूँ जो झगड़ा होने पर पिछली किसी बात के लिए आपको गाली दूँगा, इसलिए आप निश्चिंत रहिए; यदि कोई प्रेम–प्रसंग वाली बात हो तब भी .....।"

"प्रेम क्या होगा? गाँव–देहात की हरिजन लड़की कोई मनुख होती है जो प्रेम की बात समझेगी? उसके पूरे शरीर में पेट ही होता है..... बड़े लोग तो ऐसा ही समझते हैं। शहर–बाजार में मकान–दुकान और गाड़ी–मोटर वालों को बड़ा आदमी कहा जाता है मगर गाँव–देहात में जिसके पास खेत–पथार, गाछी–बिरछी

होता है उसको बड़ा आदमी कहा जाता है, चाहे वह किसी जात का हो ..... और जैसे कि पंडीजी बता रहे थे, हरिजन के पास आज भी धन–बित्त नहीं होता है। आज के समय में भी वह सब फटा–पुराना पहनता है और देह धुनकर खटने के बाद भी अधपेटा भोजन करता है ..... उस पर भी जब उपास की हालत होने पर किसी बड़े घर में पैंच–उधार माँगने जाइए तो सेर भर अन्न के बदले लोग देह नोंच लेते हैं ..... ऐसे जले पेट वाली लड़की प्रेम क्या जानने गयी? वह भी पढ़े–लिखे लोगों को ही होता है।"

इतना बोलकर वह कुछ देर चुप रही। मुझे लगा, उसके जीवन में ऐसी कोई अनट घटना जरूर घटी होगी जिसे बताना उसके लिए भारी होगी। कुछ देर तक तैयारी करने के बाद मूँड़ी नीचा किए उसने बोलना शुरू किया, "उस समय नानी जिंदा थी ..... दुसाध–मुसहर के परिवार में जितनी मिहनत अन्न–पानी के इंतजाम के लिए की जाती है, उतनी ही मिहनत जलावन के इंतजाम में भी करनी पड़ती है। मेरी नानी तो गोइठा खरीदकर जलाती थी, लेकिन दूसरी औरतें दोपहर के समय बड़ा लग्गा लेकर आम की गाछी में चोरी से सूखी लकड़ी तोड़ने चली जाती थी। ऐसा करते अगर किसी ने नहीं देखा तो बहुत बढ़िया, अगर गाछी वाले ने देख लिया तो लग्गा छीन लेगा या फिर जो मन में होगा सो करेगा। मेरी नानी लकड़ी तोड़ने नहीं जाती थी, लेकिन साथी–संगाती लड़कियों के साथ मैं कभी–कभी चली जाती थी। वह गाछी मंडलजी की थी। उनके घर से हम लोगों को बहुत मेलजोल था। मंडलजी का एक ठो बेटा हमसे दो–तीन साल बड़ा था, लेकिन वह साथी–संगाती जैसा था। वह मेरे आँगन आता था तो मैं उसके साथ गाछी जाती थी और वह अपना लग्गा लाकर लकड़ी भी तोड़ देता था। वह छौंड़ा बाद में जरा बदमासी करने लगा। एक दिन उसने मेरा चुम्मा ले लिया। मुझे तामस तो बहुत चढ़ गया लेकिन सोचे कि अगर नानी को बता देंगे तो दोनों घर में झगड़ा हो जाएगा, इसलिए मन मसोसकर चुप रह गयी। कुछ दिन के बाद उसने फिर बदमासी की, मेरा उपरका दोनों पकड़ लिया। मैं गुस्सा से रोने लगी। मैं रोते–रोते आँगन के तरफ बिदा हुई तो उसने मेरा पैर पकड़ लिया और कलपते हुए ऐसे माफी माँगने लगा कि मेरा मन पसीज गया। लेकिन उस दिन की घटना से मेरे मन में भी ऐसी इच्छा जाग गयी। मेरे मन में भी हुआ कि देखें, यह काम कैसा होता है! एक दिन फिर उसके साथ गाछी गए। एक सूखी हुई बड़ी डाल देखकर उसमें लग्गा फँसा दिए और दोनों आदमी मिलकर घीचने लगे। डाल मोटी थी, टूट नहीं रही थी। जादा जोर लगाकर घीचते थे तो लकसी फिसल जाती थी। दोनों आदमी हाँफने लगे तो सोचे कि कुछ देर सुस्ताने के बाद घीचेंगे। लग्गा को डाल में ही लटका के छोड़ दिए और ..... उसने मुझे गाछ में अड़ाकर पाँजा में कस लिया ..... मैंने कुछ नहीं कहा लेकिन मेरा मन कैसा दन होने लगा ..... वह छौंड़ा मुझे पकड़े हुए जरूर था लेकिन उसका मन भी अकबकाया हुआ था..... उसी समय डाल में लटका लग्गा डाल समेत झड़झड़ाकर गिरा..... उस आवाज पर मुझे लगा जैसे कलेजा में अदंक पैठ गया। मैं किकियाते हुए वहाँ से भागी और सीधे अपने आँगन में आकर रुकी। मैं ओसारा पर हाँफते हुए बैठ गयी तो नानी मेरे बगल में आकर बैठ गयी। मुझे वैसा हक्काबक्का देखकर उसे संदेह हुआ कि मुझे किसी ने कुछ कर लिया। नानी मुझसे बार–बार पूछ रही थी लेकिन मेरे मुँह से बकार नहीं फूट रहा था। तब नानी ने मुँह–माथ पानी से पोंछ दिया और पानी पिलाया। पानी पीने के बाद कुछ दम हुआ, लेकिन तभी याद पड़ा वह खिस्सा जो आपको दीदी ने बताया..... भैरो सिंह का खिस्सा, मेरी माँ ने जो काट लिया था ..... वह खिस्सा याद पड़ते ही मेरा मन घबरा गया। मैं नहीं चाहती थी कि उसके साथ ऐसा कुछ हो। सच्ची बात तो यह है कि उस दिन जो कुछ हुआ था सो उसी के मन से नहीं हुआ था ..... उस दिन मेरे मन में भी था कि ऐसा हो। हम नानी को सब कुछ सच–सच बतला दिए। उस समय नानी

कुछ नहीं बोली। नानी को बता देने के बाद मेरा मन हल्का हो गया। बिछावन पर लेटते ही मैं नींद पड़ गयी।''

इतना बोल लेने के बाद बासमती अब निधोख हो गयी थी। उसने बोलना जारी रखा, ''कलकत्ता से आकर नानी गाँव में रहने लगी लेकिन उसका रहन–सहन कलकतिए रह गया। नानी एक ठो तुलसीचौरा बनाए थी। उस चौरा पर साँझ में दीप जलाती थी और संझागीत गाती थी। कभी–कभी मैं भी हाथ–पैर धोकर साँझबाती करती थी। उस दिन नानी साँझबाती करने के बाद गीत नहीं गायी और मुझे लेकर बैठ गयी। मेरे बेबहार से नानी बहुत दुःखी थी। उसने मुझसे कहा, 'हरिजन लड़की से दूसरी जात के लोग परेम के कारण नहीं सटते हैं.... अपने शौख के लिए सटते हैं ..... देह नोचने के बाद लोग फिर से गुँहकिड़वा समझकर अलग हँट जाते हैं.... तुम जो काम करने जा रही थी सो कुचाल है। दुबारा किसी के साथ ऐसा काम नहीं करना। उसमें भी तुम ब्याहता लड़की हो..... तुम्हारा ब्याह बचपने में हो गया था, अब समय पर गौना होगा ..... क्या मुँह लेकर गौना कराएगी? ब्याहता स्त्री अगर परपुरुख के साथ ऐसा काम करती है तो उसके पति की जिनगी खीन हो जाती है..... इसका मतलब तो यही हुआ न कि अपने शौख के लिए किसी बेकसूर आदमी का परान कोई ले ले।' इतना बोल के नानी रोने लगी। उसको रोते देखकर मैं भी रोने लगी और मुझे रोते देखकर नानी और भी बेतहाशा रोने लगी। उसने मेरा माथा पकड़कर गोद में रख लिया और वैसे ही थपकी देने लगी जैसा बचपन में गीत सुनाते समय करती थी। उस रात हमारे घर में चूल्हा नहीं जला। मैं तो कुछ ही देर में भूख से नींद पड़ गयी, लेकिन नानी पता नहीं कब तक गाती रही, 'येथाअ थाके सबार अधम, दीनेर हते दीन ..... ।''

अब बासमती चुप हो गयी थी। लगा जैसे बाहर का सीत एकबारगी रेला बनकर कमरे में घुस आया। इतनी देर से बोलते–बोलते वह एकदम पस्त हो गयी थी। अनेक प्रकार की दग्ध संवेदना और क्षोभ भरी स्मृति के अविकल पाठ ने उसके मन–मस्तिष्क को एकदम थकूच दिया था, जैसे तेज हवा का झोंका केले के पत्ता को चिथड़ा–चिथड़ा कर देता है। मैं एक कटोरे में पानी भरकर लाया और उसके ठोर से लगा दिया। पानी पीने के बाद फिर से उसके चेहरे पर हरिअरी लौट आयी। लगता ही नहीं था कि अभी–अभी वह क्लांत सी दीख रही थी। उसको ठीक–ठाक देखकर मैं जब विदा होने का उपक्रम करने लगा तो उसने कहा, ''जाते हैं .....नानी का गीत नहीं सुनिएगा ..... ?''

मैंने कहा, ''आपका गीत सुनने के लिए तो मैं जीवन भर अँटक सकता हूँ ..... बिना किसी दरमाहा के ..... ।'' वह गाने लगी। उसके स्वर–वैकल्य में नानी की छवि विश्वकवि की घनी सफेद दाढ़ी बनकर पसरती जा रही थी —

''येथाअ थाके सबार अधम दीनेर हते दीन
सेइखाने ये चरण तोमार राजे
सबार पिछे, सबार नीचे,
सब–हारादेर माझे।
यखन तोमाय प्रणाम करि आमि,
प्रणाम आमार कोन्‌खाने याय थामि,

तोमार चरण येथाय नामे अपमानेर तले
सेथाय आमार प्रणाम नामे ना ये,
सबार पिछे, सबार नीचे, सब–हारादेर माझे।
अहंकार तो पाय ना नागाल येथाय तूमि फेर'
रिक्तभूषण दीनदरिद्र साजे —
सबार पिछे, सबार नीचे, सब–हारादेर माझे।
संगी हओ आछ येथाअ संगीहीनेर घरे
सेथाअ आमार ह्रदय नामे ना ये
सबार पिछे, सबार नीचे, सब–हारादेर माझे।"

गीत पूर्ण होते–होते वह स्वयं भी पूर्णमयी हो गयी थी; ऋचागान करने वाली किसी सामगी की तरह शांत, उत्फुल्ल और स्तोम धूम की तरह सुरभित। मेरे पास बोलने के शब्द नहीं थे, बस, उसके दोनों हाथ को अपने हाथों में लेकर मैंने चूम लिया। वह निहाल हो उठी। मैं जाने के लिए उठा तब स्मरण आया कि कल सवेरे मुझे अपने गाँव जाना है। मैंने कहा, "कल मैं दरभंगा चला जाउंगा, एक सप्ताह लगेगा। इस बीच आप लिखने–पढ़ने का काम करते रहिए।" वह मुझे विदा करने आँगन के मुँह तक आयी। अपनी कोठरी में आया तो भोजन झाँपकर रखा था, मगर खाने की इच्छा नहीं हुई। मन के पोर–पोर को अभी तक रवींद्रनाथ के शब्दों ने छेंक रखा था — 'सबार पिछे, सबार नीचे, सब हारादेर माझे ..... ।' ये विश्वगुरु के शब्द थे जिसे बासमती ने गाकर मेरे सामने साकार कर दिया था। उसके गीत ऐसे ही बोलते–बतियाते हैं। मैं कंबल के नीचे पड़े–पड़े गीत का अर्थ तोलने लगा —

"हे प्रभु! आपके चरणों के लिए पादासनी मैंने यहाँ रखी, किंतु आपके चरण तो वहाँ शोभित होते हैं जहाँ सबसे अधम, सबसे दीन–हीन, सबसे पछुआए और सबसे नीचे रहने वाले सर्वहारा रहते हैं। ..... जब आपको प्रणाम करने के लिए मैं अपना माथा झुकाता हूँ , मेरा माथा उतने नीचे तक नहीं जा पाता है, जहाँ आपके चरण सबसे अधम, सबसे दीन–हीन, सबसे पछुआए और सबसे अपमानित सर्वहारा लोगों के बीच में स्थित होते हैं। .....अहंकार वहाँ तक नहीं पहुँच सकता है, जहाँ निर्वसन–निर्भूषण लोगों, सबसे अधम, सबसे दरिद्र और सबसे गए–बीते सर्वहारा लोगों के बीच आप रमण करते हैं। मेरा ह्रदय वहाँ तक पहुंचने का बाट नहीं खोज सकता, जहाँ मित्र–विहीन, सबसे कुंठित, उपेक्षित लोगों की संगति में आप मग्न रहते हैं।"

7

जनकपुर (नेपाल) से चलकर एक सप्ताह के लिए मैं अपने गाँव आ गया था। गाँव–घर का समाचार ठीक ही था। बहुत कुछ बदला नहीं था। मेरी श्रीमतीजी अपनी माँ से चित्रकारी के जो गुर सीखकर आयी थी, उसके प्रयोग में लगी रहती थी। मेरे पिताजी कवि थे तो स्वभावतः वह अपनी पतोहू के कौशल से प्रसन्न थे और उनको सहयोग करते रहते थे। हमारे गाँव या दरभंगा के किसी भाग में चित्रकारी का व्यवसाय उस समय तक नहीं चलता था। भारत सरकार द्वारा चलाए गए इस उद्योग को मधुबनी के कुछ गाँवों तक सीमित कर दिया गया था, और इसी कारण से इस कला–शैली का नाम 'मधुबनी पेंटिंग' पड़ गया था।

मैं घरेलू चित्रों में व्यावसायिक विकास और मूल रूप से स्त्रियों की इस काम में संलग्नता से बहुत प्रसन्न था, किंतु समस्त मिथिलांचल की उस कला–परंपरा को 'मधुबनी पेंटिंग' कहने से मुझे ऐतराज था। मैं चाहता था कि संपूर्ण मिथिला में उस कला–व्यवसाय का प्रचार–प्रसार हो और उसे 'मिथिला चित्रकला' कहा जाए, मगर सो होने वाला नहीं था। यह कला–व्यापार तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी और विशेष रूप से मिथिलांचल के प्रसिद्ध कांगरेसी नेता ललित नारायण मिश्र के प्रयास से विश्व भर में जगजगाया था। उन दिनों, सन 1970 में, ललित बाबू विदेश–व्यापार मंत्री थे जब पहली बार मिथिला के ये घरेलू चित्र जापान में आयोजित 'एक्सपो–70' में सम्मिलित किए गए। पहली बार में ही इन चित्रों ने कला–पारखियों को जैसे मंत्र–कीलित कर दिया। लोग कहने लगे कि मैथिल स्त्रियों के ये चित्र पिकासो के चित्रों से अधिक जीवंत हैं। इसके बाद तो ललित बाबू ने इन चित्रों को दुनिया भर में घुमाया। जब वे रेलमंत्री हुए तो रेल के डब्बों और स्टेशनों पर खूब चित्रकारी करवाए। बहुत कम समय में 'मधुबनी पेंटिंग' नाम से मिथिला के इन चित्रों का ध्वज देश–विदेश तक फहराने लगा। वाह रे ललित बाबू! उनकी जबरदस्त इच्छाशक्ति के कारण मिथिला के घर–आँगन में सिमटी चित्रकला दूर देश तक संभ्रांत लोगों के घरों तक पसरी और मैथिल स्त्रियाँ पहली बार अर्थोपार्जन में संलग्न हुई। यदि कुछ वर्ष और ललित बाबू जीवित रह पाते तो इस इलाके की हालत जरूर बदल गयी होती, मगर मिथिला के इस उपकारी सपूत को राजनीति के डाकुओं ने जीने नहीं दिया। 3 जनवरी, 1975 के दिन हत्या के कारण उनका निधन हो गया। दुर्भाग्यवश बिहार में आज तक ऐसी कोई सरकार नहीं बनी जो पूरे बिहार को एक बड़ी पहचान दिलाने वाली इस कला के लिए कुछ भी कर पाती।

मिथिला की सामाजिक–आर्थिक दशा पर निरंतर विचार करते रहने के मेरे पास कई कारण थे। उन दिनों गाँवों में गरीबी के कारण उपास होना आम बात थी। हमारे गाँव में कायस्थ, धानुक, हजाम, बढ़ई, कलवार, दुसाध, चमार, डोम और मुसलमानों के घर थे। सभी जातियों में परस्पर मेलजोल तो बहुत अच्छा था, लेकिन छुआछूत फिर भी बहुत सख्त थी। यह छुआछूत इतनी कड़ी थी कि मुझे कई बार अपने लोगों से उलझना पड़ जाता था। इसके लिए मुझे दंडित भी होना पड़ा लेकिन उसका उल्लेख यहाँ करना अनुकूल नहीं होगा। गाँव में गरीबी बहुत भयानक थी। मेरे महल्ले में एक थे अलख नारायण लाल जी। वह परोपकारी स्वभाव के थे और इसीलिए बहुत लोग उन्हें 'विनोबाजी' भी कहते थे। उन्होंने मेरी उमर के लड़कों की एक टीम बना ली थी। अलखजी इस बात की खोज में रहते थे कि किसके घर में चूल्हा नहीं जला, चूल्हे से उठने वाला धुँआ नहीं दिखा, फिर हम लोग मिल कर कोई उपाय निकालते थे कि उस घर में उपास नहीं हो। एक बार तय किया गया कि कुछ रुपए जमा किए जाएँ; उन रुपयों से चावल, दाल, नमक और आलू खरीदकर मिट्टी के घैला में जमा रखा जाए। उपास की नौबत आने पर लोग उस भंडार से चावल–दाल

उधार ले सकते थे। सामान रखने और लेनदेन करने का जिम्मा मिथिलेश कुमार को दिया गया। कुछ समय तक यह योजना चली। लगा कि अब लोग अन्न के अभाव में भूखे सो नहीं जाएंगे, मगर यह काम जादा दिन नहीं चल पाया। असल में लोगों की हालत अच्छी नहीं थी। जो परिवार उधार लेता था, वह लंबे समय तक अनाज वापस नहीं कर पाता था।

एक बार सरस्वती पूजा का समय था। जो थोड़ा–बहुत पैसा चंदे से जमा हुआ, उससे पूजा का सामान खरीदने के लिए मुझे बाजार (लहेरिया सराय) जाना था। रास्ते में था तभी मैंने देखा, दूसरी ओर से आता एक आदमी जमीन पर पड़े कुछ रुपए उठा रहा था। मैंने सहसा कह दिया, "ये रुपए मेरे गिर गए थे ... ... ।" उस आदमी को विश्वास नहीं हुआ। जाँचने के लिए उसने मुझसे पूछा, 'अच्छा बताओ, कितने रुपए हैं और कौन नोट हैं?" मैंने अंदाजे से ही कह दिया, 'बीस रुपए हैं ..... दो ठो दसटकिया ..... ।' मेरी दोनों बात सही ठहरी; वे दस–दस के दो नोट ही थे। उस आदमी ने मुझे रुपए दे दिया मगर मैंने बिलकुल झूठ कहा था। वे रुपए कतई मेरे नहीं थे मगर मैं इस बात से बहुत खुश था कि उन रुपयों से अब अनाज खरीदने के लिए हमारे पास पर्याप्त रुपए हो गए थे। बाजार से वापस आकर मैंने वे रुपए अलखजी को दिए। टीम में उचित–अनुचित पर थोड़ी बहस जरूर हुई, लेकिन जादा लोग भूख से बचाने के लिए झूठ बोलने को बुरा नहीं माने। उन दिनों रुपए मँहगे और अनाज सस्ते थे। उस समय चावल एक रुपए में करीब डेढ़ किलो (पौने दो सेर) और अरहर की दाल डेढ़ रुपए किलो मिलती थी। इस लिहाज से सभी सामान खरीदने के लिए बीस रुपए काफी थे। टीम के विचार के मुताबिक सभी सामान खरीद लिए गए और फिर से सदस्य परिवारों को इसकी सूचना दे दी गयी। इस 'उपास बचाओ' योजना का लाभ मात्र कायस्थ परिवारों तक सीमित था। मैं चाहता था कि इस योजना का लाभ दूसरी जाति के लोगों को भी मिले, लेकिन बाँकी लोग ऐसा नहीं चाहते थे। मैं भूख के दंश से भलीभाँति परिचित था, भूख सबों के लिए एक जैसी ही होती है। मैंने सोच लिया, आगे चलकर सबों के लिए कुछ करूँगा।

आगे चलकर मुझे अनुभव हुआ कि अपने को ऊँची जाति कहने वाले ब्राह्मण और कायस्थ परिवारों में भूख–दुख की हालत तथाकथित छोटी जाति या दलित कहाने वाली जातियों से अधिक खराब थी। इस स्थिति की सबसे बड़ी विडंबना यह थी कि बड़ी जाति की स्त्रियाँ विकट निर्धनता की स्थिति में भी किसी प्रकार के अर्थोपार्जन में नहीं लग सकती थीं जबकि छोटी जाति की स्त्रियाँ किसी प्रकार के कामकाज में लगने के लिए स्वतंत्र थीं। इस कारण से मैं ऊँची जाति की स्त्रियों को 'सांस्कृतिक कारणों से पीड़ित' मानता था। काफी मंथन के बाद अब मेरे विचार कुछ साफ हो गए थे। मैं किसी ऐसे समाधान की खोज में लगना चाहता था जो सभी जाति की स्त्रियों के लिए अच्छा हो; चलने लायक हो; उन्हें गाँव–घर में रहते हुए ही ऐसा काम मिल जाए जो सब कोई कर पाये। बड़ी जाति की स्त्रियाँ मधुबनी में तो चित्र बनाकर कमाइ करने लग गयी थीं लेकिन चित्र बनाने और बेचने के उस काम को मधुबनी तक ही सीमित रखा गया था। वहाँ की दलित स्त्रियाँ भी 'गोदना पेंटिंग' कहकर (1972 से) कुछ बनाने लगी थीं, लेकिन दरभंगा या दूसरे इलाकों में यह काम बढ़ाया नहीं गया था।

चित्रांकन को सार्वजनिक व्यवसाय के तौर पर अपनाने का विकल्प यद्यपि कि मेरे दिमाग में अभी भी साफ नहीं था, किंतु इसमें मुझे कई फायदे दिख रहे थे। पहली बात तो यह कि कलम से कमाइ करना सभी जाति की स्त्रियों के लिए सम्मानजनक होता, दूसरी बात यह कि इससे उनको पढ़ाई की ओर ले जाना

आसान होता। मगर यह होगा कैसे? सामूहिक स्तर पर सभी जाति की स्त्रियों को साथ लेकर कुछ कर पाने की योजना मन में साफ नहीं हो पा रही थी। उस समय तक कहीं ऐसा देखा भी नहीं था। औरतों को सार्वजनिक तौर पर अपने घर से बाहर जाकर कुछ करने की अनुमति नहीं थी। बासमती बार–बार कहती थी, सोचने में क्या लगता है? सोचने में कोई पैसा थोड़े लगता है! इस अर्थ में वह मुझसे बहुत आगे थी। उसने तो इतना तक सोच लिया था कि हम दोनों मिलकर गोदना–चित्र की पुस्तक बना लें ताकि मधुबनी की हरिजन स्त्रियों की चित्र बनाने में मदद हो सके। वैसे भी मेरे माथे पर पहले से ही सभी स्त्रियों के लिए, उन्हें मजबूत करने के उपाय खोजने का जिम्मा सौंपकर तबस्सुम मर गयी थी, मगर यह किस्सा कुछ बाद में।

मेरी श्रीमतीजी थोड़ा–बहुत चित्रांकन के काम में 1974 से ही लगी हुई थी, जब वह हमारे घर आयी थी। कभी–कभी वह दरभंगा में लगने वाली प्रदर्शनी में भी मेरे पिताजी के सहयोग से भाग ले चुकी थी। मुझे जब कभी अवसर मिलता, मैं अपनी पत्नी से स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए चित्रकला के उपयोग पर बातचीत करता था, किंतु वह किसी व्यापक परिवर्तन के काम में लगने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं थी। मेरी समझ में, उनकी इस मानसिकता का कारण उनके नैहर का व्यवहार ही था। वह अपने नैहर से जो सीखकर आयी थी उसमें सिर्फ व्यक्तिगत हित की बात थी। जितवारपुर, रौंटी या मधुबनी के किसी गाँव में चले जाइए, आज भी वहाँ कोई कलाकार व्यक्तिगत हित से ऊपर उठकर सोचने को तैयार नहीं है। चित्रकारी के लिए विख्यात इन गाँवों में आज भी हालात ऐसी है कि कोई किसी को अपना चित्र तक दिखलाने को तैयार नहीं होता है। सब यही सोचता है कि वह सबसे बड़ा कलाकार है और यदि दूसरा कलाकार उसका चित्र, चित्र की साज–सज्जा या विषय जान लेगा तो वैसा ही बनाने लगेगा और उसका ग्राहक छिन जाएगा। ऐसी मानसिकता वाला कोई कलाकार सभी जाति की स्त्रियों के लिए कैसे चिंता कर सकता है? बहुत लंबे समय तक मेरी पत्नी की भी ऐसी ही सोच थी, लेकिन एक घटना ने उनका मन पलट दिया।

लहेरिया सराय में टावर के पास 'कमला लाइब्रेरी' है। उन दिनों शाम के समय वहाँ काफी चहलपहल रहती थी। उसके वाचनालय में एक साथ पचीस–तीस पाठक बैठकर अखबार और पत्रिकाएँ पढ़ सकते थे। मैं जब घर पर होता था तो वहाँ जरूर जाता था। एक शाम जब मैं लाइब्रेरी से लौटा तो देखा, मेरी श्रीमतीजी बहुत दुःखी थीं। पूछने पर उसने बताया कि पड़ोस के एक गाँव में, दहेज के लिए, एक स्त्री को गला दबाकर मार दिया गया था। बात महज दो दिन पहले की थी जब दरिंदों ने उस मृतका को जलाने के लिए हमारे घर के बगल से ही एकमीघाट श्मशान ले गए थे। इस घटना की जानकारी ने मेरी पत्नी को बेचैन कर दिया था। मैंने उसे समझाया कि इस तरह की घटना रोकने के लिए जरूरी है कि स्त्रियों का सामाजिक मूल्य बढ़े, उनका सशक्तिकरण किया जाए; उन्हें 'पढ़ाई के साथ कमाई' वाले किसी कार्यक्रम से जोड़ा जाए। यदि ऐसे कुछ कार्यक्रम चलें तो अगले दस वर्षों में इसका अच्छा असर देखने में आएगा। अब वह मेरे विचार से सहमत हो गयी। हम दोनों ने तय किया कि आगे चलकर स्त्रियों के लिए कोई कार्यक्रम जरूर चलाएंगे।

मैं कई महीने बाद नेपाल से दरभंगा आया था, लेकिन इस बार मैंने जेपी आंदोलन से जुड़े किसी कार्यक्रम में भाग नहीं लिया। मेरा छोटा भाई किरतू अपने छः–सात मित्रों के साथ एक बार जेल से हो आया था। छोटे कस्बों से लेकर महानगर तक के छोटे–बड़े हजारों राजनीतिक नेता और छात्र–नेता जेलों में बंद

थे। मुझे अब साफ दिखने लगा था कि आंदोलन वैसा नहीं रह गया था जैसा छात्रनेता और जेपी शुरू में चाहते थे। अब आंदोलन का नेतृत्व राजनीतिज्ञों के हाथ में चला गया था। इस अनुभव से मेरे मन को एक झटका सा लगा। मुझे रासबती की बात का अर्थ अब समझ में आने लगा था, 'आज जो बड़े नेता हैं, ये सब नया जमाना के आर्य हैं.... पहले वाले आर्यो से जादा झूठे और खतरनाक ..... इन में भी जो गरीब हैं वे बड़े नेता का झंडा लेकर हुलेलुले करते फिरते हैं।' मुझे लगा, रासबती ठीक ही कहती है। ये नेता आंदोलन से फायदा उठा लेंगे, लेकिन जेपी के 'संपूर्ण क्रांति' का सपना पूरा नहीं होने देंगे। इस सोच ने मुझे सक्रिय आंदोलन से हँटाकर बासमती के करीब ला दिया, उसके विचार जादा सही लगने लगे। अपनी बहन की देखादेखी वह भी कहती थी, ये नेता गरीबों का भला कभी नहीं होने देंगे। इस बीच मैंने शांतिपूर्वक अपने परिवार और मित्रों के साथ छुट्टी बितायी और दसवें दिन जनकपुर के लिए विदा हो गया।

जनकपुर से चलते समय मैं रासबती से उसकी दुकान पर जाकर मिला था और पूछा था कि अगर उधर से कुछ मँगाना चाहती हो तो ला दूँगा। नेपाल में चीन के बने पॉलिस्टर और दूसरे सामान तो बहुत सस्ते थे, मगर भारतीय सामान पर सीमा शुल्क लगने के कारण वहाँ काफी मँहगे मिलते थे। उसने मुझे कुछ रुपए देते हुए बासमती के लिए एक 'नाइटी' (पूरे शरीर को ढँकने वाला चोंगा जैसा एक पहनावा) खरीद लाने को कहा था। मैंने उसके रुपए नहीं लिए। दरभंगा से वापसी में जयनगर के लिए ट्रेन पकड़ने जब दरभंगा गए तो वहाँ रेडीमेड कपड़ों की दुकान से एक नाइटी खरीद लिया। उससे पहले, लहेरिया सराय में स्वीटहोम से मिठाई खरीद चुके थे। इस दुकान की मिठाई बहुत प्रसिद्ध थी। उसकी मिठाई में लगता था जैसे सुगंध को जमा कर उसमें माधुर्य का पाक दे दिया गया हो। इतना कुछ करने के बाद दरभंगा से चले तो जनकपुर पहुँचते-पहुँचते शाम हो गयी।

मैं दस दिनों के बाद आज उस आँगन जा रहा था। सात दिन कहकर गए थे। मन तो मेरा भी उताहिल था, लेकिन इतने दिन बाद जाते हुए लगा जैसे आवाजाही का नवीकरण हो रहा था। उसके घर के पिछवाड़े में आए तो गीत की स्वर-लहरी कान में पड़ी और पैर ठमक गए — 'जाहि बाटे हरि गेला, दुभियो जनमि गेल, कि आहे ऊधो, बटिया हेरैते छतिया फाटत रे की ..... ।' (जिस रास्ते कृष्ण गए, वहाँ दूब भी जनम गयी; हे ऊधो, रास्ता देखते-देखते ही लगता है एक दिन छाती फट जाएगी)। गीत के शब्द उसकी धुन में साकार हो जाते थे। गीत तो सब गाते हैं। कुछ लोग गवैया हो जाते हैं, किंतु मैंने उसीके गीतों में शब्द को प्रतीक बनते देखा। मैं शब्द को अकानते आगे बढ़ा। गीत चल ही रहा था, 'कि आहे ऊधो, कौने रे जोगिनिया जोगबा मारल रे की ..... ।' वह टाट में ओठंगकर गा रही थी कि अनायास मैं उसके सम्मुख आ गया। वह क्षण हम दोनों के लिए दुर्लभ था। वह कुछ क्षण तक मुझे देखती रही, फिर धीरे से मेरी ओर बढ़ी और मुझे अपनी बाँहों में ले लिया। मैं निःशब्द उसे महसूसता रहा।

जब बिछावन पर दोनों आमने-सामने बैठे तो पहले उसने गाँव-घर का समाचार पूछा। सबके बारे में उसे विस्तार से बता दिया। इसके बाद उसको सनेस दिए, मिठाई और नाइटी। पहले उसने खड़ी होकर नाइटी की तह खोला और देह में सटाकर उसे भजारा। साइज एकदम फिट था। वह बहुत प्रसन्न थी। उसने कहा, "यह तो आप बहुत बढ़िया सामान ला दिए लेकिन दीदी बता रही थी कि आप रुपए नहीं लिए ..... ।"

"सनेस का भी पैसा लिया जाता है? मैं भी तो नौकरी कर ही रहा हूँ। नौकरी लोग क्यों करते हैं? अपने लोगों के लिए ही न!" उसे यह सुनकर बहुत अच्छा लगा। वह भी मेरी अपनी है, इस अनुभूति से उसके होंठ थोड़ा गोलिआए, कँपकँपाए और आँखें स्मिति की उछाही से झँप गयीं। जब किसी बात पर वह लजा जाती थी तो उसके गाल और कान ललोन हो जाते थे। ओखा मिटाने के लिए वह मिठाई का डब्बा खोलने लगी, "यह भी गमक रहा है ..... " , इतना बोलकर उसने एक ठो मिठाई मेरे मुँह में रख दिया। मैंने भी एक बड़ा टुकड़ा उसके मुँह में रख दिया। इस बात पर हम दोनों मुँह बंद किए ही हँसने लगे। ऐसे हँसते समय हँसी की फुहार सिर्फ नाक से छूटती है और देह कूदने लगती है। उसके ऊपर वाले अंग दलकने लगे। ऐसा पहली बार देखे थे। वह समझ गयी।

सभी सामान ठीक से रखने के बाद वह फिर से बैठी और बोली, "वहाँ तो आपके बहुत साथी होंगे। इसीलिए न इतने दिन लगा दिए ..... !"

"संगी–साथी भी बहुत तरह के होते हैं न! जितने लोगों से मिलना–जुलना होता है, गपसप होता है कि हँसी–मजाक होता है, सब साथी ही कहे जाते हैं। उसी में एकाध ऐसा साथी होता है जिससे सुख–दुःख की बात की जाती है। ऐसे साथी बहुत कम होते हैं। ऐसे साथी में कोई ऐसा भी होता है जो मन के बहुत पास होता है, जिससे मिलने के लिए मन अकुलाता रहता है। ऐसा साथी किसी को भाग्य से ही मिलता है। यदि संयोग से ऐसा साथी मिल जाता है तो जीवन मधुर हो जाता है, लेकिन यदि वह बिछुड़ जाता है तो कलेजे के किसी दोगा में सिरिफ एक टीस रह जाती है।" मेरी आँखों के आगे दस वर्ष पहले के दृश्य किसी चलचित्र की तरह आकार लेने लगे। वैसे मैंने जगिया और तबस्सुम को कभी बिसारा नहीं, लेकिन जब जान–बूझकर ऐसे करीबी किंतु बिछुड़े लोगों को याद करते हैं तो मन में एक हलचल तो होती ही है। मुझे स्मृति के जाल में फँसा देखकर बासमती ने पूछा, "आपको कभी ऐसा साथी मिला कि नहीं ..... ?"

"सो तो मिलने को दो साथी मिली, एक साथ ..... और अपने रंग में रंगकर चली भी गयी ..... लेकिन जाकर भी वह दोनों मेरे मन में वैसे ही समायी रहती है जैसे दस वर्ष पहले आँखों के सामने रहती थी।" बासमती ने मेरा हाथ पकड़कर कहा, "जरा वह खिस्सा कहिए न ..... !"

"वह कोई खिस्सा नहीं है ..... वह मेरे जीवन का संकल्प बनकर हरदम मेरे साथ रहती है। यह घटना दस साल पहले की है, जब मैं लड़कियों से बहुत लजाता था। वैसे भी उस जमाने में लड़के–लड़की एक दूसरे से बहुत मेलजोल नहीं रखते थे। पहले जगिया मिली। उसका असली नाम जगदंबा था। पहले उसी ने मुझे टोका। मैंने कभी आपको यह तो बताया था कि नौवें क्लास में पढ़ रहे थे तो दो रुपए आठ आने की महिनवारी फीस नहीं देने के कारण गुरुजी ने कान पकड़कर मुझे क्लास से निकाल दिया था। कुछ दिन के बाद मेरे पिताजी सबसे बढ़िया स्कुल में ले गए ..... एम एल एकेडमी। साल का आखरी समय था, इसलिए वहाँ नाम तो नहीं लिखाया लेकिन प्राइवेट से पढ़ने और परीक्षा देने के लिए कहा गया। जगिया से उसी दिन भेंट हुई। वह कहीं बाहर से उस शहर में आयी थी। उसे भी वही बात कही गयी। मैंने भी परीक्षा फीस जमा की, उसने भी फीस जमा की। जब परीक्षा हुई तो आगे की बेंच पर मेरा सीट था और मेरे ठीक पीछे उसका। मैंने बढ़िया से पढ़ाई की थी इसलिए मुझे सभी सवालों के जवाब मालूम थे, लेकिन लगता है उसने ठीक से पढ़ाई नहीं की थी, इसलिए लिख नहीं रही थी। मैं लिख रहा था तो लगा कि पीठ पर

बार–बार कुछ पड़ रहा है। मैंने पीछे पलटकर देखा। उसके हाथ में आसमानी रंग का एक रुमाल था। रुमाल के खूँट में गिरह देकर वह मेरी पीठ पर हल्के से मार रही थी। मैंने उसकी ओर ताका तो उसने कहा, "जरा दिखाओ न ..... !" मुझे बहुत डर लगा, लेकिन पता नहीं उसकी बातों में मैं कैसे आ गया, अपनी कॉपी उठाकर मैं उसे दिखलाने लगा। जब घंटी बजी तो मास्टर साहब सबों की कॉपी ले लिए। सभी विद्यार्थी बाहर निकलने लगे। मेरे पीछे वह भी निकल रही थी। जब क्लास के मुँह पर आए तो उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और झटककर बाहर निकल गयी। मैं इतना लजा गया कि वहीं ठमककर रह गया।"

"फिर .... फिर दूसरे दिन कुछ हुआ कि नहीं?" बासमती उत्सुकता से पूछी।

"दूसरे दिन गये तो घंटी नहीं लगी थी। सभी कोई बाहर में खड़े थे। वह मेरे बगल में आकर खड़ी हो गयी। जब घंटी लगी तो सब कोई हड़बड़ाते हुए क्लास में घुसे। मैं उससे लजाता था, इसलिए खड़ा ही रह गया। जब सब कोई चले गए तो उसने मुझसे कहा, "आज भी दिखलाना ..... ।" मैंने उसे कुछ नहीं कहा और अपने स्थान पर आकर बैठ गया। पहले कॉपी पर नाम, तिथि और विषय लिखे तब ध्यान से प्रश्नपत्र पढ़े। सभी प्रश्न बहुत आसान थे। मैं झटपट लिखने में लग गया। जब थोड़ा लिखा हो गया तब उसने रुमाल से मेरी पीठ पर इशारा किया। मैंने उसकी ओर ताका तो नहीं लेकिन कॉपी उठा दिया। कुछ देर बाद मैंने उसकी ओर देखा तो उसने मुँड़ी टेढ़ियाकर इशारा कर दिया। मैं समझ गया और फिर से लिखने लगा। बाद में मैं अपने अंदाजे से ही उसे दिखलाता रहा। वह हबर–हबर उतार लेती थी और लिखा जाने के बाद पीठ पर रुमाल मारकर बता देती थी। जब घंटी बजी तो सब कोई एक साथ झुंड में निकलने लगे। उस भीड़ में उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। यह तो बहुत मुश्किल बात थी। मैं थोड़ा दूसरी ओर घुसक गया, वह भीड़ में ठेलाकर बाहर चली गयी।"

बासमती बात में बहुत रस ले रही थी। उसे रहा नहीं गया, "आगे ..... फिर क्या हुआ?"

"फिर क्या होगा ..... जो ऐसे में होता है। अगले दिन वह मुझसे पहले आकर क्लास के मुँह पर खड़ी थी। मैं उसके पास नहीं गया और बाहर में रखे एक बेंच पर बैठ गया। वह मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी और बोली, "जरा कल चला दो न ..... !" मैंने कहा कुछ नहीं, उठकर खड़ा हुआ तो वह पानी के कल की तरफ बढ़ी। मैं कल चलाने लगा, उसने हथेली से कल का मुँह बंद करके उसमें अपना मुँह लगा लिया मगर वह पानी पी नहीं रही थी, उँगली के छेद से पानी बाहर फेंक रही थी। मुझे गुस्सा चढ़ गया। मैंने कल चलाना छोड़ दिया और अपनी सीट पर आकर बैठ गया।"

"वह कितनी बड़ी थी ..... माने सयानी थी क्या?"

"मैंने अपने ढंग से बासमती का भाव समझकर कहा, "मैं सोलह बरस का था और वह भी उतने की ही रही होगी, लेकिन वह स्कूल के फारम में मुझसे छः महीने बड़ी लिखी थी। उसका सब कुछ आपसे छोटा था।" मेरे कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि उसे हँसी आ गयी, मैं भी बहुत हँसा।" हँसी थमने पर बासमती ने फिर टोका, "फिर कैसे क्या हुआ?"

"फिर हुआ परीक्षा खतम होने के बाद ..... जिस दिन रिजल्ट निकला। मैं भी पास हो गया, वह भी पास हो गयी। रिजल्ट सुनने के बाद वह मेरे पास आयी और बोली "तुमही ने मुझे पास करा दिया ..... तुम

कॉपी नहीं दिखलाते तो मैं कुछ नहीं लिख पाती।" उसके मुँह पर अनुग्रह का भाव देखकर मेरे मन के द्वार से लाज हँट गयी। मैंने उसकी ओर नजर भर ताका। अपनी ओर ताकते हुए देखकर उसने कहा, "इतने दिन में तुमने आज ही मेरी ओर देखा है। अब बोलोगे कि नहीं?" मैंने केवल 'हाँ' कहा। उसने इधर–उधर देखकर मेरा हाथ पकड़ लिया। मुझे बुरा नहीं लगा।"

बासमती की उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। वह जल्दी किसी परिणति पर पहुँचना चाहती थी। उसने कहा, "इसके बाद तो ठीक से बातचीत होती होगी?"

"सो टोकाटोकी तो हो ही जाती थी, लेकिन वह कहीं बैठकर बतियाना चाहती थी, सो नहीं हो पाता था। वह जो स्कुल आती थी तो कभी–कभी एक थैले में कुछ कपड़े लाती थी और टिफिन के समय में या छुट्टी होने पर कहीं दे आती थी। फिर किसी दिन वह कपड़े वापस ले आती थी। उन कपड़ों पर सूई–धागे से कशीदा किया रहता था। एक दिन उसने वह कपड़े दिखलाया। कशीदा के काम बहुत नफीस और महीन थे। लगता था जैसे किसी मकड़ी ने अपने तंतु से तरह–तरह की टीप वाला वह काम कर दिया हो। बहुत जिद करने पर उसने बताया कि अपने स्कुल और गर्ल्स स्कुल के बीच से जो एकबटिया भाँग के जंगल की ओर गयी है, सो उसी के घर पर गयी है। कशीदा का वह काम उसी घर में रहने वाली तीन बहनें मिलकर करती हैं। तीनों बहनों के नाम जरीना, जुबैदा और तबस्सुम है। तबस्सुम सबसे छोटी थी। उनका बाप रिक्शा चलाता था और माँ दो–तीन घरों में चौका–बरतन करती थी। उसके यहाँ किसी पुरुष या लड़कों का जाना मना था।"

बासमती को यह बात अजगुत लगी। उसने पूछा, "सो क्यों मना था?"

मुझे उस समय जगिया ने जितना बतलाया था, मैं उतना ही जानता था। पहली बात तो यह थी कि भाँग के उस जंगल में वह एकाकी घर था। तीनों बहन जवान थी जो दिन भर अपने काम में लगी रहती थी तब कहीं जाकर पेट चलता था। दूसरी बात यह थी कि घर का अगला पाखा था ही नहीं। उसके बदले में एक लंबा बोरे का परदा टँगा रहता था। उस परदे में थाली जैसी एक गोल खिड़की कटी हुई थी। जो कोई जाता था, उस खिड़की के पास मुँह ले जाकर बात कर लिया और वापस चला गया। तीसरी बात यह थी कि उनकी देह पर ढंग के कपड़े नहीं रहते थे। इसी सब कारण से वहाँ बाहरी किसी आदमी का जाना मना था।"

इतने कारण सुनकर बासमती मेरी ओर देखकर बोली, "अरे बाप रे! इतना दुःख ..... मैं तो समझती थी कि हम लोग ही गरीब हैं ..... ।"

"उतना सुंदर कशीदे का काम करने वाली लड़कियों की ऐसी विकट गरीबी की बात सुनकर वहाँ जाने की मेरी इच्छा जोर पकड़ने लगी। जगिया मुझे वहाँ ले नहीं जाना चाहती थी। एक दिन मैंने जिद पकड़ ली। उस दिन मैंने जगिया को बिलकुल नहीं टोका। दूसरे दिन भी वह मेरे आगे–पीछे घूमती रही, लेकिन मैंने एकदम नहीं टोका। उस दिन छुट्टी से एक घंटी पहले मैं पानी पीने के लिए कल पर गया तो वह भी लपककर वहाँ चली आयी और मेरे सामने में खड़ी हो गयी। एक बार मैंने उसकी ओर ताका। पुतली जैसे उसके गोल–मोल मुखड़े की सुरखी जैसे बिला गयी थी। उसकी आँख का कोसा एकदम ललोन और मेघ

जैसा डबडबा गया था। उसने भड़भड़ाए स्वर में कहा, "तुमको ऐसा करते अच्छा लगता है? मुझे नहीं टोकने से तुम्हारी जिद पूरी हो जाएगी क्या? वे लोग मुसलमान हैं ..... अपने नियम के पक्के ..... तुमको वे बुलाएंगे तभी तो मैं ले जाउंगी ..... ?"

मेरा मन भी खीज गया था। मैंने कहा, "मेरे जैसे जिद्दी आदमी को तुमने मना लिया सो हुआ और उन लड़कियों को समझा–बुझा दोगी सो तुमसे नहीं हो रहा है। इसका माने यही है कि तुम नहीं चाहती हो मैं वहाँ जाऊँ।"

मेरी बात सुनकर उसकी आँखों से ढप से लोर गिर पड़े। वह बोली, "तुम क्या जानो कि मैं क्या चाहती हूँ ..... तुम्हारे दिल में थोड़ा भी माया–मोह का दरस तो है नहीं ..... ।" इतना बोलकर वह चली गयी। उसका सूखा हुआ मुँह और लोर की बूँदों ने मुझे पस्त कर दिया। मैंने तभी सोच लिया, अब उसे परेशान नहीं करूँगा। उस दिन छुट्टी के बाद जगिया शायद उन लोगों के घर गयी थी। मैंने उसे जाते देखा, लेकिन टोका नहीं।"

बासमती को जगिया से सहानुभूति हो आयी। उसने कहा, "आपने बास्तव में उसे बहुत दुःख दिया। दूसरे दिन उसे टोके कि नहीं?"

"उसे दुःखी देखकर मैं भी खुश नहीं था। पहले मेरे मन में होता था कि धनी लोगों का कलेजा इतना मुलायम नहीं होता है कि किसी की दोस्ती में रोने लगे। जगिया धनी सेठ की बेटी जरूर थी, लेकिन उसका दिल मेरे–आपके जैसा ही मुलायम था। दूसरे दिन जब स्कूल गए तो वह हिलसकर मेरे पास आयी और बोली, "अब भी टोकोगे कि नहीं? आज उन लोगों ने तुम्हें बुलाया है।" उसका चेहरा खुशी से दमक रहा था, मेरे लिए यही सबसे बड़ी बात थी। उसकी आँखें बहुत बड़ी थीं। उसमें भी जिस दिन वह काजल लगा लेती थी तो लगता था जैसे किसी गहरे कुँआ से कोई तारा झुलकी दे रहा हो। मैं उसकी वैसी ही आँख देखकर लटपटा गया था; एकदम निर्दोष, सपाट और मंत्राविष्ट आँखें।"

बासमती लगातार मेरे मुँह पर ही ताक रही थी। मुझे लगा, वह जगिया की छवि आँक रही थी। कुछ देर वह ढिबरी की टेम पर देखती रही फिर पूछी, "तो वहाँ गए कि नहीं? क्या सब हुआ सो कहिए ..... ।"

"वहीं जाने के लिए तो रूठना पड़ा था, जाते कैसे नहीं? जगिया ने उन तीनों बहनों को मना लिया था। तीनों में सबसे छोटी तबस्सुम से उसकी गहरी दोस्ती थी। वैसे तीनों बहन स्वभाव की बहुत अच्छी, मखौलिया और एक पर एक सुंदर थी। तीनों बहनों ने मुझे लाने के लिए कहा था, लेकिन अपने माँ–बाप से छिपाकर। उसकी माँ सुबह–शाम डेरा कमाने जाती थी। सुबह में जाती थी सो दस बजे लौटती थी और चार बजे जाती थी तो आठ बजे रात में लौटती थी। बाप के लौटने का कोई ठिकाना नहीं रहता था। वह रिक्शा चलाकर कभी देर रात में लौटता था। जगिया की माँ शायद हस्तकला के सामानों का व्यापार करती थी। इसी व्यवसाय के लिए उन लोगों से सामान बनवाती थी। जो हो, जगिया उन लोगों की आमदनी का जरिया थी, इसीलिए उसकी बात चल गयी। जगिया ने मुझे बता रखा था कि सबसे छोटी तबस्सुम तो उसीकी उमर की थी, लेकिन मझिली और बड़ी उससे आठ–दस साल बड़ी थी। जगिया उन दोनों को बड़ी आपा मानकर सलाम करती थी। उसने मुझे भी कहा था, "तुम भी सलाम करना।"

"भाँग के उस जंगल में तीन ठो अकठ–मकठ के पेड़ थे, एक तरफ घर का मात्र एक ढाँचा था जिसका अगला पाखा था ही नहीं और दिवाल का जो भाग देखार था वह भी नोनियाकर पतला हो गया था। छप्पर को छप्पर कहिए कि जंगल का ही एक भाग, जो समझिए। उस पर अंडी, भाँग और पोरो की लत्ती इस तरह फैली थी कि फूस वाला भाग दिखाई नहीं दे रहा था। वह तीनों बहनें घर के आगे में दो ठो

पटिया बिछाकर खड़ी थीं। जगिया ने सबों को सलाम किया लेकिन एक साथ तीन–तीन लड़कियों को सामने में खड़ी देखकर मेरा तो ज्ञान ही कहीं खो गया था। मुझे चुप देखकर जगिया ने केहुनी सटाकर मुझे इशारा किया तो मैंने भी कहा, "सलाम अलैकुम"। तीनों बहनों ने हँसकर मुझे जवाब दिया, "वालेकुम अस्सलाम" और तबस्सुम ने हँसकर मेरा हाथ थाम लिया। जब सब लोग पटिया पर बैठ गए तो बड़ी आपा (जरीना) ने मुझसे पूछा, "आपका क्या नाम है?" उस समय मेरे नाम में 'कश्यप' नहीं जुड़ा था। मैंने कहा, 'कृष्ण कुमार।' मेरी बात पर मझली बहन (जुबैदा) ने कहा, "माने छोटे कृष्ण जी ..... ।" उसकी बात पर सभी हँसने लगीं। जब हँसी थमी तो मैंने भी हिम्मत करके बड़ी से पूछा, "आपका नाम क्या है?" उसने चट से कहा, "राधा ..... ।" तभी मझली ने टीप देते हुए कहा, "और मेरा नाम रुकमिनी ..... ।" मैं समझ गया, वे मजाक कर रही थीं। ऐसे में छोटी क्यों बाँकी रहती; उसने कहा, "और मैं ही हूँ सतभामा ..... ।" हँसी तो ताबड़तोड़ चल ही रही थी, उसी बीच बड़ी ने कहा, "सब कुछ तुम लोग ही ले लोगी तो जगिया क्या लेगी?" मैं तो कुछ बोल ही नहीं रहा था, बड़ी की बात पर जगिया लाज से सकपका गयी। उसकी ओर कनखी मारते हुए तबस्सुम ने कहा, "वह गोपी बनकर रहेगी न!" इतना बोलकर वह पर्दा उठाकर घर में चली गयी। क्षण भर में ही तबस्सुम एक छिपली में थोड़ा खजूर ले आयी और बीच में रख दिया। सभी कोई मीठे खजूर खाकर पानी पीते गए। पहले दिन की यह भेंट बहुत अच्छी थी। कुछ देर रुककर मैं और जगिया वहाँ से विदा हो गया।"

"आप जो बता रहे हैं उससे मैं समझती हूँ कि वे लोग गरीब थे, मिहनत–मजदूरी करके गुजारा करते थे लेकिन उतने से ही खुश थे। उस दिन के बाद तो आप बराबर उन लोगों से मिलते होंगे। तब तो सब लड़की मिलकर आपको खूब बनाती होगी। कैसा–कैसा मजाक करती थीं वे सब?"

"बड़ी दोनों आपा तो मजाक नहीं करती थीं, लेकिन हमारे बराबर वाली तबस्सुम जो थी वह ऐसा मजाक करती थी कि मैं एकदम अकबका जाता था ..... जवाब ही नहीं फुराता था। ऐसे में जगिया उसे डाँटकर मुझे बचा लेती थी। ..... उसका एक मजाक अब जब याद आता है तो मन टीस से भर उठता है। एक बार उसने कहा, 'तुम अगर छोटे होते तो मैं तुमको गोदी में लेकर चुम्मा ले लेती ..... ।" इसके जवाब में मुझे भी तो कुछ कहना था; मैंने कहा, "और तुम अगर छोटी होती तो मैं तुम्हें कंधे पर बैठा लेता .....।" उसने चट से कहा, "तो मैं तुम्हारी देह पर ही मूत देती .....।" मेरे पास इस बात का कोई तोड़ नहीं था लेकिन जगिया ने उसे चपेटा, "तुम जो एक जवान लड़के की देह पर मूतोगी तो वह तुमको ऐसे ही छोड़ देगा .....?' यह बात सुनकर तबस्सुम बिलकुल बेजवान होकर लजा गयी। जगिया ने मुझे फिर जिता दिया।"

कंधे पर मूत देने की बात से बासमती को बहुत हँसी आयी। उसने कहा, "इतनी विकट गरीबी में इस तरह की हँसी–खुशी ही उन लोगों का सहारा रहा होगा ..... ।"

"सो खुशी का वह माहौल टिका कहाँ? दुर्भाग्य के ऐसे तूफान ने उस घर को घेर लिया कि सभी सुख–चैन समाप्त हो गए। यही बात बताने के लिए तो मैंने आपको यह किस्सा सुनाया है ..... मगर वह बात जो मैं आपको बताऊंगा, उसके लिए साहस नहीं हो रहा है।" बासमती समझ गयी कि बात कुछ भारी है। वह मेरे मुँह पर ताकती रही, बोली नहीं कुछ।

सुख के दिन आते हैं और धूप–छाँव की तरह ससर जाते हैं, लेकिन दुख की बात जब याद आती है तो सभी पीड़ा एक साथ मन में घनीभूत हो जाती है। बासमती को वह घटना बताने के लिए मैं उस पीड़ा को घोंट गया, "हम लोग करीब दस मास तक एक–दूसरे से मिलते–जुलते रहे। सप्ताह में दो बार मैं वहाँ जरूर जाता था। दुर्गापूजा के समय में मैं अपनी फूआ के यहाँ चला जाता था, गंधवारि (पंडौल के पास मधुबनी का एक गाँव) और लगभग महीना दिन वहाँ रहकर, छठ के बाद घर वापस आता था। इसी मास दिन में

तबस्सुम पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। कहता है कि जिस डर से अलग हुए, वही पड़ा हिस्सा। उसके माता–पिता ने जिस डर से बाहरी लोगों के आने–जाने पर घर में पाबंदी लगा रखी थी, वही दुःख उन्हें भोगना पड़ा। उन लोगों का अपना ही एक संबंधी उनके लिए मुसीबत बन गया। उस आदमी ने चालाकी से घर में पैठ बना लिया और तबस्सुम को अपने जाल में फँसाकर उसे गर्भवती कर दिया। वह इन बातों को ठीक से जानती–समझती नहीं थी। अनजाने में गर्भ बढ़ता रहा। कुछ तकलीफ होने पर जब उसने जगिया को सब बात बतलायी तब घर में बात खुली। उस समय तक गर्भ बहुत बढ़ गया था। उधर जब बात खुली तो वह आदमी कहीं भाग गया। उन दिनों अस्पतालों में भी गर्भपात का कोई इंतजाम नहीं रहता था। वैसे जिनके पास रुपए होते हैं उनके लिए तो हर जगह बचने का इंतजाम होता है, लेकिन किसी गरीब लड़की को अगर ऐसा कुछ हो जाता था तो उसे प्रायः मरना ही पड़ता था। यदि टोला–महल्ला के लोग जान गए तो हर तरफ थू–थू होने लगता था और पूरा परिवार समाज की घृणा का पात्र बन जाता था। ऐसे परिवार को समाज बार देता था, वहिष्कृत करके तरह–तरह से यातना देता था। इसलिए भी परिवार वाले ऐसी लड़की को अस्पताल नहीं ले जाते थे कि कहीं बात न खुल जाए। पुराने तरीके में, प्रसव–क्रिया कराने वाली चमारिन जाति की स्त्रियाँ गर्भपात कराने के लिए कुछ कठिन प्रयोग करती थीं। इस क्रम में कोचला नाम का जहर दिया जाता था; अब इससे गर्भपात हो जाए अथवा वह लड़की ही मर जाए, इसका कोई जिम्मेवार नहीं होता था। घर के लोग भी उस लड़की को कुल–कलंकिनी मानकर हर तरह का नुकशान उठा लेते थे। मुझे जब जगिया ने यह सब बतलाया उस समय तबस्सुम मृत्यु–शय्या पर पड़ी थी। बहुत मुश्किल से, छिपते–छिपाते उसके पास पहुँचे। उसकी आँखें जहर के प्रभाव से बैठ गयी थीं। शरीर बिलकुल काला–स्याह, मात्र चमड़ी के खोल में ढँका एक ठठरी बनकर रह गया था। वह हिल–डुल नहीं सकती थी। मैंने उसका हाथ पकड़ा तो वह समझ गयी। वह बोल नहीं सकती थी, लेकिन मेरे हिस्से के आँसू उसके पास कुछ बचे थे सो उसने बिना रोये बहा दिया। उसकी देह में जितना पानी बचा था, लोर बनकर बह गए। अब उसकी आँखों में वह भी नहीं बचा। कुछ देर बाद सूखकर पपड़ी बने उसके होंठ दो–तीन बार अलगे। मैं समझ गया, वह पानी माँग रही थी। वहीं खाट के नीचे लोटे में पानी रखा था। मैंने उसके माथे को अलगाकर अपनी बाँह पर रखा और लोटा उसके मुँह से लगा दिया। दो–तीन घूँट पानी उसके अंदर गया होगा, लेकिन उतने से ही उसके कंठ में कहीं से बल आ गया। उसकी उँगलियाँ कुछ सगबगायी। मैं उसके बगल में बैठकर उसका हाथ सहलाने लगा। आखरी बार उसके मुँह पर जैसे पुरानी हँसी की लौ छिटकी। उसने टुकड़े–टुकड़े शब्दों में कहा, " ..... मैं भी लड़का होती तो भाग जाती ..... ।" इतना बोलने के साथ जाने कहाँ से उसके हाथ में उतनी ताकत आ गयी, उसने मेरा हाथ बकोट लिया और बोली, " ..... तुम एक काम जरूर करना ..... कोई ऐसा काम ..... जिससे लड़कियाँ मजबूत हों .....।" इतनी बात वह बहुत कष्ट और समय लगाकर बोल पायी। मैंने उसका हाथ अपनी छाती पर सटाकर उसे पूरा भरोसा दिलाया और फिर हाथ को सम्हालकर उसके पेट पर रख दिया। तभी मैंने देखा, उसका शरीर काँपने लगा था। मैंने उसकी बहन को बुलाया। उसकी बहन ने आते ही मुझे चले जाने को कहा। वह शनिवार था। सोमवार को जब स्कुल गए तो जगिया ने बताया, तबस्सुम चली गयी .....।"

मैं कई वर्षों के बाद उस घटना को दुहराकर दुःख के जिस भँवर में फँस गया था उससे उबरने का एक ही तरीका था, वहाँ से उठकर अपने एकांत में चला जाना। मैं बिना कुछ और बोले वहाँ से विदा हो गया।

पिछली रात तबस्सुम की चर्चा से मन बिलकुल डँवा गया था। बहुत देर तक बिछावन पर यूँ ही बैठे–बैठे जांघ झुनझुनाने लगा। हार–दारकर स्टूल पर झँपकर रखा भोजन आगे में रखा। ऊपर वाली जली रोटी ठंढाकर टॉठ हो गयी थी। रोटी को तोड़ते हुए तबस्सुम की पपड़ी बने ठोर याद आ गए। लगा जैसे उसकी आधी खुली पथराई आँखें चीनीमिट्टी के उस प्लेट के खाली भाग में टिमटिमाने लगी थीं। एक टीस कंठ से ससरकर पेट की ओर बढ़ी। मन ओकियाने लगा। भोजन को ढँककर रख दिए और दो घूँट पानी पीकर कंबल में छिप गया। उसकी चुँधुआयी आँखों का सामना करने का साहस मुझमें नहीं था। किस मुँह से मैं उसका सामना करता? कहते हैं कि दुश्मन भी अगर मरते समय किसी बात का बकारा दे तो उसे जरूर पूरा कर देना चाहिए। कहने के लिए तो मैं उसका दोस्त था, मैंने उसकी अंतिम इच्छा के मद में अब तक क्या किया? कभी अगर पलटकर विचार भी किए रहते तो मान सकते थे कि कुछ सोच रहे हैं। कौन सा ऐसा काम मैंने अब तक किया जिससे समाज की लड़कियाँ मजबूत हो पातीं? अभी भी समाज में स्त्रियाँ वैसी ही अबला और उपेक्षित हैं। वे अभी भी पीड़ित हैं, उनका सामाजिक मूल्य पुरुषों की तुलना में बहुत नीचे है। जिस दुःख से तबस्सुम मरी, वह हालत आज भी समाज में बनी हुई ही है। इससे आगे मैं कभी कुछ सोच नहीं पाता था। उस अपराध–बोध से बचने के लिए मैं और भी घोकड़ियाकर कंबल में दुबक गया।

रात में बहुत देर से सोने के कारण सुबह में दिन निकलने के बाद ही आँख खुली। कितने दिनों के बाद आज सूर्य बाहर निकला था। नदी किनारे कुहासा कहीं गाढ़ा तो कहीं पतला था। गाढ़े–पतले कुहासे की चादर पर पड़ती सूर्य की किरणें एक अजीब तरह की बिच्छिति बना रही थी; मुझे लगा कि नदी के पार जाने के लिए कोई पहाड़ी सीढ़ी खड़ी हो गयी है। इधर कुछ दिनों से मेरा काम पिछुआ गया था। मन अभी भी खुलासा नहीं हुआ था, बार–बार ध्यान तबस्सुम की ओर खिंच जाता था। सोचा कि पिछुआए काम को निपटाने में दिमाग लगा लेता हूँ। इससे काम भी पूरा हो जाएगा और दिमाग भी मुक्त हो जाएगा। यही सोचकर मन को काम में एकाग्र किया और निपटाकर ही उठा।

दिन में खा–पीकर थोड़ी देर आराम किया और चार बजे से कुछ पहले ही बासमती के यहाँ चला गया। लगा जैसे वह भी सोकर उठी थी, मगर उसका मन बिथका हुआ लग रहा था। मुझे देखकर भी वह वैसा उत्साहित नहीं लग रही थी जैसा पहले हो जाती थी। मैंने पूछा, "कुछ होता है क्या?" उसने बेमन से कहा, "ठीक हो जाएगा ..... ।" मैंने फिर कहा, "बताइए न ..... क्या होता है?" उसने अपनी साड़ी पर सतर्क दृष्टि डालते हुए कहा, "कहने वाली बात नहीं है ..... ।" तभी मेरी नजर बिछौने की चादर पर गयी। उस पर खून का दाग लगा था। अब मुझे समझने में कोई दिक्कत नहीं थी। वह मासिक धर्म में थी। मैं बिना कुछ बोले पलटकर बाहर आया और चलकर अपनी कोठरी में आ गया। मुझे अपने ससुराल में देखी एक घटना याद आ गयी। जितवारपुर से सटी एक दलित बस्ती है, सेरमा टोल। वहाँ खतबे जाति के लोग रहते हैं। वे लोग अपने को दुसाध–मुसहर से परिष्कृत जाति मानते हैं। जो हो, वहाँ से दो–तीन लड़कियाँ मुझे देखने आयी हुई थीं। गाँव–देहात में पहले के समय में सभी जाति की स्त्रियाँ नए दामाद को देखने जाती थीं, दुलहा कैसा है! उनमें से एक लड़की को महीना हो रहा था। हो सकता है, उसने भीतर में कपड़ा नहीं बाँधा हो, सो मरे हुए शोणित का एक थक्का कभी जमीन पर गिर गया जिसे उस लड़की ने दूसरों की नजर बचाकर पैर से लेभरा दिया। ऐसा करते समय मेरी सालियों ने देख लिया और उसे बहुत बुरा–भला कहा।

वह लड़की चुपचाप सब सुनती रही और एक ही बात बोलकर आँगन से निकल गयी, "..... तुम लोग जितना कपड़ा रहेगा तब न गे ..... !"

मैंने सोचा, बालमती को भी अगर इतना कपड़ा नहीं हो तब तो उसकी देह में भी यह खून लेभराता होगा ..... इसीलिए तो बिछौने की चादर में लग गया था। पहली बार मैंने मान लिया कि वह मेरी साथी है, जैसी जगिया और तबस्सुम थी। इसकी सहायता जरूर करनी चाहिए। उस समय मेरे पास ऐसा कोई कपड़ा तो नहीं था जो मैं उसे देता, लेकिन एक पुरानी धोती थी जिसमें एक जगह खोंच लग गया था। वैसे भी मैं धोती को दुहराकर लुंगी की तरह ही इस्तेमाल करता था। मन में सोचा कि वह धोती उसे दे दूँ। फिर लगा कि उस काम के लिए वह इतनी बड़ी धोती को फाड़ने का साहस नहीं कर पाएगी। दूसरी बात कि वह धोती के टुकड़े किस चीज से करेगी? उसके पास ऐसा कोई औजार तो होगा नहीं। यही सोचकर दाढ़ी बनाने वाले अपने रेजर–ब्लेड की बगुली से छोटी कैंची निकाले और धोती का खंड–प्रखंड करते हुए कुछ चौड़ी और कुछ कम चौड़ी पट्टी जैसा काटा। असल में मैं यह नहीं जानता था कि उस काम की पट्टी कैसी होती है। जब मैं दरभंगा से वापस आ रहा था तो लाइफबॉय साबुन की चार टिकिया भी खरीद लिया था, नेपाल में यह साबुन मँहगा था। दो साबुन उसके लिए ले लिया। इतनी चीज को एक अखबार में लपेट लिए और देह पर चादर रखकर उसमें सामान छिपाते हुए उसके पास आ गए। वह तब भी बिछावन पर ही बैठी थी।

मैं उसके सामने आया तो वह सकपकाते हुए बोली, "मैं सोच रही थी कि आप वैसे ही घूमकर चले गए ..... बैठिए न!" मैंने कहा, "मैं आधे घंटे में वापस आ रहा हूँ तब बैठूँगा ..... आप ये कपड़े और साबुन लीजिए और बढ़िया से साफ–सफाई रखिए। इसमें लजाने वाली कोई बात नहीं होती है ..... ।"

वहाँ से निकलकर मैं चलता रहा। आधे–पौन घंटे का समय मुझे इधर–उधर घूमकर बिताना था। इतनी देर में वह ठीक से साफ–सफाई कर लेगी, तब जाना ठीक रहेगा। चलते–चलते मेरे मन में प्रश्न उठा, मैं यह क्या कर रहा हूँ? क्या, किसी जवान लड़की के साथ मुझे ऐसा व्यवहार करना चाहिए? वैसे तो सेक्स से जुड़ी कई तरह की बातें मैं उसके साथ कर ही लेता हूँ लेकिन यह तो बात से बढ़कर एक व्यवहार है। इसका माने क्या समझें? मैं कहीं सीमा से फाजिल तो नहीं जा रहा हूँ? फाजिल क्यों जाएंगे? ऐसे ही फाजिल चले जाएंगे? अगर ऐसी कोई बात मन में रहती तो पहले ही गड़बड़ा गया रहता! कई बार ऐसा हो चुका है कि मेरे मन में दूसरे तरह की बात पल भर के लिए आयी, लेकिन चली भी गयी। जब खुद ही विचार कर रहे हैं तो ईमानदारी से विचार करना चाहिए। अपने मन से भी बेईमानी ही करेंगे तब विचारने से फायदा क्या हुआ? नहीं नहीं, बेईमानी क्यों करेंगे? मेरी ऐसी आदत भी नहीं है! दूसरा ही दिन हुआ था उसके यहाँ गए हुए, जब उसके ऊपर वाला वह देखार हो गया, मैंने देख लिया था। इतना सुंदर वह चीज मैंने कभी नहीं देखी थी। इसको कहते हैं सुंदर। जैसे ज्वालामुखी का कोई बच्चा पहाड़ धरती को फोड़कर अँकुरा रहा हो, धैर बाँधे; फुलगोभी के टुस्सा जैसी ऊपरवाली थोपी तो वैसी ही लग रही थी; जैसे पहाड़ की नोकी अपना कलिछौंह मुँह अलगा रही हो; एक धारी कलिछौंह पट्टी, उस पर ललोन ठोप; नोकीला और तिक्ख। मुझे लगा जैसे उस ठोप का नाभिकेंद्र किसी तुरत बुझी ढिबरी की दहकती फुलिया जैसी थी। इतना सुंदर तो विद्यापति की वयःसंधि वाली नायिकाओं का भी नहीं होता है। जयदेव की नायिकाओं का तो सहज ही बहुत बड़ा–बड़ा होता है। खैर, वह सब तो भगवान की सुंदरियाँ हैं तो उनके सभी कुछ बड़े होंगे ही। लेकिन मैं जिस चीज की बात सोच रहा हूँ, उसका माप करना बहुत मुश्किल है। सबसे मुश्किल बात तो

यह है कि याद आने पर अगर कभी उस चीज के आकार–प्रकार का कनकुत करना चाहता हूं तो वह छवि उकेरना कठिन हो जाता है। कितने वर्षों के बाद आज जब उस घटना को याद कर रहा हूं तो संयोग से अनमन वैसी ही छवि सामने में उभरने लगी है। अब केवल विचार की पद्धति थोड़ी चौड़ी हो गयी है। अब लगता है जैसे खड़ी हालत में दोनों की नोकी उत्तर–दक्षिण दिशा में भागना चाह रही है, जबकि सोयी हालत में इनका लक्ष्य अंतरिक्ष रहता होगा; जैसे श्रीयंत्र का कोई त्रिभुज उलटकर कलेजे में सट गया हो।

तंत्र में इच्छा की उत्पत्ति की बहुत सुंदर व्याख्या की गयी है। तंत्र प्रकाश और विमर्श के दुहरे संतुलन में परमात्मा की परिकल्पना करता है। इन्द्रियातीत स्वयंभू रूप में परमात्मा मूलभूत प्रभा, प्रकाश होता है। जब वह अपने आपको प्रकट करने के लिए प्रेरित करता है तब स्वयं उसमें एक विमर्श उत्पन्न होता है। यही विमर्श एक प्रकार की हलचल, आवेग, एक तरह की लालसा अथवा इच्छा का रूप लेता है; यही इच्छा काम है। किसी जीव में आभ्यांतरिक विभाजन से अंशरूप में इच्छा घटित होती है। इच्छा के इसी अंश या अंकीय अनुपात को कला कहा गया है। परमात्म–इच्छा का यही अंश, कामकला, तंत्र की सर्वोच्च देवी त्रिपुरसुंदरी है, दशमहाविद्या की तीसरी शक्ति। 'कामस्तदये समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथम यदासीत' : (ऋग्वेद) : 'वह (काम) सब से पहले उसके (परमात्मा के) अंतस् में इच्छारूप में संचरित हुआ, जो मन का आद्य बीज था। 'सो कामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति' : 'उसने (परमात्मा) इच्छा की, प्रजा की उत्पत्ति के लिए हम बहुविध रूप हो जाएं।' ऐसा उपनिषद (तैत्तिरीय) कहता है। इच्छा ही तो सृष्टि का रहस्य है, आविर्भाव का मूल है, अस्तित्व का मूलाधार है। तांत्रिक विद्वानों की व्याख्या में सृष्टि को आद्य इच्छा का मनोवेग या अंतःप्रेरणा कहा गया है जो स्पंदन रूप में घटित होता है, एक कंपन, नाद, जो अपने आपको एक बिंदु में संकेन्द्रित करता है। उस संकेन्द्रन से त्रिकोणाकार तीन बिंदु बनते हैं, योनि, जो सभी तरह के प्रकटीकरण का मूल स्रोत है। ईश्वर जब अपने आपको प्रकट करने की इच्छा करता है तब वह तत्क्षण अपनी ओर देखता है; उपनिषद कहता है, 'तदैक्षत, उसने देखा।' ईश्वर का यही अवबोधन आकाश रूप में उसके विस्तार का कारण बनता है; नाम और आकार की एक संज्ञा बनती है और तभी दृष्टि से सृष्टि प्रारंभ हो जाती है; तंत्र में 'दृष्टि से सृष्टि' का यही सिद्धांत बताया गया है। कौन ऐसा है जो नहीं देखता है अथवा देखने की इच्छा नहीं करता है? मैंने जो देख लिया तो कौन अंधेर कर दिया?

सोचने का क्रम तब बंद हुआ जब मैं सियाराम की दुकान के पास पहुँच गया। वहीं जलेबी छनाते देखकर मन में आया कि थोड़ा खरीद लें और बासमती के साथ ही खाएँ। आधा सेर जलेबी और थोड़ी पकौड़ी खरीदकर एक ठोंगे में रखवाया और झटपट विदा हो गया। मन में आया कि अपने ऑफिस के पास अगर कोई देख लेगा तो थोड़ी देर के लिए वहाँ चला जाउंगा और यदि कोई नहीं देखेगा तो सीधे चलता रहूँगा। अच्छा हुआ कि किसी ने देखा नहीं। बासमती के पास पहुँचे तो वह एकदम चुस्त–दुरुस्त लगी। जाते ही उसे एक थाली लाने के लिए कहा। जब वह थाली ले आयी तो हाथ में ठोंगा पकड़ा दिया। उसने अखबार का एक पन्ना बिछावन पर रखा और उस पर थाली डालकर थोड़ा–थोड़ा दोनों सामान निकाल लिया। मैं जब उसके आमने–सामने बैठ गया तो उसके दमकते हुए चेहरे को देखकर वह सब मन में कौंध गया जो कुछ देर पहले तक उसके बारे में मैं सोच रहा था। उस समय वह भी मन ही मन किसी बात पर अंदर ही अंदर मुसकिया रही थी। मुस्की के उस कारण को छिपाने के लिए उसने मेरे मुँह में जलेबी का एक टुकड़ा रख दिया। मैंने भी उसके मुँह में एक ठो रख दिया। जलेबी बहुत मजेदार थी। कुछ देर तक मीठी जलेबी पर नमकीन पकौड़ी का आस्वादन चलता रहा। सहसा थोड़ा गंभीर होते हुए वह बोली, "रात तो ऐसी

दुखद घटना की चर्चा हो गयी कि आप दुखी मन से ही चले गए। मैं सोचती रही कि वैसे मन में आप खाए भी नहीं होंगे।''

''आपने ठीक ही सोचा। जब मेरा मन दुखी रहता है, मैं खाना नहीं खाता हूँ।''

''सो क्यों? तब तो मन के दुख के साथ पेट का दुख भी हो गया।''

''मैं समझता हूँ कि जब मन दुःखी रहता है तब शरीर की मशीन भी ठीक से काम नहीं करती होगी। इसीलिए दुखी मन में खाना खाने से नुकशान ही हो सकता है। अपनी–अपनी सोच है। मैं ऐसा करने से ही स्वस्थ रहता हूँ। मेरे पिताजी कहते हैं कि कुछ लोग जीने के लिए खाते हैं जबकि ज्यादा लोग खाने के लिए जीते हैं।''

''बाबूजी तो ज्ञान की बात बता रहे हैं, लेकिन मैं जितने लोगों को जानती हूँ वे सब खाने के बिना ही मर जाते हैं। कहता है कि जिसके नसीब में जो रहता है सो भोगना ही पड़ता है।''

''देखिए, आपने नसीब वाली जो बात कही है वही बात ज्यादा लोग समझते हैं, क्योंकि यही उनको सिखाया गया है। यह वैसी ही बात है जैसी पंडितजी बोलते हैं। इस विचार से गरीबों की हालत कभी नहीं बदल सकती है। यदि यह बात मान लें तब तो यह भी मानना पड़ेगा कि कोई अपने नसीब के कारण ही ऊँचे या धनी घर में जन्म लेता है और कोई बुरे नसीब के कारण गरीब या छोटी जाति में जन्म लेता है। तब जगजीवन राम इतने बड़े मिनिस्टर कैसे हो गए? वह भी तो हरिजन हैं। अब कभी उनके घर में गरीब या छोटा आदमी पैदा नहीं होगा। उनके मुकाबले में तो बड़े–बड़े लोग खड़े नहीं हो पाते हैं। उनका नसीब कैसे अच्छा हो गया? जगजीवन बाबू का नाम सुने हैं?

बासमती को यह नाम सुना हुआ था, ''उनका नाम तो सुने हुए हैं लेकिन जादा बात नहीं जानती हूँ। लोग कहते हैं कि वह चमार जाति के हैं मगर सरकार चलाते हैं।''

''यही समझिए..... उनको सभी लोग 'बाबूजी' कहते हैं। वे पुरानी बात को बिसारकर आगे बढ़े तो मौका हाथ लग गया और बढ़ते–बढ़ते इतने बड़े हो गए। ..... यह बात आप ठीक से समझ लीजिए कि ऐसा कोई भगवान नहीं होता है जो स्वर्ग में बैठकर लोगों का भाग्य–नसीब लिखता हो। यहाँ की हालत उस समय से खराब हो गयी जब बाहर से आने वाले लोगों ने युद्ध में जीतकर यहाँ के लोगों को गुलाम बना लिया और जाति–पाँति के नियम बनाकर अपने लोगों को श्रेष्ठ और बाँकी लोगों को वैश्य–शूद्र कहने लगे। यह बात सभी पिछड़े लोगों को जान लेना चाहिए कि जाति के आधार पर कोई किसी से ऊँचा या नीचा नहीं होता है; अगर किसी ने कभी यह नियम बनाया था, उसे मानना आज जरूरी नहीं है। जाति के आधार पर ऊँच–नीच का भेद किसी के नसीब के कारण नहीं बल्कि राजनीतिक परिस्थिति का परिणाम है। मैं तो बार–बार कह रहा हूँ कि करीब चार हजार वर्ष पहले बाहर से आए कुछ ताकतवर लोग यहाँ के लोगों को हराकर, उनको नीच कहकर उनकी धन–संपदा का हरण कर लिया, उनकी स्वतंत्रता छीन ली, पढ़ाई–लिखाई पर रोक लगा दी और चाबुक मार–मारकर उनसे काम कराता रहा, जैसे बैल को चाबुक मारकर बहलमान गाड़ी खिंचवाता है। अब समय आने पर आपको भी बच्चा होगा, उसका भाग्य–नसीब आप लिखिएगा। अगर उसका पालन ढंग से कीजिएगा, अच्छी पढ़ाई कराइएगा तो उसका भाग्य भी अच्छा होगा। लेकिन अपने समाज से

जाति–पाँति के आधार पर लगी ऊँच–नीच की बीमारी आसानी से जाने वाली नहीं है। जब तक अन्याय पर आधारित यहाँ के धार्मिक किस्से और उन किस्सों के पेट से जन्मे झूठे कर्म–काण्ड वाले पोथी–पतरा को समेटकर गंगाजी में फेंक नहीं दिया जाएगा, ऐसी हालत बनी ही रहेगी।"

बात में लग जाने के कारण हाथ धोना भूल गए थे। जलेबी का रस अभी भी उँगलियों को लसफसा रहा था। उसे भी थाली धोना था। पानी माँगे। कुल्ला किए और पेशाब करने के लिए बाहर निकल आए। उधर से आकर जब बैठे तो बासमती ने ऐसा प्रसंग चला दिया जिस पर पहले कभी मैंने विचार नहीं किया था। उसने कहा, "तबस्सुम के बारे में जानकर बहुत दुःख हुआ.... अब वह लौटकर तो नहीं आएगी, लेकिन उसने आखरी समय में आपसे जो कहा उस पर जरूर विचार करना चाहिए।"

इतनी बात बोलकर बासमती मेरे मुँह पर ताकने लगी। यह सच है कि मैंने तबस्सुम से वादा तो कर लिया था लेकिन इस विषय पर पहले कभी सोचा तक नहीं था। वैसे जगिया से इस बात की चर्चा तो कई बार हुई, लेकिन ऐसा क्या किया जाए कि लड़कियों का सशक्तिकरण हो, यह हमारी समझ में नहीं आ रहा था। लगभग दस वर्षों के बाद अब जब बासमती ने इस विषय पर टोका तो मेरा सिर अपराध–बोध से झुक गया। मैंने कहा, "आज से पहले मैं इस पर विचार करने के लिए तैयार नहीं हुआ, लेकिन असली बात यह है कि इस विषय को मैं इतना भारी मान रहा था कि उस पर सोचने का साहस ही नहीं हुआ। अब अगर दो आदमी मिलकर विचारेंगे तो हो सकता है कि कुछ समझ भी बने और धीरे–धीरे कोई उपाय भी नजर आ जाए। समाज में किसी तरह का बदलाव जो आता है, उसकी जड़ में विचार–पद्धति होती है। विचार करने वाले कार्यकर्ता किसी समस्या को जिस रूप में पहचान पाते हैं, निदान के उपाय भी उसी तरह के होते हैं।"

मेरी कुछ बात वह समझी और शायद कुछ नहीं समझी। उसने कहा, "इतना तो मैं समझ रही हूँ कि आखिर बिचार करने पर ही कोई उपाय मिलता है, लेकिन आप आखरी बात जो बतलाए, सो मैं ठीक से नहीं समझी ..... ।"

"देखिए ..... अपने पास से ही बात उठाइए ..... आप अभी मासिकचक्र में हैं। पूरे संसार में जितनी औरतें हैं, सबको यह मासिकचक्र होता है। इसको मासिकधर्म भी कहा जाता है जो चार–पाँच दिनों का होता है। जब कोई लड़की जवान होने लगती है उसी समय यह चक्र शुरू हो जाता है। इसी चक्र के नियमित रहने पर वह माँ बन पाती है। इस चक्र का महीना तीस दिनों का नहीं, अठाइस दिनों का होता है और चार दिनों के बाद वाले समय को ऋतुकाल या ऋतुचक्र कहा जाता है।"

उसने बीच में ही टोक दिया, "ऋतुचक्र माने क्या होता है?"

"ऋतु का दो ठो माने होता है ..... ऋतु माने मौसम भी होता है, जैसे गरमी, जाड़ा, बरसात और चार दिन के मासिकचक्र के बाद अगले बारह दिन के समय को भी ऋतुचक्र या ऋतुकाल कहा जाता है। जानने वाले लोग कहते हैं कि ऋतुकाल में अगर स्त्री–पुरुष सेक्स करते हैं तो गर्भ ठहरने की संभावना अधिक रहती है।"

मैंने बातचीत के क्रम में अंगरेजी का एक शब्द 'सेक्स' जो बोल दिया, सो वह नहीं समझी। उसने तुरत टोका, "आपने ऊ क्या कह दिया ..... सिक्स करता है ..... सो नहीं समझे ..... ।"

मुझे हँसी लग गयी। मैंने कहा, "आपने तो गिनती में जो वन–टू–थ्री–फोर–फाइव–सिक्स होता है, सो समझ गयीं ..... सिक्स माने तो छः होता है, लेकिन मैंने सेक्स कहा है। यह भी अंगरेजी का शब्द है। इस शब्द का भी दो ठो माने होता है। एक ठो माने होता है 'लिंग', जैसे कि कोई आदमी स्त्री है या पुरुष ..... मान लीजिए कि आप किसी तरह का सरकारी फारम भरिएगा या स्कूल में नाम लिखाने जाइएगा तो लिखना पड़ेगा कि आपका लिंग क्या है ..... माने आपका सेक्स क्या है ..... आप स्त्री हैं या पुरुष। लेकिन बातचीत में जब 'सेक्स' बोलते हैं तो इसका माने हुआ स्त्री–पुरुष का संभोग करना, जैसा आपकी दीदी ने पुजारीजी और डोमिन लड़की वाले किस्सा में बताया था। असल में मुझे आपसे ऐसी बात करने में संकोच हो रहा था, इसीलिए अंगरेजी में कह दिए। एक बार आपने बताया था कि 'मतनी हाथी' लोक को मता देता है ..... वही हुआ सेक्स का भाव जगाना ..... आनंद के लिए चाहे बच्चा पैदा करने के लिए स्त्री–पुरुष का खेल ..... ।"

इतना फरचाकर कहने से बासमती सभी बात ठीक से समझती जा रही थी। उसने पहले वाली बात याद कराते हुए कहा, "यह बात मैं समझ गयी ..... अब वह बात बताइए जिस पर चर्चा शुरू हुई थी ..... तबस्सुम वाली बात ..... ।"

"बात के विषय तो बहुत हैं ....., बहुत बात तो ऐसी है जिस पर पहली बार मैं किसी के साथ बतिया रहा हूँ। तबस्सुम ऋतुचक्र वाली बात नहीं जानती थी। उसको अगर इसका ज्ञान रहता तो हो सकता है कि वह उतने संकट में नहीं फँसती और जान नहीं गँवाना पड़ता।"

"आप उस समय यह बात सब समझते थे?"

"मैं तो और भी भोंदू था..... खासकर लड़कियों के मामले में। मैं तो यह भी नहीं जानता था कि बारह–तेरह साल की उमर से ही किसी लड़की का मासिकधर्म शुरू हो जाता है। यह चक्र स्त्री जाति को मिला हुआ ऐसा प्राकृतिक वरदान है जो उसे माता बनाता है, लेकिन जगिया इस विषय को बढ़िया से जानती–समझती थी।"

"आपको उसीने सिखाया?"

"बात हुई कि तबस्सुम के मरने के बाद मैं बहुत उदास रहने लगा। किसी काम में मन नहीं लगता था। हमेशा लगता था कि वह मेरे सामने पड़ी है और पानी माँग रही है। मरने से कुछ ही घंटे पहले मैं उससे मिला था। जो लड़की एक महीना पहले तक पूरा स्वस्थ और चुलबुल थी, उसको मरनासन्न हालत में देखकर पहले तो मैं अचंभित ही हुआ था, दो दिन बाद जब मुझे यह पता लगा कि मेरे मिलने के कुछ ही घंटे बाद वह मर भी गयी तो मैं विकल हो उठा। मैं समझ नहीं पा रहा था कि वह उस हालत में कैसे पहुँची। मैं जब जगिया से पूछता था तो वह एक ही बात बोलती थी, " ..... तुम नहीं समझोगे..... यह लड़की वाली बात है।" ऐसे जवाब से मेरा दुख और बढ़ जाता था। स्कूल में बतियाने का पूरा समय नहीं मिलता था कि मैं जिद भी करता। आखिर मेरे मन में आया कि जब मैं लड़कियों के बारे में समझ ही नहीं सकता हूँ तो किसी लड़की के पीछे क्यों लगा रहूँ? ऐसा सोचने के बाद मैं जगिया से कटा–कटा रहने लगा। मैंने उसे लगभग टोकना भी बंद कर दिया। एक दिन उसने कहा, "स्कूल में उतना बताने का समय नहीं रहता है..... अगर मेरे घर चलोगे तो जरूर बता सकती हूँ।" मुझे उस रहस्य को जानने की उत्सुकता थी, इसलिए मैंने

उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उसने अपने घर में मेरे बारे में बता रखा था। मैंने उसे जो परीक्षा में मदद की थी, वह बात भी उसने अपनी दादी को बताया था। जगिया अपने परिवार के बारे में भी मुझे बताती रहती थी। उसके माता–पिता व्यापार करते थे। उसकी दादी पहले शिक्षिका थी। रिटायर होने के बाद दादी अपने पेंसन वाले रुपए से सामाजिक सेवा के काम करने लगी। उसने बहुत सारे परिवारों को मिलाकर एक 'महिला–मंडल' बनाया था। महिला–मंडल स्त्रियों के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा से संबंधित बहुत तरह के काम करता था। वह लोगों से पुराने कपड़े माँगकर जमा करती थी और उन स्त्रियों या बच्चों को देती थी जिनको कपड़े का अभाव रहता था। उनके पास दो सिलाई मशीन भी थी। जो कपडा पहनने लायक नहीं होता था उसे काट–छाँटकर औरतों के लिए पट्टी बना लिया जाता था। महिला–मंडल की बैठक हर रविवार को होती थी। उसी दिन कपड़े भी जमा होते थे और बँटते भी थे। उस दिन कभी–कभी कोई डाक्टर या जानकार महिला कुछ खास बात बताने आती थी। जगिया भी उस मंडली की सदस्य थी और दादी के काम में सहायता करती थी। उसका घर दारूभट्ठी महल्ला में था। हमलोगों में तय हुआ कि मैं दस बजे दारूभट्ठी चौक पर पहुँच जाउंगा और वहाँ से जगिया मुझे अपने घर ले जाएगी।"

"उन दिनों मैं हाफपैंट और बुशसर्ट पहनता था। घड़ी तो मेरे पास नहीं थी, लेकिन पता था कि वहाँ तक जाने में आधा घंटा लगता है। मैं अपने अंदाजे से उसी हिसाब से बिदा हुआ। जब घर से बिदा हुए उस समय मेघ लगा हुआ था, लेकिन लगता नहीं था कि बरखा होगी। अपने गाँव के चौक से जब आगे बढ़े कि मेघ का एक टिक्कड़ तड़तड़ाकर बरस गया और दो मिनट में ही बुनछेक हो गया। हमारे गाँव के चौक से लहेरिया सराय की ओर बढ़ने पर, उस जमाने में जेल कोना तक कहीं कोई घर नहीं था। बहुत दूर तक तो दोबगली ताड़ के पेड़ थे। मैं आगे बढ़ा तो फिर पानी बरसने लगा। इस बार वर्षा खूब जोरदार थी। भागकर जाने की कोई जगह तो थी नहीं, मन में सोचे कि जब भींग ही गए हैं तो भागने से फायदा ही क्या होगा? कपड़े तो तरबतर हो ही गए थे, दिक्कत यह थी कि मेरे पैर में चप्पल बड़े साइज के थे। चप्पल से उठने वाला छींटा पैर से लेकर गरदन और सिर तक किचड़ा दिया। कादो–पानी से लथपथ जब मैं पीच रोड पर पहुँचा तो जगिया पहले से वहाँ खड़ी थी। उसे मेरी दशा देखकर दुख हुआ, लेकिन उस उमर की बात ही कुछ और होती है; आखिर किसी हाल में मिलने की खुशी भी तो दोनों को थी! उसका घर चौक से नजदीक ही था।"

"घर पहुँचने पर जगिया मुझे पहले दादी के पास ले गयी। उसकी अँगोट दादी जैसी ही थी, वैसी ही सुंदर। मैंने दादी के पैर छुए। दादी ने दुलार से आशिष और जगिया को एक साथ कई आदेश दिया; इसे दूसरे कपड़े दो, नहाने का इंतजाम कर दो, कपड़े धूप में डाल दो। जगिया मुझे छत पर वाली अपनी कोठरी में ले गयी और मुझे तौलिया देकर मेरे कपड़ों को पानी में खँगालने के बाद धूप में डाल दिया। इसके बाद वह मुझे स्नानघर में ले गयी। मैंने पहली बार वैसा सुसज्जित बाथरूम देखा था। उसमें तीन–चार नल लगे थे। उसने बारी–बारी से सभी नल खोलकर दिखला दिया और रहस्यमय ढंग से मुस्कुराते हुए कहा, "तुम जो बीच–बीच में मुझे टोकना बंद कर देते हो उससे मुझे कितनी तकलीफ होती है, सो तुम जानते हो....? अब बताओ.... मैं क्या करूँ?" इतना बोलकर उसने मुझे चूम लिया। उसके चुंबन मे क्या था कि मैं सिहर उठा।

"मैंने जब नहा–धो लिया तब तक मेरे कपडे धूप में सूख गए थे। अपने कपड़े पहनकर मैं जगिया के कमरे में आया। उसने अपनी कंघी से मेरा केस फेर दिया और वहीं बिछावन पर आराम करने को कहकर

बाहर चली गयी। बरखा में भींगने के बाद फिर से स्नान करने पर शरीर इतना हल्का हो गया था कि बिछावन पर पड़ते ही नींद आ गयी। कुछ देर आँख लगी होगी कि जगिया और उसकी नौकरानी ढेर सारा भोजन लेकर आ गयी। दोनों खा भी रहे थे और बतिया भी रहे थे। भोजन के बाद जगिया मुझे लेकर दादी के पास आ गयी।"

"दादी के बरामदे पर करीब बीस–पचीस स्त्रियाँ और लड़कियाँ बैठी हुई थीं। दादी बाहर से आयी एक महिला के साथ बतिया रही थी। उस महिला के आगे में एक टो आला रखा हुआ था जिससे मुझे लगा कि वह डाक्टरनी थी। जगिया ने झुंड से थोड़ा अलग एक कुरसी मेरे लिए रख दी और दादी के पास चली गयी। कुछ देर के बाद जगिया एक रजिस्टर पर आयी हुई औरतों से दसखत करवा रही थी। मैंने गौर किया कि बहुत महिलाओं को अपने नाम लिखने में कठिनाई हो रही थी। कुछ तो बिलकुल निरक्षर थीं। इसके बाद दादी ने उस दिन की विशेष वक्ता से लोगों का परिचय कराया। वह महिला दरभंगा मेडिकल कॉलेज में पढ़ाती थी। डाक्टरनी ने स्त्री और बच्चों के स्वास्थ्य से संबंधित बहुत बातें कही लेकिन उनका अधिक जोर व्यक्तिगत सफाई और स्त्रियों के मासिकधर्म पर था। उनकी बहुत बातें अब याद नहीं है, लेकिन जो कुछ आज भी याद है वह पहली बार मैंने सुना था।"

"डाक्टरनी ने बताया कि स्त्रियों को अगर मासिकधर्म या महिनवारी नहीं होता तो यह संसार नहीं होता। महिनवारी होने के कारण सभी मास में स्त्रियों के शरीर से गंदा खून बाहर निकल जाता है और वह इतना ताजा हो जाती है कि अपने गर्भ में बीआ को अँकुराकर नौ मास तक उसका पोषण करती है और समय आने पर बच्चा के रूप में उसे जन्म देती है। लेकिन इसी मासिकधर्म के कारण हिंदू धर्मशास्त्र स्त्रियों को 'पापयोनि' कहकर तिरष्कार करता है। पहले के समय में स्त्रियाँ इस समय में केवल एक वस्त्र पहनती थीं। महाभारत की कथा में कहा गया है कि कौरवों के साथ जुआ खेलते हुए पांडव अपना सब कुछ हार गए, यहाँ तक कि पाँच भाइयों की साझा पत्नी द्रौपदी को भी धन मानकर हार गए। जुआ में द्रौपदी को जीतने के बाद दुर्योधन उसे एकांत कक्ष से घसीटकर सभा में ले आया। उस समय मासिकधर्म में रहने के कारण वह एकवस्त्रा थी। आज–कल भी गाँव–देहात में ऐसा ही नियम चल रहा है। देहाती स्त्रियाँ कपड़े का बिना सिला टुकड़ा, तहवन लगा लेती हैं, लेकिन कोई पट्टी जैसी चीज नहीं बाँधती हैं। उनकी सोच यह है कि पट्टी लगाने से खून का बहाव बाधित हो जाएगा, लेकिन यह बात सही नहीं है। खून को जितना निकलना रहता है वह निकल ही जाता है, तब पट्टी लगाने से खून जांघ में लेमराता नहीं है और जहाँ–तहाँ गिरता नहीं है। ऐसे समय में जो स्त्री पट्टी नहीं लगाती हैं, वह गलत करती हैं। ऐसा करने से शरीर गन्हाने लगता है। ..... कृष्ण लीला की कथाओं से पता चलता है कि श्रीकृष्ण को स्त्रियाँ बहुत प्रिय थीं, लेकिन कृष्ण ने भी गीता में स्त्रियों को 'पापयोनि' कह दिया (यां हि पार्थ! व्यापाश्रित्य येंपिस्युः पाप योनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेंपियन्ति परां गतिम्। ..... हे अर्जुन, मेरी शरण में आकर स्त्री, वैश्य और शूद्र भी, जिनकी उत्पत्ति पाप से हुई है, परमगति प्राप्त करते हैं)। इस बात पर सफाई देते हुए डाक्टरनी ने अंत में कहा कि उन्हें हिंदू धर्मशास्त्रों का बहुत ज्ञान नहीं था लेकिन संभवतः मासिकधर्म के समय गंदगी का निवारण नहीं करने के कारण ही कृष्णजी ने स्त्रियों को पापयोनि कहा होगा।"

"डाक्टरनी ने और बहुत कुछ बताया और अंत में लड़कियों को मुफ्त में पट्टी देने के लिए दादी को बहुत धन्यवाद दिया। डाक्टरनी ने जब बोलना बंद किया तब दादी ने जगिया को एक बड़े डब्बे में रखी

पट्टियाँ बाँटने का इशारा किया। जब सभी औरतें चली गयीं तो दादी मुझे अपने पास बुलाकर बहुत बतियायी। उसने नौकरानी को मिठाई लाने को कहा। मिठाई खाने के बाद मुझे बिदा करने जगिया बहुत दूर तक साथ आयी, हमारे गाँव के सिवान तक।"

बासमती मेरी बात ध्यान से सुन रही थी। मैंने जब बोलना बंद कर दिया तब भी वह चुप ही थी। मुझे लगा कि वह किसी बात पर विचार कर रही है, ऐसे में उसे टोककर मैं बाधित नहीं करना चाहता था। मैं पेशाब करने बाहर चला गया। उधर से घुरा तब भी वह उसी तरह गुमसुम बैठी थी। मैंने पूछा, "मेरी बातों पर सोच रही हैं? मैंने कुछ अंडबंड कह दिया क्या?"

उसके जवाब में कोई उत्साह नहीं था, लेकिन मैं उसकी मनस्थिति समझ सकता था। उसने कहा, "आप जो भी बतलाते हैं वह मेरे लिए आँख खोलने वाली बात ही रहती है, बरु किसी चीज के बारे में आप बताएँ। अपने यहाँ तो औरत–मरद मिलकर ऐसे बतियाते भी नहीं हैं और किसी औरत को यह सब सोचना भी बुरा लगता है। उसे तो बस मरदों ने जो नियम बना दिया, वह ढोते रहना है। उसके शरीर का मालिक मरद होते हैं, वही उसके बारे में जो सोचेंगे सो सोचेंगे। अब किसी नियम के चलते ऊ मरे कि जिए..... ।" मुझे लगा, उसके मुँह–माथ पर नैराश्य का दोरसा लेप चढ़ गया था। मैंने उसका हाथ पकड़कर आत्मीयता दिखलाते हुए पूछा, "कोई चिंता वाली बात हो गयी है क्या?"

उसने बुझे स्वर में कहा, "चिंता वाली बात क्या रहेगी..... हमारे जैसे लोगों की हालत बदलने वाली नहीं है। हमारे गाँव में मुसहरनी सब अँधरोखे सुबह में उठकर झुंड में गीत गाते, अलमुनिया का हँड़िया–तसला लेकर, चौर–चाँचर में घूमकर घोंघा–केंकरा जमा करती है ..... छाती भर पानी में डूबकर मलकोका–सारुख जमा करती है और चार–पाँच घंटा पानी–कादो में बीआने के बाद गीत गाते घर लौटती है। भींगा हुआ कपड़ा उसकी देह में ही सूख जाता है। एक ठो कहनी है, जो नंगे नहाएगा, वह पखारेगा क्या?..... उसको है ही कितनी साड़ी कि एक ठो को साफ करके सुखाएगी और दूसरी पहनेगी ..... जब चौर से लौटती है तो भुखाए बच्चे को दूध पिलाने बैठ जाती है..... बच्चा सरदियायी हुई गोद में मूत देता है वह भी साड़ी में ही सूख जाता है..... और अगर महिनवारी हो गया तो भी उसी साड़ी में किचाड़ होता रहता है। उसके घर में फटा–पुराना लत्ता आएगा कहाँ से जो वह पट्टी बाँधेगी? ऐसे लोग कहाँ से लायेंगे हरेक महीना में कपड़ा? सो अगर रहता तो उससे अँगी बनाकर नहीं पहन लेती? यह दिक्कत खाली दुसाधे–मुसहर को नहीं है..... गाँव–देहात में ऐसी हजारों लड़की–औरत हैं जिनकी हालत ऐसी ही है। कहता है कि सरकार गरीब और हरिजन सब को बहुत मदद करती है तो सरकार को ऐसी बात नहीं सूझती है? उसके पास इतना रुपया नहीं है जो गरीब औरतों को यह पट्टी देकर इज्जत बचावे?"

इतनी बात बोलकर बासमती चुप हो गयी। उसका मन बहुत बोझिल हो गया था। मैं अब वहाँ नहीं ठहर सकता था, बहुत देर हो गयी थी। मैं बिदा होने के लिए खड़ा हुआ तो वह भी मेरे साथ ही खड़ी हुई। मैंने उसकी ओर ताका तो लगा कि वह कुछ कहना चाहती थी। मैंने पूछा तो उसने बताया कि कल उसे कुछ मिठाई का काम पड़ेगा। जादा नहीं, चार ठो लड्डू। मुझे खुशी हुई कि पहली बार वह मुझे कुछ लाने को कह रही थी। दूसरी ओर मुझे आश्चर्य भी हो रहा था कि वह ऐसा कौन व्रत करती है कि पूजा के लिए उसे मिठाई चाहिए, मगर मैंने कुछ और नहीं पूछा। मुझे अच्छा लगा। मैं मुस्कुराते हुए विदा हो गया।

अगले दिन बासमती के यहाँ जाने से पहले सियाराम की दुकान से उसकी फरमाइश के आधा सेर लड्डू ले लिए। उस समय चार भी नहीं बजा था मगर जाड़े में तो चार बजे से ही झलमल शुरू हो जाता है और पाँच बजते–बजते तो एकदम अंधेरा हो जाता है। उसके आँगन में पहुँचे तो वहाँ चहल–पहल थी। रासबती टाँगी से जारन काट रही थी और उसके दोनों बच्चे झुनझुना वाले बैलून से खेल रहे थे, पिपही बजा रहे थे। मुझे लगा, कहीं मेला लगा होगा जहाँ से रासबती बच्चों के लिए ये खिलौने लायी होगी। मुझे देखकर वह बहुत खुश हुई और बैठने को कहा। मैंने मिठाई वाला ठोंगा बासमती को दे दिया, वह आँचल में झाँपकर कोठरी में रख आयी और मेरे बैठने के लिए एक चटगुनी (छोटी चटाई) ओसारे पर रखकर बहन के पास चली गयी। मैं जब आया उस समय भी दोनों बहन किसी घरेलू मसले पर खुसुर–फुसुर कर रही थी। मैं थोड़ी देर ही अकेले बैठा रहा होगा कि दोनों बहन जारन काट और समेटकर छितनी में रख लिया, बासमती छितनी उठाकर भनसाघर ले गयी। काज पुराने के बाद मन में फुरसत का भाव लिये रासबती ने एक ईंट पर पोन रोपते हुए कहा, "आपको देखने भर से माट्साएब, हमरा हौसला बढ़ जाता है। कहता है कि लूगा थोड़ा फटा रहेगा तो सूआ से सी लेगा, लेकिन हमरा जइसन मरदूद लोक के तो आसमाने फाटल है..... उसको कौन चीज से सीएगा? ऊहाँ जानकी मंदिर में एक ठो मेला लगा है.....कउनो जग हुआ रहा..... हमरो नैहर से बहुत लोक सब आया था। हमरे काकी भी आयी थी। ओकर एक ठो बात से हमरा बहुत गोस्सा चढ़ जाता है। ओकरा जब पूछिएगा, काकी, बढ़िया हालचाल है न! त ऊ कहेगी, 'जली क्या जुड़ायगी आ भूखी क्या अघाएगी!'..... मत्तोरी के! तू खाती है घरे से आ रोती है सावने से ....., ! रोवे से कोइ दे देगा? एही बात सब बसमतिया से बतिया रहे थे ..... हमरा तो अब दोकान जाना है, आप बैठिए ..... ।"

इतना बोलकर रासबती अपने पोन पर लगा गरदा झाड़ते हुए खड़ी हुई और अपनी ड्यूटी पर जाने के लिए बिदा हुई, मगर वह गयी नहीं; आँगन के मुहथर तक जाते–जाते ठमकी, फिर वापस लौट गयी। वह मेरे नजदीक आकर फुसफसाते हुए बोलने लगी, "माट्साएब, आपसे कउनो बात छिपा के हम कहाँ रखेंगे? काकी एक ठो अइसन बात बतला रही थी जो आपसे बोलने का हिम्मत नहीं हुआ..... मगर आपसे बोले बिना बात पचेगी नहीं.....लेकिन मन में सरम भी होता है.....आप सुनिएगा तो सोचिएगा कि ई हरमजादी खाली अइसने–अइसने बात बोलती रहती है ..... मगर माट्साएब, जरा बिचार करके देखिए त पता लगेगा कि हमरा जइसन आदमी के पास दोसर बाते कउन होगा? न खेत न पथार, अँगने में भतार.....खाली पेटवे कि लोटवे ... .. कि भूख–दुख के बात कि ऊहे बात ..... ।"

मैं उसकी बात का आशय समझ रहा था। मैंने उसका समर्थन करते हुए कहा, "आप एकदम सही कह रही हैं.....आप लोगों की जैसी हालत है, वैसी बात आप बोलती हैं ..... आप कुछ भी गलत नहीं बोलती हैं ..... दुख उठाने वाला बोलेगा भी नहीं, सो कैसे हो सकता है? जिसको जैसे बोलने आता है, सो वैसे बोलता है ..... आप बताइए!"

मेरी बात से आश्वस्त होकर रासबती एक चटगुनी पर बैठ गयी थी। अब उसके मुँह पर संकोच का कोई चिन्ह नहीं था। वह मेरी ओर झुकते हुए मद्धिम स्वर में बोली, "माट्साएब, हमरे काका तो गुजर गया, अब काकी बची है..... ऊ भी रोगाएले रहती है। बेटा चार साल से कलकत्ता धएले है आ गाँउ में बुढ़िया आ पुतोहू, दू जने रहती है। ऊहाँ कलकत्ता में हमरा भाइ रिकसा जोतता था। ऊहाँ के रिकसा बड़ा जानमारू होता है। ईहाँ जइसे तांगा में घोड़ा जोताता है, ठीक ओइसे ऊहाँ रिकसा में आदमी जोताता है। सबारी बइठ

गया त दुनू पेंजरा में रिकसा के हत्था सटा के दौड़ते रहिए। दहिना हाथ के औंठा में एक ठो घंटी फँसा के बजाते रहिए आ दौड़ते रहिए। सामने से अगर कउनो मोटर–टराम आ जाए तो जी–जान लगा के, जांघ पर जोर लगा के बिरेक लीजिए, नहीं त जान से हाथ धोइए। क्या कहें माट्साएब, हमर काकी ठीके कहती है..... जली क्या जुड़ाएगी आ भूखी क्या अघाएगी..... हम सब को कहीं सुख मिलने वाला नहीं है। एक दिन एक ठो मोड़ पर मोटर गाड़ी से रिकसा का टक्कर हो गया। गिरा त सबारियो, मगर ओकरा कुछ नहीं हुआ..... हमरे भाइ का इकसीडेन हो गया..... पैर–हाथ सब टूट गया। अब त पैर कटा के ऊहीं पड़ल है। तीन साल पहिले जे ऊ कलकत्ता गया था सो भमीछन मिसिर से कर्जा ले के..... सूदी पर पाँच सौ रुपैया..... ऊ पाँच सौ रुपैया तीन साल में बढ़ के तीन हजार से ऊपर हो गया। अब ऊ बभना रुपैया वसूले के लिए देह के खाल नोचने पर तैयार रहता था। ऊ लोग का कामे यही है। खेत–पथार एतना है कि साल भर ढेकर के खाता है अउर अनाज बेच के सूद पर पैसा लगाता है, तइयो छुधरपाना से बाज नहीं आता है। खाता है आ ढ़हनाते फिरता है ..... चारे बजे से गाँजा–भाँग खा के बौराया रहता है आ कहीं घरपैसी करना तो कहीं चमचोरी करना ऊ लोग का रोज का काम है। ओन्नी हमर भौजाइ जो मिल गयी सो बड़ा खाबसूरत....पाँच हाथ लंबा..... चाक जइसन चिक्कन देह आ तिस पर उमगल नदी जइसन छाती..... ओकरा देखिएगा त बुझएबे नहीं करेगा कि ई कउनो दुसाधिन है ..... अनमन ओइसने जइसन सलेस बाबा के गीत में गाता है ..... चलै अ' मलिनिया बेटी, धरती दलकाबै हन गे ..... । सो एक दिन माट्साएब, ऊ भीमिछना जो तगादा करने आया सो दुआरी पर से उठा नहीं। काकी कहीं गयी रही। मौका देख के ऊ भमिछना हमरे भौजाई के गट्टा पकड़ले खीच के घर पछुआर में ले गया। ओइ दिन के बाद ओकरा चसका लग गया। दू दिन पर तगादा के बहाना करके आवे, हल्ला–गुल्ला करके भौजाई के गट्टा पकड़ले केरबनी में ले जाए आ अपना मन सांत करके उधरे–उधर चला जाए। एक रात बड़ा भारी कांड हो गया। घर के पछुआर में पाँच–सात ठो पेड़ केला है, केरबनी के सटले नरकट के जंगल है। ओइ जंगल में केतना तरह के साँप–कीड़ा है सो के कह सकता है! ऊ रात जो भमिछना हमर भौजाई के पकड़ के ऊहीं ले गया सो ओकरा पैर में कउनो कीड़ा हबक लिया। ऊ बभना किकियाते भागा। ओकरा घर पर झाड़फूँक करने बला सब बतलाया कि भुतसँपा से कटा दिया है। जहाँ पर काटा है, ओही जगह के एक ठो बुढ़िया के टोना–टोटका का करश्मा है। ऊ बुढ़िया हक्कल डाइन है..... एतना सुन के ओकर घर का सब कोइ लाठी–भाला ले के आ गया। बुढ़िया के त मारते–मारते अधमरू कर दिया आ झोपड़ी भी उजार दिया। अब आप बताइए माट्साएब, ऊ धन भी लेगा आ धरम भी लेगा..... ऊपर से मार–पीट आ घर–उजाड़ी भी करेगा ..... ई त जुलुम है न माट्साएब..... लोक कहता है कि अब जमाना बदल गया है ..... गाँउ देहात में त अभियो ऊहे हालत है ..... ई हालत जल्दी बदलने बला नहीं है ..... ।"

रासबती आगे बोल नहीं सकी। कुछ देर तक वह दोनों हाथ से माथा पकड़े बैठी रही, क्षुब्ध–विषण्ण। संताप से उसका श्यामला रंग और भी झाँवर हो गया। वह गरदन झुकाए उठी और चली गयी। बासमती अपनी कोठरी के द्वार पर खड़ी थी। उसकी मनस्थिति भी अवसाद–ग्रस्त थी। रासबती संकोचवश दबे शब्दों में जितनी भारी बात बता गयी थी, उसके वजन से वहाँ का पूरा परिवेश दबकर जैसे पचक गया था। मुझे लगा जैसे कुछ देर पहले तक हम सभी किसी विशाल बैलून में घूम–टहल रहे थे, सो किसी दानव ने अपने बलिष्ठ पैर से दाबकर उस बैलून की हवा निकाल दिया और अब हम सब उस निर्वात खोल में छटपटा रहे थे। बासमती एकदम व्याकुल लग रही थी। उसने मेरी आँखों में ताकते हुए कहा, "इसमें भौजी का कोई दोख

नहीं है। मुझे भी मालूम है कि यह सब कैसे हुआ। आप बैठिए, मैं चाय बनाकर आती हूँ।'' वह धड़फड़ायी भनसाघर में चली गयी।

मेरा ध्यान रह–रहकर रासबती के दुखी मन की ओर चला जाता था। लाज और क्षोभ से झुकी उसकी गरदन और अँटक–अँटककर निकलते दबे–बुझे शब्दों की तपिश से बासमती आहत हो गयी थी। मैं दोनों बहनों की वेदना को अँगेज नहीं पा रहा था। गाँव–देहात में महाजनी कर्ज का ऐसा विभत्स रूप ..... पाँच सौ रुपए का ऋण, उसका सुरसा के मुँह जैसा बढ़ता सूद ..... अदायगी होने तक देह–भोग..... भुतसँपा... .. घरपैसी ..... चमचोरी ..... कितनी बात रासबती बोल गयी? उतनी ही देर में गाँव–देहात में नित्य घटित होने वाले महाभारत के जितने दृश्य उसने दिखला दिया, वह मेरी आँखों में अँट नहीं रहे थे। एक बार मेरा ध्यान उसकी सतघारा वाली भौजाई की छवि आँकने की ओर गया; कैसा चित्र उसने अपने शब्दों से उकीरा था? पाँच हाथ खड़ी..... चाक जैसी चिकनी, पुष्ट देह..... उमड़ी नदी जैसी छाती..... सलेस के गीत में जैसे मालिनी की बेटी मस्त हथिनी की तरह धरती को दलकाते हुए चलती है..... चलती है मलिनिया बेटी, दलकती है धरती..... पढ़े–लिखे भद्र लोग कहते हैं कि इन लोगों को बोलने नहीं आता है..... उनके पास शब्द नहीं हैं..... ऐसा बोलने वाले खुद नहीं जानते हैं कि इनके गीत, कहनी, फिकरा, किस्से ही इनके शब्दकोश हैं, अतीत में भोगे हर्ष–विषाद और अनुभवों से संपृक्त इनके शिल्प ही इनके विश्वकोश हैं ..... आपके जैसे बनावटी शब्द भले इनके पास नहीं हैं, क्योंकि उन्हें शब्द गढ़ने नहीं दिया गया..... शब्द के बदले उनकी कोख में अंगार पलते हैं..... ये अंगार जब फूटेंगे तब क्या होगा?..... मैं आगे नहीं सोच पा रहा था। बासमती दोनों हाथों में चाय का प्याला पकड़े आ गयी थी। लगा कि उसने चाय में तेजपत्ता डाल दिया था। कप से उठती भाप के साथ तेजपत्ते की सुगंध हर तरफ फैलकर वातावरण की खटास को कम कर रही थी। चाय पीते–पीते लगा कि माहौल का बोझा कहीं खिसक गया। बासमती मुझसे पहले चाय पीकर खड़ी होते हुए बोली, ''आप स्थिर से चाय पीजिए ..... मैं जरा बिछावन झाड़ लेती हूँ..... आप भी चाय पीकर भीतर आ जाइए..... बाहर में ठंढा है।''

भीतर गए तो कोठरी की गरमाहट अच्छी लगी। बासमती बिछावन पर पालथी लगाए बैठी थी। मैं भी आराम से उसके सामने ही बैठ गया। वह अपनी भौजाई का प्रसंग उठाते हुए बोली, ''भौजी पर दोहरी चोट पड़ गयी। कर्जा वाली बात तो थी ही..... कर्जा लिए बिना तो किसी दुसाध–मुसहर का साल ही पूरा नहीं होता है..... गिरहथ लोगों से कर्जा लीजिए, कभी अनाज तो कभी नगद..... सूद भरते रहिए तो बहुत अच्छा, नही तो बेगार खटिए ..... अगर सो भी नही तो उसके साथ सोइए..... कर्जा तो फिर भी सधाना ही पड़ेगा ..... भौजी की सुंदरता और उस पर पेट का दुख..... दोनों काल हो गया। भैया को कलकत्ता में जो खतरा हो गया, पैर टूट गया, उसका ठीक से इलाज नहीं हुआ। बहुत दिन तक घाव नहीं छूटा। बाद में डाक्टर ने एक पैर काट दिया। इसके बाद तो वह किसी मिहनत–मजूरी के लायक ही नहीं रह गया। मजदूर तो देह लेकर ही खटता है। देह में कुछ हो जाए तो पेट पर आफत आएगी ही। ऐसे में वह अपना पेट तो भर नहीं पाता था, घर कहाँ से भेजता? हमारे बाबू भी तो अकेले खटते थे, कितना करते? भौजी के घर में बराबर उपास होने लगा। भौजी देखने में ऐसी थी कि सब कोई नजर चढ़ाए रहता था। किसी गिरहथ के यहाँ मजूरी करने जाती थी तो सब देह नोचने के लिए घपाया रहता था। ऐसी हालत में भभिछना जैसे लोग गाँ सुतारने की ताक में रहते ही हैं, आखिर भूख के चलते भौजी ने उसके आगे देह ओढ़ दिया। मैंने तो एक रात दोनों को देख भी लिया, लेकिन यह बात मैं आपको बता नहीं सकती हूँ ..... ।''

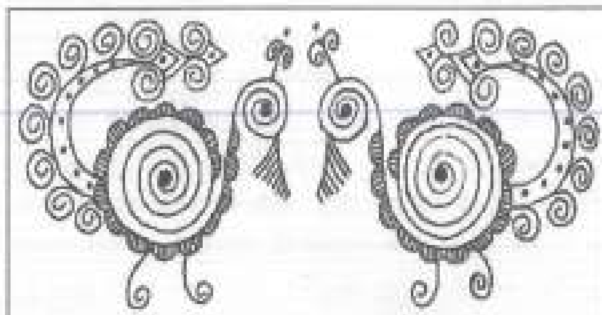
मैंने कहा, "यह कैसे हो सकता है कि कोई आधी बात बतलावे और अचानक कह दे कि अब नहीं बतलावेंगे? क्यों नहीं बताइएगा, सो तो बता दीजिए ..... ।"

"ऐसी बात बताने लायक थोड़े होती है! जो आदमी ऐसी बात बोले–बतियाएगा, वह उसीमें फँसेगा ... .. मैं न इस तरह के काम में फँसना चाहती हूँ न आपको फँसाना चाहती हूँ.... इस तरह की बात करना खतरनाक हो सकता है..... ।"

मेरी समझ में ऐसी कोई बात नहीं आ रही थी जो खतरनाक हो सकती थी, इसलिए उसकी सोच पर मुझे कुछ झुँझलाहट हुई, "कभी–कभी आप बात को ऐसा बुझौअल बना देती हैं कि मेरा मन खिजला जाता है। मेरे किस बेबहार से आपको लगता है कि मैं खतरनाक भी हो सकता हूँ?"

मैं अब मानता हूँ कि उस समय मेरे मन में जो खीज भर गयी थी, वह अनावश्यक थी। मेरी ऐसी मनस्थिति उसे सहन नहीं होती थी। उसने मुझे परबोधते हुए कहा, "आप तमसाइए नहीं..... जरा बिचार के देखिए..... हम लोग बहुत ऐसी बात कर लेते हैं जो दूसरे लोगों में नहीं होती होगी, लेकिन मैं आपकी हर बात को पढ़ाई की तरह लेती हूँ। तब अगर ऐसी कोई बात बतिआने लगें जिससे आपका कि मेरा मन रास्ता से भटक जाए, तो ऐसी बात बोलने से बचना चाहिए कि नहीं?"

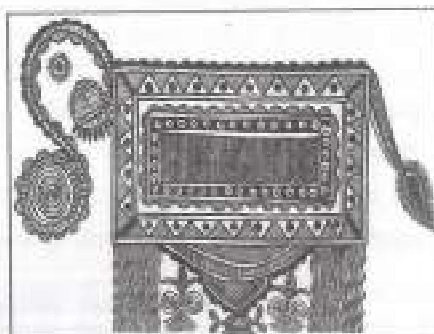
मैं समझ गया। उसकी भौजाई और भिभीछन के बीच का संबंध जैसा था, उसका वर्णन करने से पहले बासमती सावधानी बरत रही थी। मुझे उसका विचार अधिक परिपक्व लगा। मैंने कहा, "मैं भी आपसे सुनकर समाज का अध्ययन ही कर रहा हूँ। इस हिसाब से आपका शिक्षक मैं और मेरा शिक्षक आप हुईं। आप इस बात से निश्चिंत रहिए कि कभी किसी बात से मन भटकेगा। आप सही बोल रही हैं..... जो बताने लायक बात हो वही बताइए ..... ।"



कुछ देर तक वह मूँड़ी नीचा किए सोचती रही। उसके मुँह पर गंभीरता की परत गाढ़ी होती जा रही थी। उसने जब बोलना शुरू किया तो लगा जैसे रासबती और सतधारा वाली उसकी भौजाई की वेदना एक साथ बासमती के कपार पर सवार हो गयी, "मेरी भौजाई खराब चाल–चलन की औरत नहीं है। मैंने जब एक रात भभिछना के साथ केरबनी में उसको देख लिया तो भोर में बहुत डाँटे। वह खाली रोती थी और इतना ही कहती थी कि कर्जा के रुपैया के बास्ते ऊ जबरदस्ती खींच के ले गया। बात नहीं मानने पर वह कितने दिन से धमका रहा था। एक दिन सिगरेट के फुलिया से जगह–जगह चूतड़ दाग दिया। बाद में लगातार उपास पड़ने लगा। बुढ़िया तो रोग–दुख से वैसे ही झमान रहती थी, एक दिन भूख के मारे गश खा के गिर गयी। उसी दिन एक बोरिया चावल देकर भभिछना ने भौजी को पटा लिया। मैं जब भौजी को डाँटती थी तो वह इतना ही बोलती थी, 'बौआ..... देह की भूख से नहीं, पेट की आग के चलते उसके आगे मूँड़ी गोंतना पड़ा..... ।' उसी बीच में सुरजी अपने ससुराल से नैहर आयी। उसने बताया कि मधुबनी में हरिजन औरत सब गोदना पेंटिंग बना के पैसा कमा रही है। हम भी

भौजी को गोदना पेंटिंग सिखा के काम में लगाना गछ लिए। भौजी मजबूरी में कुकरम करने लगी, लेकिन हम भी तो अभी तक उसके लिए कुछ नहीं किए ..... ?''

बासमती को मैं ठीक से समझ नहीं पाया था। सामाजिक समस्याओं के प्रति उसकी समझदारी मुझसे कहीं अधिक साफ थी, इसीलिए उसके निदान के उपाय भी वह मुझसे पहले खोज लेती थी। वह अपनी भौजाई को गोदना–पेंटिंग सिखा कर व्यभिचार से मुक्त कराना चाहती थी और इसीलिए वह अपने शरीर पर गुदे चित्र का भंडार मेरे साथ बाँटना चाहती थी। मैं मन ही मन बासमती के निश्चय को जितना आँकता था, उसका अपना आकार उतना ही ऊँचा उठ जाता था, मुझसे कई गुणा ऊँचा।



बासमती ने अपनी भौजाई के बारे में जो कुछ बतलाया वह कमोबेश पूरे देहाती समाज की हालत थी। वह उस समाज से आती थी जहाँ के बहुसंख्यक लोग साधनहीन थे और जीने के लिए हर तरह के अपमान और शोषण को अपनी नियति मानकर बर्दाश्त कर रहे थे। वह इतना समझ चुकी थी कि उस दशा से छुटकारा पाने के लिए किसी नए रोजगार में लोगों को, खासकर औरतों को लगना होगा। उसमें यह उत्साह अपने टोले की एक लड़की, सुरजी को देखकर बढ़ी जो जितवारपुर से सटे किसी गाँव में गोदना पेंटिंग बनाकर कमा रही थी। इससे अच्छा क्या होगा? उसे अपनी भौजाई को यह काम सिखाकर भभिछना के चंगुल से आजाद कराना था। बासमती उस रात किसी निश्चय पर पहुँचना चाहती थी। हम दोनों ने गोदनाचित्र की तैयारी में जो कुछ शुरू किया था, वह काम रुका हुआ था। अब और देरी के लिए वह तैयार नहीं थी। उसने शिकायत के लहजे में मुझे टोका, ''आप तो पढ़े–लिखे बिदमान आदमी हैं..... आपके दिमाग में बहुत बात जमा रहने से भी भुलाता नहीं है मगर हम तो मुरुख–गमार औरत हैं..... कोई बात केतना दिन तक याद रखेंगे? यहाँ एक ठो काम पूरा होता ही नहीं है कि दूसरा काम शुरू हो जाता है आ पूरा कुछ होता ही नहीं है। देह पर से गोदना उतारने का काम कब शुरू हुआ..... अभी तक ऊ काम अधूरे है..... एतना दिन में हम क्या पढ़े सो भी आप नहीं देखे..... खाली बाते करने से तो सब काम पूरा नहीं हो जाएगा। आज हम आपको भौजी का खिस्सा सुनाए..... हमारी भौजाई जैसी हजारो औरत आज काम नहीं मिलने से छटपटा रही है..... गाँव–देहात में कामे कितना है..... घूम–फिर के वही गिरहथ के खेत में जाइए..... एतना मजदूर के पेट कहाँ सैं भरेगा..... तब तो कुकरम करना ही पड़ता है..... इस हालत में औरत कैसे मजबूत होगी? आप जो तबस्सुम से गछ लिए सो कैसे पूरा होगा?'' उसे आगे नहीं बोल हुआ। तबस्सुम की बात बोलकर वह और भी भावुक हो गयी। उसकी आँखें छलछला आयी। मैंने उसका हाथ पकड़कर भरोसा दिलाना चाहा, ''आप बिलकुल ठीक कह रही हैं। अब एक निश्चय के साथ काम पूरा करना होगा। मुझे बहुत अफसोस है कि गोदना का काम आगे नहीं बढ़ पाया..... मेरी ही गलती है..... माफ कीजिए ..... !''

मेरी बात से अचानक उसके ठोर पर मुस्की पसर गयी। उसने कहा, ''मेरी भौजी ठीक ही कहती थी कि मरद अगर अच्छा होगा तो गलती करने पर तुरत माफी माँग लेगा..... लेकिन आप किसी से माफी माँगें, यह मैं कभी नहीं देख सकती हूँ। गोदना वाला जितना काम आपने मुझे दिया था सो मैं पूरा कर चुकी हूँ।

आपने वह काम देखा नहीं, इतनी ही देर हुई है। मैं आपको दिखलाती हूँ .....।" वह फुरती से उठी और अपनी पेटी से नोटबुक निकाल लायी। नोटबुक के हरेक पन्ने पर उसने अपने ही शरीर पर गुदे चित्रों की अनुकृति की थी। एक-एक चित्र की अनेक अनुकृति; कुछ साधारण, कुछ सुंदर, कुछ बहुत सुंदर। यह किसी चमत्कार से कम नहीं था। उन चित्रों में कुछ हाथी, हाथी पर चढ़े लोग, मेला की सवारी, कुछ मयूर, माछ और अन्य प्रतीक बने थे। मुझे उसका कौशल देखकर आश्चर्य हुआ। प्रशंसा में मैं उसका मुँह ताकता रह गया, "आपने भीतर ही भीतर इतने सुंदर चित्र बना लिया और मैं दूसरी बातों में फँसकर इस बात से अनजान था। आपने तो कमाल कर दिया..... ।"

"कमाल मैं क्या करूंगी? यह कमाल असल में भौजी के दुख और आपके सहारा का है। यह सब मैंने पहली बार किया है। देह पर से चित्र तो आप ही उतार दिए थे..... मैंने बार-बार उस खाका के हिसाब से काट-छाँट करके ऐसा बना लिया। आपको अच्छा लगा, मेरे लिए यही बहुत है। लेकिन अब एक ठो काम करना बहुत जरूरी है, नहीं तो यह काम आगे नहीं बढ़ सकेगा..... ।"

मैं बतियाने में लगा हुआ था लेकिन मेरा ध्यान इस बात पर भी था कि वह किसी व्रत-उपवास में थी, जिसके लिए वह मिठाई मँगवाई थी। अबेर होता देखकर मैंने उससे कहा, "अच्छा, गपशप बाद में भी होगा, आप पहले व्रत वाला काम कर लीजिए। मैंने मिठाई कम ही ली ..... आपके घर में हैं ही कितने लोग!"

उसने तृप्ति में बोरे स्वर में कहा, "मैं अब एक ही व्रत लेकर जीना चाहती हूँ और मेरे भगवान भी मेरे पास में ही हैं। हरिजन और दूसरा भगवान कहाँ से लाएगा? हीरा डोम अपने गीत में क्या कहते हैं? दीदी ने आपको सुनाया था, 'मारले रवनवा के, पलले भभिखना के, कानी अँगुरी पे धके पथरा उठवले, कँहवा सुतल बाटे सुनत न बाटे अब, डोम जानि हमनीं के छुए से डेरइले।' उस भगवान ने गरीब और हरिजनों का कुछ भला नहीं किया। आज जो लाचार है, उनको आप जैसे आदमी की जरूरत है। ऐसे लोगों को आपका साथ चाहिए। अब आप सोच लीजिए कि लाचार लोगों का साथ दीजिएगा कि पाटी वाले नेता लोगों को साथ दीजिएगा। आप यदि गरीबों को साथ दीजिएगा तो मेरा ब्रत भी पूरा हो जाएगा।"

वह मेरी ओर एकटक ताक रही थी। उसके शब्द मेरे आगे में हनुमान की मूर्ति बनकर खड़े थे। मूर्ति के उस पार आंदोलन के नाम पर राजनीतिक दलों का गठबंधन था और इस पार दलित-वंचित लोगों का दग्ध संसार। नदी के दो पाट की तरह ये दोनों कभी मिल नहीं सकते। आंदोलन बहुत पहले ही 'छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी' के हाथों से निकलकर राजनीतिज्ञों के हाथ में चला गया था। एक तरफ कांगरेस और भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी थी, दूसरी ओर बाँकी सभी दल। इन पार्टियों के केवल नाम ही अलग थे, चरित्र सबों का एक ही, रंगे हुए सियार के जैसे। ये लोग गरीबों का भला कभी नहीं कर सकते। तब क्या करें? बासमती के नए आंदोलन के साथ हो जाएँ? बासमती किस ब्रत की बात कर रही है? मैंने उससे पूछा, "आपका क्या व्रत है सो नहीं बतलाए ..... !"

"मेरा भी वही ब्रत है जो तबस्सुम ने आपसे वादा करवाया।"

"वह वादा आपका व्रत कैसे हो गया? वादा तो उसने मुझसे करवाया था। मैंने तो मात्र खिस्सा आपसे बताया था..... ।"

"उस समय आपने कहा था कि यह कोई खिस्सा नहीं है, बरु आपके जीवन का संकल्प है। आपने तबस्सुम से वादा तो कर लिया लेकिन अभी तक कुछ किए नहीं। उसी तरह मैंने भी अपनी भौजी से वादा तो कर लिया लेकिन अभी तक कुछ कर नहीं सकी। जब आप मुझे तबस्सुम वाली बात बतलाए तो मैंने दोनों का वादा मिलाकर एक कर लिया। मैंने आपके वादे को अपना लिया, जैसे भौजी ने अपनी सास का कर्जा अपना लिया। अब मैं दोनों वादा को जीवन भर याद रखूँगी। यदि आप साथ देंगे तो यह काम जरूर पूरा होगा लेकिन अगर आप पाटी वालों के साथ ही जाना चाहें तो कोई बात नहीं। मैं मरते दम तक कोशिश करती रहूँगी, चाहे जो हो!"

इतने दिनों से मैं उसकी संगत में था, हर रोज उसके साथ उठता-बैठता था और हर तरह की बातें करता था, लेकिन मैं यह नहीं जान सका कि उसके मन में ऐसा प्रबल उद्वेलन था। हमेशा मुस्कान वाली उसकी मुखाकृति के नेपथ्य में उत्पीड़न के विरुद्ध कोई संघर्ष भी चल रहा है, यह जानकर मेरा मन उसके प्रति गर्व से उद्दीप्त हो उठा। भूख और अपमान की ज्वाला में जलते-पजरते लोगों के लिए उसे एक औजार मिल गया था। हँलाकि मैं यह नहीं जानता था कि उस योजना से कुछ तुरत फल की आशा की जा सकती थी, लेकिन डूबते को तिनके का सहारा। उसकी देह पर ढेरों गोदना के छाप थे। उन चित्रों को देखकर मैं कागज पर उतारूँगा, उसे देखकर वह सुंदर अनुकृति तैयार करेगी, फिर उन चित्रों के नीचे उससे पूछकर मैं माने-मतलब लिखूँगा। इतना करने के बाद जो पोथी तैयार होगी, उससे सीखकर औरतें 'गोदना पेंटिंग' बनाएंगी। इतनी बड़ी योजना उसके मन में थी। मैंने उसके आस-महल को सीढ़ी-दर-सीढ़ी ऊपर उठते देखा। बहुत ऊँचा उठकर महल का गुंबज सूर्य के प्रकाश में और भी भासमान हो उठा। अनायास अंधेरे से एकाएक इजोत में जाने से मेरी आँखें चुँधिया गयीं। पूर्वस्थ होने के लिए आँख मूँदकर हल्के से फिर खोला तो देखा, बासमती अपनी बाँह पर बने कछुआ को सहला रही थी। क्षण भर के लिए मैंने उसके साथ अपनी तुलना की। मुझे लगा कि अपने समाज के पीड़ित लोगों के प्रति बासमती के ह्रदय में जो भाव थे, उसकी योजना में उनकी विमुक्ति के लिए एक लंबे प्रयास की योजना थी; साथ ही उस प्रयास के लिए उत्सर्ग की उसकी उत्सुक तैयारी थी जबकि मेरे ह्रदय में कोमल संवेदनाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। मेरे मन में वैसी छटपटाहट इसलिए भी नहीं थी क्योंकि मैंने उनकी परिस्थिति की विकटता को भोगकर नहीं देखा था। मेरे मन में पीड़ित लोगों के प्रति सहानुभूति की कमी नहीं थी, किंतु उस परिवेश से नहीं आने के कारण मेरे अंदर वह वैकल्य नहीं था। बासमती मुझसे अधिक सचढ़ थी। वह अगली-पिछली बातों के थाक में से निकालकर काम को सिलसिलेवार रूप दे सकती थी। मैंने अनुमान लगाया कि वह किसी लंबी योजना को गढ़ रही है जैसे कोई कुम्हार चाक पर किसी पात्र को गढ़ता है, इसीलिए मेरे विचार पूछ रही है। मैंने उसके प्रश्नों का जवाब देते हुए कहा, "आप कहती हैं कि मेरा और आपका वादा मिलकर एक हो गया, तब तो मेरा और आपका रास्ता भी एक ही हो गया न! मैं आपका साथ दूँगा.... आप जैसे कहेंगी वैसे। मैं नहीं जानता था कि आपके अंदर इतनी खूबियाँ हैं। मैं पिछले दस साल से केवल भावना के जंगल में भटक रहा था.... कभी किसी को पढ़ाता था, कभी भूखे लोगों के लिए रोता था। आपने जो रास्ता चुना है उस रास्ते पर चलकर जरूरतमंद लोगों को सब कुछ मिल सकता है; पढ़ाई भी, कमाइ भी और जबरदस्ती से आजादी भी। अब मेरे मन में कोई संदेह नहीं है। आपने मुझे रास्ता दिखला दिया। आप विचारिए और मुझे भी बताइए।"

वह मुझसे यही आश्वासन चाहती थी। उसके मन में आगे की जो योजना थी उसकी भूमिका बाँधते हुए उसने कहा, "देखिए, आप मेरी जितनी प्रशंसा करते हैं, मैं उसके लायक नहीं थी। अब अगर आपको

लगता है कि मुझमें कोई खूबी है तो वह भी आपकी संगति से ही जनमी होगी। आज मैं आपसे एक ठो खास बात करना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि इस बात पर खुल के चर्चा हो और तब जो फैसला हो वही किया जाए। ऐसा करिएगा तभी काम भी आगे बढ़ेगा।"

"आप अपनी बात बेहिचक बोलिए। मैं भी अपना विचार रखूँगा। इसके बाद जो फैसला होगा, मैं भी उसका पालन करूंगा।" मैंने अंतिम रूप से उसे अपनी स्वीकृति दे दी।

"पहली बात तो गोदना का चित्र देह पर से उतारने की है। कुछ मोहर तो आपने पीठ पर से उतार लिया, लेकिन असली चित्र सब तो अभी बाँकी ही है। आपके लिए दिक्कत है कि देह के भितरिया भाग में जो चित्र सब बना हुआ है, ऊ सब आप उतार पाइएगा कि नहीं.... ।"

"यह दिक्कत सिर्फ मेरे लिए है और आपके लिए कोई समस्या नहीं है?"

"नहीं, मेरे लिए इसमें कोई दिक्कत नहीं है। इससे अगर कोई दिक्कत की बात होती तो मैं पहले ही आपको अपनी देह छूने नहीं देती। मैंने बहुत सोच–समझकर ही फैसला किया था। मैंने सोचा कि अपने शरीर से लोगों की भलाई भी करना है और अपना धरम भी बचाना है। अब इस दोनों बात के अलावा तीसरी कोई बात बीच में घुस ही नहीं सकती है। अब जब मैं समझ गयी हूँ कि लोगों की भलाई के लिए अपने शरीर का गोदना कागज पर उतारना है तो उस रास्ता से भी नहीं हँटना है और हर हालत में अपना धरम भी बचाना है।"

"विचार तो मेरा भी लोगों की भलाई ही है, लेकिन आप किस धर्म की बात कर रही हैं, मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ।"

"मुझे नानी ने बताया था कि जिस नियम का पालन हरेक आदमी को करना चाहिए, और जिस नियम के टूटने से आदमी कहीं का नहीं रह जाता है, उसको धरम कहते हैं। मैं आपको एक ठो बात याद कराती हूँ जो नानी ने बताया था। उसने कहा था कि ब्याही लड़की अगर किसी दूसरे पुरुष के साथ फँस जाती है तो उसके पति की आयु खीन हो जाती है। मुझे नानी ने यही सिखाया कि देह वाला संबंध केवल एक आदमी के साथ रखना चाहिए, खास करके ब्याही लड़की को तो दूसरे के साथ गलत काम एकदम नहीं करना चाहिए। यही औरत का धरम है। मैं इस धरम को नहीं तोड़ सकती हूँ चाहे आप मेरे शरीर को कहीं छूइए या देखिए; मेरे मन पर कोई असर नहीं हो सकता है। इसी तरह से आप भी अपने मन में कीजिए कि कुछ हो जाए, मन में ऊ बात नहीं लाना है।"

"ऐसा हो सकता है क्या? मुझे तो संदेह लगता है।"

"आपको संदेह इसलिए लगता है क्योंकि आप शादीसुदा हैं और उस काम को किए हुए हैं लेकिन मुझे उस काम का अनुभव नहीं है। मैं इतना ही जानती हूँ कि अपने मन को कड़ा करके हम लोग अगर सब ठो गोदना कागज पर उतार लेंगे तो उसका मजा सेक्स के मजा से जादा होगा और बीच में सेक्स आ जाने से सब काम खराब हो जाएगा। जब आप समझ जाइएगा कि इस काम के पूरा हो जाने से किसी भूखी औरत को इज्जत वाला काम मिल जाएगा तो किसी हालत में आप इस काम को बरबाद नहीं होने

दीजिएगा। आप जब यह जान जाइएगा कि एक मजदूर के लिए देह सबसे पहले पेट भरने का औजार होती है, लेकिन जो मरद राकछस होता है वही किसी भूखी औरत के शरीर को भोग की चीज समझता है, तब आपका मन नहीं गड़बड़ाएगा। मेरी भूखी भौजाई को भभिछना पहले भर मन नोचता था, तब पाँच सेर गेहूँ देता था.... ।'' यह बासमती का एक और नया रूप था। उसकी बातें बिलकुल बेलौस थीं। वह कुछ पल चुप रही फिर बोलने लगी, ''इसके अलावा मुझे एक ठो बात और समझ में आती है.... जब किसी औरत के साथ पुरुष सेक्स करता है तो उसको तो कुछ नहीं होता है, लेकिन औरत को अकेले उसका नतीजा भोगना पड़ता है। इसीलिए न तबस्सुम को मरना पड़ा! तबस्सुम उस समय में इस काम का नतीजा नहीं जानती थी, मगर जिस आदमी ने उसको बहकाया वह सब कुछ जानता था फिर भी उसने कठिन समय में उसको कोई सहारा नहीं दिया और शहर छोड़कर भाग गया।''

बासमती आज जो कुछ बोल रही थी वह स्त्री–पुरुष संबंध के आधारभूत प्रश्न थे। उस दिन से पहले मैंने इस विषय पर किसी से चर्चा नहीं की थी। खासकर किसी लड़की के साथ इस तरह की बात करने का साहस मुझमें नहीं था, लेकिन बासमती बिलकुल फर्रास होकर अपनी बात रख रही थी। बातचीत में तबस्सुम की चर्चा करते समय उसकी आवाज रुँध गयी और आँखें नम हो गयीं। उसने तबस्सुम को देखा भी नहीं था लेकिन उसके दुख को समझा और मेरी साथी होने के कारण उसने भी उसे अपना साथी मान लिया। कुछ देर वह गमगीन बैठी रही फिर बोली, ''तबस्सुम मर गयी, अब वह वापस नहीं लौटेगी लेकिन मैं सेक्स के कारण किसी और की मौत का कारण नहीं बनना चाहती हूँ।''

मैं उसकी इस बात का अर्थ नहीं समझा। सेक्स की घटना होने से और कौन मर सकता है? मैं इस विषय में और अधिक नहीं सोच पा रहा था इसलिए उससे पूछा, ''मैं आपकी बात नहीं समझ सका। सेक्स की घटना होने से कोई और मर सकता है, ऐसा आपने किस हिसाब से सोच लिया?''

''देखिए, यह तो सब जानता है कि मरना–जीना किसी के हाथ में नहीं होता है, लेकिन लोगों के बेबहार और भला–बुरा को लेकर बहुत तरह की कहावत बनी हुई है। इन कहावतों में बड़े–बूढ़ों की सीख जमा रहती है, इसलिए गाँव–देहात के लोग किसी कहावत या फकरा की मनाही को जरूर मानते हैं। मैं अपने गाँव से बस पकड़कर यहाँ आ रही थी। साथ में बाबू थे। हम लोगों को सीट नहीं मिला तो ड्राइवर के बगल में बैठ गए। गाड़ी थोड़ा आगे बढ़ी तो देखे कि एक ठो बिल्ली रास्ता काट के दूसरी ओर चली गयी, कि ड्राइवर ने तुरत ब्रेक लगाकर गाड़ी रोक दी। मैंने बाबू से पूछा कि ड्राइवर ने ऐसा क्यों किया तो बाबू ने एक ठो फकरा सुनाया, ''बिल्ली काटे रस्ता, अनहोनी का बस्ता''.....माने बिल्ली रास्ता काट दे तो रुक जाओ, नही तो कोई अनेड़ घटना हो सकती है। इसलिए ड्राइवर गाड़ी रोक दिया, ई एक ठो टोटका है। ..... ऐसी बहुत बात है जो बड़े–बूढ़े अपने बच्चों को सिखाते हैं। नानी ने मुझे जो सिखाया सो तो हम आपको बता ही दिए हैं। जो बात उसने सिखाया कि ब्याही लड़की अगर कुचाल में पड़ जाती है तो उसके पति की जिनगी खीन हो जाती है, माने ऊ खतरा में पड़ सकता है। यह बात तो मानना ही पड़ेगा न! अगर नानी की बात काट के कोई गलत काम कर लें और अगर दैवी–दिलाही कुछ बुरा हो जाए तब तो जिनगी भर का अफसोस रह जाएगा न!..... यही बात मैं आपको बताना चाहती थी.....।''

इतनी बात बोलकर बासमती चुप हो गयी। मुझे उसकी बात से न सहमति थी और न असहमति, लेकिन मैं जानना चाहता था कि स्त्रियों की तरह पुरुषों के लिए सामाजिक नीतिशास्त्र में ऐसी कोई वर्जना थी या नहीं। आखिर मैं भी तो एक पुरुष हूँ, शादीसुदा। मैंने पूछा, "अगर विवाहित पुरुष किसी दूसरी स्त्री के साथ सेक्स कर ले, उससे उसकी पत्नी की आयु क्षीण हो सकती है कि नहीं? इसके बारे में क्या कहा गया है?"

मेरी जिज्ञासा के जवाब में उसने तुरत कहा, "पुरुष के बारे में कुछ नहीं कहा गया है। इस नियम को तो पुरुष को भी मानना चाहिए, लेकिन वह आजाद है, स्त्री की तरह हर तरफ से बँधा हुआ नहीं है। दोनों के शरीर भी दो तरह के हैं। पुरुष सेक्स के बाद अपने मन पर कुछ लादे नहीं रहता है जबकि औरत को उस एक बार की भेंट को जिनगी भर ढोना पड़ सकता है। वैसे भी औरत इस तरह की घटना को कभी भूलती नहीं है। यह बात कोई लड़की खुद भी नहीं जानती है कि किस दिन की भेंट से वह गर्भवती हो जाएगी। तब तो पेट का बच्चा मारिए चाहे अपने मरिए। और अगर न बच्चा मारिए न खुद मरिए तो समाज दोनों में से किसी को चैन से जीने नहीं देगा। जिसके कारण बच्चा पैदा हुआ वह भी बिपत में साथ नहीं देगा। अगर ऊ आदमी साथ दे भी देगा तो पति छोड़ देगा। इससे भी ऊपर कलंक तो प्राण निकलने तक साथ ही रहेगा।....वैसे हरिजन में औरत और मरद दोनों दुबारा–तिबारा ब्याह कर सकता है, लेकिन इस बात को अच्छा नहीं माना गया है।"

बासमती अपनी संपूर्ण स्त्री–चेतना के साथ संबंधों का विश्लेषण कर रही थी। उसकी बात में न कोई वंचना थी और न झिझक। आज जो वह बोल रही थी सो मेरे लिए नया था, किंतु यह मेरे खुद का मूल्यांकन था। असल में, समाज में लोग हमेशा से स्त्रियों की, खासकर हरिजनों की समझदारी को कमतर मानकर आँकते रहे हैं। लेकिन बासमती की आज की बातचीत ने मुझे जता दिया कि स्त्री विषयक मामलों में कोई लड़की या औरत पुरुष से कहीं अधिक चेतन होती है। आज जो बात वह बोल रही थी, उस पर उसने बहुत पहले विचार कर लिया होगा, जब पहली बार मुझे अपनी देह छूने के लिए कहा था। कितनी गहरी है इसकी विचार–पद्धति? मैं उसकी विचक्षणता से अभिभूत होते पूछा, "सभी संबंधों का कोई नाम हो सो जरूरी है क्या?"

"दो आदमी के बीच में कैसा बेबहार है, इसीको तो संबंध कहते हैं। यह संबंध तो साफ रहना ही चाहिए। एक ठो पति–पत्नी, माँ–बेटा, भाई–बहन या संगी–साथी के बीच में आपस का बेबहार तय रहता है कि नहीं? आप हम जैसे गए–बीते लोगों की भलाई के लिए कितना आतुर रहते हैं? अब इस काम मे आपका साथ मैं दूंगी और मेरा साथ आप दीजिएगा। माने मेरे और आपके बीच मे अब काम के साथी वाला संबंध होगा। मैं ठीक कह रही हूं न? मुझे तो सबसे बढ़िया साथी वाला संबंध ही लगता है। इसमें कहीं कोई लोभ–लालच नहीं होता है। कोई एक–दूसरे का नुकशान नहीं करता है। एक साथी की जरूरत दूसरे की जिम्मेवारी बन जाती है। एक दिन मुझे अमरुद खाने का मन हुआ। मैंने अपनी बहिनपा को बताया। वह तुरत अमरुद के पेड़ की फुनगी तक चढ़ गयी और अमरुद तोड़ लिया। उतना ऊपर चढ़ने में उसके हाथ–पैर छिल गए। मुझे बहुत अफसोस हुआ लेकिन उसने हँसकर कहा, "तुम्हारी इच्छा मेरा काम हुआ, तभी न बहिनपा .....।"

बोलते–बोलते बासमती का ध्यान मुझे लगा कि अपनी बहिनपा की स्मृति में उलझ गया। कुछ देर वह चुप रही फिर अपने में वापस लौटते हुए बोली, "मैं तो आपके जैसी पढ़ी–लिखी नहीं हूँ जो सब बात ठिकान से ही बोलूँगी मगर मुझे जितनी समझ है उतना मैंने बता दिया। अब आपको जो सही लगे सो बताइए।"

"आपकी सभी बात उचित ही है, केवल एक बात से मुझे दुविधा हो रही है। अपने समाज में पुरुष का साथी पुरुष और स्त्री की साथी स्त्री होती है। यहाँ स्त्री और पुरुष के बीच में साथी के संबंध का चलन तो नहीं है .....।"

मुझे लगा कि ऐसा प्रश्न सुनने के लिए वह पहले से तैयार थी। उसने मेरी बात को लोकते हुए कहा, "सो तो अपने समाज में ऐसा बहुत काम है जो पहले नहीं होता था लेकिन अब शुरू हुआ है। पहले बड़ी जाति की लड़की भी गाँव से बाहर पढ़ने नहीं जाती थी, लेकिन अब जाती है। पहले आपकी जाति की औरत सब कमाती नहीं थी, लेकिन अब पेंटिंग बनाकर कमा रही है। पहले चित्र न उतना बनता था न बिकता था; अब बनता भी है और बिकता भी है। पहले हरिजन औरत सब न पढ़ती थी न सब बात बोलती थी। अब आप कहते हैं कि ऊ लोग पढ़े भी और बोले भी। ऐसे ही नये तरीके का संबंध काहे नहीं हो सकता है? पहले हरिजन की छाँह से भी लोग छुआते थे, अब उसकी देह पर बना गोदना पेंटिंग कमाल कर रहा है। तब यह बात सही है कि अपने यहाँ औरत–मरद में साथी वाला संबंध नहीं होता था। सो क्यों नहीं होता था? बात यह है कि जादा मर्द लोग औरत को खाली सेक्स वाली चीज समझते हैं। इस बात में मर्द न जात का बिचार करता है न उमेर का। हमारे गाँव में क्या हुआ? रहिका वाली काकी मुखियाजी के खलियान में गहूम ओसा रही थी। उसको घर भर नाती–पोता है। उसको मुखियाजी का पोता पटककर कर लिया। दो आदमी मिलकर मुखियाजी को कहने गए तो जानते हैं, मुखियाजी ने क्या कहा? ऊ कहे कि एतना दिन से तुम लोगों को बसाकर रखे हैं तो हमारा लड़का–बच्चा ई सब सीखने के लिए कहाँ जाएगा रे?.....भाग यहाँ से ..... अगर किसी से कुछ बोला तो ठीक नहीं होगा .....। अब आप ही कहिए, अब ऐसी बात चलेगी कि यह सब बंद होना चाहिए? आप कहते हैं कि समाज में बदलाव जरूरी है। यह बदलाव कैसे आएगा? इस बदलाव के लिए आपने मुझे उकसाया है तो अब मैं पीछे नहीं लौटना चाहती हूँ। इसलिए घबराइए नहीं, हम आप साथी रहिए और समाज की भलाई कीजिए। आखिर आप जिस अंदोलन में थे, उसमें खाली मरदे लोग हैं, उसमें लड़की–औरत नहीं है? उस अंदोलन में लड़की–लड़का दोस्त नहीं होता है?"

बासमती के इस सवाल का गवाह तो मैं स्वयं था। आंदोलन में कई ऐसे स्त्री–पुरुष थे जो एक–दूसरे के साथी थे। माधुरी और मेरे बीच में अगर दोस्ती नहीं होती तो पुलिस के माँद में रहकर भी मैं कैसे आंदोलन जारी रख पाता? वह अपने बाप की जासूसी करती थी और मुझे बता देती थी। हालत जब बेसम्हार हो गयी तो उसीने मुझे रमेसर के साथ नेपाल भेज दिया। आंदोलन के दिनों में एक नारा खूब प्रचलित था, "नारी के सहकार बिना हर बदलाव अधूरा है।" माधुरी मेरे लिए कठिन से कठिन काम कर सकती थी, लेकिन उसके मन में एक और इच्छा थी जो मैं पूरा नहीं कर सकता था। इस हिसाब से तो अच्छा हुआ कि मैं मेजरगंज से चला आया।

मैं नेपाल–प्रवास से पहले की बातों को याद करने में लग गया तो बासमती समझी कि मैं नए संबंध के प्रस्ताव से चिंतित हो रहा हूँ। उसने कहा, "आप घबराइए नहीं ..... साथी बनकर मैं आपके घर–परिवार का कोई नुकशान नहीं करूँगी ..... ।"

मैंने उसकी बात को समझते हुए कहा, "आप जैसी स्त्री का साथी बनना तो बहुत खुशी की बात होगी ..... भला हम लोग एक–दूसरे का क्या नुकशान करेंगे ..... ?"

उसने तुरत कहा, "ऐसा नहीं कहिए ..... अनजाने में भी बहुत तरह का नुकशान हो जाता है। मेरे और आपके बीच में अगर सेक्स आ जाएगा तो दोनों का बहुत बड़ा नुकशान हो जाएगा। यह सभी चीज को खतम कर देगा ..... दोस्ती को भी ..... ।"

आपका सोचना बिलकुल सही है ..... मैं भी ऐसा कुछ नहीं चाहता हूँ, लेकिन मुझे अपने आप पर भरोसा नहीं है। इस मामले में मैं आपके जैसा संयमी नहीं हूँ।"

"यदि आप समझते हैं कि इस मामले में आपका मन कमजोर है तो उसको मजबूत करना होगा। कोई आदमी रोग–दुख से कमजोर हो जाता है, तो इलाज करने से फिर ठीक होता है कि नहीं? मैं पूरा जतन करूँगी कि आपका मन कमजोर नहीं हो। आप अगर ईमानदारी से अपनी कमजोरी बताते रहिएगा तो मैं जरूर आपको सम्हाल लूँगी, लेकिन इस बात के लिए तो आपको भी सावधान रहना होगा।"

बासमती एक जटिल काम को अंजाम तक पहुँचाने पर तुली हुई थी। संयम से सने उसके शब्द सुविचारित थे। मुझे लगा, उसकी बातें तुरत की सोच नहीं थी। उसने बहुत पहले इतना कुछ सोच लिया होगा, जिस दिन उसने मुझे अपनी पीठ खुजलाने के लिए कहा था, बल्कि उससे भी पहले, जब पहली बार उसने अपने दोनों हाथ मेरे हाथों पर रख दिया था, हाथी और मयूर दिखलाने के लिए। लेकिन मैं उसके फैसले से अनजान था। इसका अर्थ यह है कि काम करने के तरीके पर भी उसने जरूर सोचा होगा। उत्सुकतावश मैंने उससे कहा, "और क्या सब सोचकर रखे हुई हैं? अब आगे जो करना है सो बताइए। जो जरूरी होगा, मैं जरूर करूंगा ..... ।"

"सबसे पहले तो एक ही काम करना है। मेरे शरीर पर जहाँ कहीं भी गोदना बना हुआ है, ऊ सभी चित्र को आप कागज पर उतारिएगा। ये चित्र मेरे शरीर के सभी गत्र पर बने हुए हैं। अगर हम लोगों को गोदना–चित्र की किताब बनाना है तब तो सभी चित्र उतारना ही चाहिए। दिक्कत यहीं है। बात है कि मैं खुद इन सभी चित्रों को देख नहीं सकती हूँ कि कागज पर उतार लूँ नही तो आपको इस झंझट में नहीं फँसाते ..... ।"

मैं भी अपने अंदर की हिचक निकाल चुका था। मैंने कहा, "यह कोई झंझट या दिक्कत की बात नहीं है। आपने जो कुछ सोचा है, वैसे ही काम होगा। मुझे अगर कहीं कठिनाई होगी तो मैं आपको बताऊँगा। मैं आपको इतना ही बता सकता हूँ कि बिना किसी गड़बड़ी के यह काम पूरा होगा।"

वह उत्साहित होते हुए बोली, "अब मुझे पहले लौंगलत्ती वाली बिध पूरा करने दीजिए, जिसके लिए आप मिठाई लाए हैं।"

"यह बिध क्या होता है?"

"यह बात तो हम पहले बता दिए थे.... भूल गए? यह साथी लगाने की बिध है.... आपने एक बार पूछा था कि जिसके हाथ में लौंगलत्ती वाला छाप नहीं रहता है ऊ कैसे साथी बनाता है तो मैंने क्या कहा था?.... दोनों आदमी खड़ा होकर पीठ में पीठ सटाएगा और उलटे हाथ पकड़कर कहेगा...'संगी–साथी लग जाए, नाम–नाम छूट जाए ....याद पड़ा कि नहीं?"

"हाँ–हाँ, याद है....लेकिन आप तो मेरा नाम पकड़कर कभी बुलाती ही नहीं हैं.... अब आप मुझे सखी कहकर बुलाएंगी क्या?"

"जो हमेशा मन और जबान पर चढ़ा रहे उसको कोई नाम लेकर क्या पुकारेगा? आपका नाम तो मेरे मन में ऐसे घोरा गया है जैसे पानी में पानी मिल जाता है.... जैसे अन्न–पानी खून बनकर नस में दौड़ता रहता है.... ऐसा नाम जीभ पर कैसे आ सकता है? न मैं आपको सखी कहूँगी, न आप मुझे सखी कहकर बुलाएंगे .... यह तो एक ठो बिध है, पकिया साथी बनने की बिध.... जैसे शादी–ब्याह की अलग बिध होती है। ब्याह की बिध पूरी करके दो आदमी एक–दूसरे का ठेकेदार बन जाते हैं, मन मिले या नहीं मिले.... मगर सखी वाली यह बिध करने से दोनों के मन की मिलानी ऐसी पकिया हो जाती है कि दोनों के बीच में देह को घुसने की जगह ही नहीं मिलती है। अब जल्दी मुझे यह काम कर लेने दीजिए.... कोई आ जाएगा तो यह काम नहीं होगा....।"

"सो क्यों .... ?"

उसने जवाब नहीं दिया; झट से बाहर गयी, एक झाड़ू लेकर भीतर आयी और बिछावन से नीचे की जमीन को बुहारते हुए बोली, "यह बिध छिपाकर की जाती है.... कोई देखे नहीं.... अगर कोई देख लेता है तो दुबारा करना पड़ता है, किसी बूढ़े पेड़ के पास जाकर, गाछ की गवाही में।" मैं समझ गया। सभी आदिम जातियों का अपना–अपना कर्मकांड होता है, जैसे हिंदूधर्म का अपना कर्मकांड है। हिंदूधर्म का कर्मकांड किसी काल्पनिक देवी–देवता या ग्रह–नक्षत्र के नाम पर किया जाता है और सोना–चाँदी, अन्न–वस्त्र या द्रव्य चढ़ाया जाता है जिस पर ब्राह्मण–पुरोहित का अधिकार होता है। जो इस धर्म–परंपरा से बारे हुए हैं, जो सर्वहारा हैं, जिनके पास अर्पित करने को कुछ है ही नहीं, वे प्रकृति की गवाही में अपना कर्मकांड पूरा करते हैं।

इतनी देर में बासमती ने घर बुहार लिया था। वह बाहर से एक चटगुनी लाकर रखी और मुझसे बोली, "अब आप चटगुनी पर पूरब मुँहे खड़ा होइए.... मैं आपकी पीठ में सटकर पच्छिम मुँह खड़ी होती हूँ और आपकी तरफ हाथ बढ़ाऊँगी तो आप पकड़ लीजिएगा।" इतना बोलकर वह बाहर गयी, हाथ धोयी और आँचल से पोछकर अपनी कलाई पर गोदी हुई लवंग–लत्ती दिखलायी। उसके गड्डा वाली लत्ती हूबहू असली लग रही थी, हरियौन–काले रंग की करमी की लत्ती सी लहलहाती। मैं चटगुनी पर पूरब मुँह खड़ा हो गया। बासमती भी मेरी पीठ में पीठ सटाकर खड़ी हो गयी, ऍड़ी से ऍड़ी सटायी और मेरी ओर उलटे हाथ बढ़ायी। मैंने अपने हाथ पीछे कर उसकी कलाई पकड़ ली। उसने कहा, "अब मेरे साथ बोलिए .... लत्ती में लत्ती सट जाए, नाम–नाम छूट जाए .... ।"

उसने तीन बार मंत्र की तरह उच्चारण किया, मैंने भी वैसा ही किया। उच्चारण पूरा होने के बाद उसने कहा, "बस..... हो गया..... अब मुँह मीठा कराइए..... " लेकिन मैं उस सुखद स्पर्श से इतनी जल्दी पृथक होना नहीं चाहता था। मैंने कहा, "कुछ देर ऐसे ही रहिए..... ।" उसका नितंब मेरे नितंब से सटा था, ऐंड़ियों से ऐंड़ियाँ सटी थीं और दोनों की कमर से ऊपर नतोदर भाग के विवर जैसा रिक्त भाग किसी नक्षत्र–मंडल के ब्लैकहोल जैसा हो गया था जिसके गुरुत्वाकर्षण से मेरा संपूर्ण अस्तित्व कहीं खिंचा चला जा रहा था। क्षण भर मैं उस अनुभव में खोया रहा होगा कि उसने पूछा, "कैसा लगता है..... ?" मैंने कहा, "मैं यहाँ हूँ कहाँ? कहीं भटक गया हूँ ..... ।" उसने हँसते हुए कहा, "ठीक है..... अब बिछावन पर बैठ जाइएगा तो नहीं भटकिएगा....." और पृथक हो गयी।

उसने हाथ पकड़कर मुझे बिछावन पर बैठाया और दूसरी कोठरी में चली गयी। उधर से एक प्लेट में चार लड्डू लेकर लौटी, आमने–सामने बैठी और हँसते हुए मेरे मुँह में एक रख दिया। मैंने भी उसके मुँह में एक लड्डू रख दिया। दूसरी बार भी दोनों ने एक–दूसरे को खिलाया। खाने के बाद उसने कहा, "अभी पानी नहीं पीना है..... गाँव–देहात में लोग गुड़ खाकर यह बिध करते हैं..... इस बिध का मतलब यह है कि दोस्ती का यह संबंध सब दिन मीठा रहे..... ।" वह बहुत आनंदित थी। मैंने उसके गाल को अपनी उँगली से छू दिया। इस छुवन का उसने हँसकर स्वागत किया, मैं भी खूब हँसा।

हम दोनों के लिए वह अत्यंत आनंदमय क्षण था। मैं यद्यपि कि उसीके रंग में रंगा था, लेकिन मैं उस समय भी दुविधा में था। मैं उसके जैसा पाक–साफ नहीं था। मेरे मन में कामुकता के प्रति आकर्षण उसकी समझदारी भरी बातों से भी कम नहीं हुआ था जबकि वह महज मेरी भलमनसाहत पर भरोसा करके विशुद्ध प्रेम की बुनियाद रख रही थी। वह देह की नींव पर संबंध का एक ऐसा किला खड़ा करना चाहती थी जिसके गारा–चूने में दैहिकता का लेशमात्र भी योग नहीं था, किंतु मैं दैहिकता के संसर्ग से असहज हो उठता था। मैं अपनी कमजोरियों को तो समझता था लेकिन मुझे उसके संयम पर भरोसा था और उसीके भरोसे आगे बढ़ता जा रहा था। उसने मेरे दोनों हाथों को अपने हाथों में अंजलि की तरह लिया और चषक के जैसे होंठों से लगा लिया। उसकी आँखें मुँद गयीं, लगा जैसे वह वास्तव में कुछ पान करके अघा गयी थी। मैंने उसकी निर्दोष भावुकता को महसूसा और उसकी तुलना में अपनी मानसिकता को सोचकर लज्जित हुआ। उसने उत्साहित स्वर में कहा, "आज हम दोनों ने जो संबंध बनाया है वह हमेशा बना रहे। खुशी के इस मौका पर एक दो गीत हो जाता तो सब बिध पूरी हो जाती..... ।"

"मैं तो आपके गीत की प्रतीक्षा करता ही रहता हूँ। सो हो जाए तो एकदम महोच्छव हो जाएगा..... ।"

"आज मैं विद्यापति का गीत गाती हूँ। यह गीत मेरी नानी जितने राग–तान से गाती थी मैं वैसा नहीं गा सकती हूँ, फिर भी उसको प्रणाम करके आपको सुना रही हूँ..... नानी माफ करना..... ।" वह कुछ पल मूँड़ी झुकाकर स्थिर रही। शायद गीत याद कर रही थी, फिर उसके होंठों पर स्मिति की एक आभा कौंधी और वह गाने लगी —

"दुरहि रहिअ, करिअ मन आन, नअन पिआसल हँटल न मान।
हास सुधारस तसु मुख हेरि, बाँधलेंओ बाँध निवी कत बेरि।
कि सखि करब धरब कि गोय, करवि मान जौं आइति होय।

धसमस करय रहओं हिय जाँति, सगर सरीर धरब कत भाँति।
गोपहि न पारिअ हृदय उलास, मुनलओ बदन वेकत होअ हास।
भनइ विद्यापति तोर न दोस, मूखल मदन बढ़ावय रोस।"

यह गीत मैंने पहले नहीं सुना था। गीत की टेर उसकी नानी के बंगला टोन से भींगी थी या विद्यापति की अपनी ही शुद्ध टेक थी सो मैं नहीं समझ पाया, किंतु गीत का जो अर्थ मैं समझ पाया उसमें मुझे अपना ही द्वन्द्व दिखा। जैसा ही गीत का भाव, वैसा ही स्वर–माधुर्य। गीत के रंग में रंगी उसकी भावुकता चासनी बनकर मेरे मन पर ऐसे पसर गयी थी कि वहाँ से उठना कठिन हो रहा था। मगर उसे समय का भान अवश्य रहता था। उसने समय की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा, "आज आपको बहुत अबेर हो गया। आपका भोजन भी ठंढा हो गया होगा। क्या कीजिएगा?"

यद्यपि कि मेरी कठिनाई का विचार करके वह नहीं चाहती थी कि और अधिक मैं वहाँ रुकूँ, लेकिन मुझे लगा कि वह कुछ और बतियाना चाहती थी। मैंने उसके मन का अनुमान करते हुए कहा, "जाना तो है ही ..... इसका कोई उपाय नहीं है..... पाँच मिनट और रह लेता हूँ।..... मैं एक बात नहीं समझा! आपने उस समय बताया कि साथी लगाने वाली बिध दूसरों से छिपाकर की जाती है, सो क्यों?"

"छिपाकर इसलिए की जाती है क्योंकि यह मन की मिलानी वाली बिध है। किसी की नजर नहीं लग जाए, शायद इसलिए छिपाकर किया जाता है। वैसे बाद में तो सब जान ही जाते हैं। दोस्ती हो जाने के बाद दोनों संबंधी हो जाते हैं, जैसे कोई कुटुंब होता है। घर में शादी–ब्याह होने पर, चाहे पर्व–त्योहार में न्योता–हँकार जाता है, सनेस जाता है। सब कुछ कुटुंबी जैसा ही होता है..... तब अपने दोनों की दोस्ती में कुछ मुश्किल बात तो जरूर है..... ।"

"सो क्या मुश्किल है..... ?"

वह कुछ सोचते हुए बोली, "मुश्किल यही है कि आप पुरुष हैं और मैं लड़की हूँ ..... । स्त्री–पुरुष में तो सही में अपने तरफ दोस्ती नहीं देखती हूँ लेकिन बाहर में ई होता है। कलकत्ता में भी होता है। अपने इधर लड़का–लड़की में जो होता है उसको दूसरी चीज कहा जाता है..... ।" इतना बोलकर वह शरमा गयी।

मुझे उसकी बातों से आनंद आ रहा था। मैंने पूछा, "गाँव–देहात में लड़का–लड़की की दोस्ती को क्या कहा जाता है?" उसने फुसफुसाकर कहा, "उसको परेम कहा जाता है..... औरत लोग कहती है कि फलाँ लड़का से फलाँ लड़की फँस गयी..... लेकिन परेम छिपाकर रखा जाता है..... किसी को पता नहीं लगे ..... किसी को पता लग जाने से हल्ला हो जाता है ..... गाँव में तो मारा–मारी हो जाता है..... खून–खराबी तक हो जाता है..... ।"

इस बात को मैं ठीक से जानता था और अपने गाँव में मार–पीट होते भी देखा था, लेकिन उसके कहने का ढंग ऐसा था कि सुनने में बहुत अच्छा लगता था। मैंने उसे और भी उकसाते हुए पूछा, "सो मारा–मारी क्यों होने लगती है?"

उसने मेरी ओर झुकते हुए समझाकर कहा, "बात है कि परेम में लोग सब कुछ करने लग जाते है.... खराब काम भी..... ऐसा नहीं न करना चाहिए..... इसीसे उसको नजाएज कहा जाता है ..... ऐसा होने लगेगा तब शादी–ब्याह का क्या मोजर रहेगा? ब्याह का तो रिवाज ही खतम हो जाएगा! उसी रिवाज को बचाने के लिए मारा–मारी होता है। लेकिन अपने दोनों आदमी में तो ऊ काम होगा नहीं, इसीलिए मैं दीदी को बता दूंगी।"

"दीदी को क्या बता दीजिएगा?"

"यही बात..... अपने दोनों की दोस्ती वाली बात..... मैं दीदी को सब बात बता देती हूँ ..... दीदी आपको बहुत भला आदमी कहती है..... बहुत बड़ा आदमी ..... आप जो हमको इतना मानते हैं सो इससे दीदी बहुत खुश रहती है। अब लौंगलती बिध की बात बता दूँगी तो ऊ और खुश हो जाएगी..... अपना दुनू आदमी में खाली परेम नहीं होगा, काहे कि हम ब्याहता हैं न.....!"

"आप प्रेम माने केवल वही बात क्यों समझती हैं? सभी तरह के संबंध की जड़ में प्रेम ही होता है। किसी को शुद्ध मन से चाहने को प्रेम कहा जाता है। देह का खेल तो बाद की चीज है। यह कोई जरूरी नहीं है कि प्रेम हो जाने से सेक्स भी होता ही है। आप किसी को प्रेम करते देखी भी हैं कि केवल सुनकर ही प्रेम को इतना खराब मान रही हैं?"

"सो तो हम देखे भी हैं और यह भी समझते हैं कि परहेज से रहने पर कोई गड़बड़ी नहीं हो सकती है, लेकिन परेम में मन को बहुत कसना पड़ता है.....मन को समेट के रखना पड़ता है ..... नही तो गड़बड़ी होने का डर रहता है। सो मन अगर काबू में रहने लायक नहीं हो तो उस आदमी को परेम नहीं करना चाहिए। इसलिए हम लोग परेम नहीं करेंगे, खाली दोस्ती करेंगे.....।"

"देखिए, अब तो हम दोनों में दोस्ती हो गयी है। यह दोस्ती सब दिन ठीक से बनी रहे, इसके लिए हम दोनों को प्रयास करते रहना पड़ेगा। आप जो जानती हैं वह मुझे बताइएगा और मेरे लिए जो जरूरी होगा वह मैं करूँगा। मैं आपको इतना ही विश्वास दिला सकता हूँ कि आप जिस बात से परहेज करने के लिए कहिएगा, वह मैं अवश्य करूँगा। लेकिन अब जब बताइएगा नही तो मैं कैसे समझूंगा कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ....."

"सो तो मैं बतलाती लेकिन बोलने में थोड़ा ....."

"अब हमलोगों को कुछ भी बतलाने में लजाना नहीं चाहिए। सो जब लाज ही होगी तो दोस्ती लगाने से क्या फायदा? जब पेट में छिपी भितरिया बात नहीं जान सकते हैं तो भितरिया गोदना कैसे देख सकते हैं?"

"सो क्यों नही देख पाइएगा? इसी काम के लिए तो हम दोस्ती लगाए हैं। आप देखिएगा नही तो कागज पर कैसे उतारिएगा? आप मेरा कोई अंग देख सकते हैं ..... छू सकते हैं ..... गोदना उतारने के लिए आपको जो करना जरूरी हो सो कर सकते हैं, खाली ध्यान रहे कि गलत काम नहीं हो .....।"

मैंने उसे हाथ पकड़कर आश्वस्त करते हुए कहा, "मैं आपको पूरा भरोसा दिलाता हूँ कि कभी भी ऐसा कोई काम नहीं होगा जिसे आप गलत मानती हैं, लेकिन आपके गोदना वाले अंगों को छूने से आपके मन पर कोई असर नहीं पड़ेगा न!"

"इसके लिए आप निश्चिंत रहिए..... आप कुछ करिएगा, उससे मेरा मन बिगड़ने वाला नहीं है मगर हमको मालूम है कि एक ठो चीज होने से परहेज रखना पड़ेगा.....सो परहेज बना रहे तो मन नहीं बिगड़ेगा..."

"आप बताइए, वह कौन बात है..... "

"वह स्वाँस वाली बात है..... जब लड़का–लड़की में यह बात सब होती है और लड़का का मन तेज हो जाता है तो उसकी नाक से गरम साँस निकलने लगती है। ऊ साँस जो लड़की के मुँह पर पड़ जाता है तो लड़की का मन भी बिगड़ने लग जाता है। हमको जब मंडलजी का लड़का पाँजा में कस के गाछ में अड़ा दिया तो शुरू में हमको बहुत तामस चढ़ा, लेकिन जब उसका गरम साँस मुँह पर पड़ने लगा तो मेरा भी मन होने लगा..... इसीसे हम कहते हैं कि साँस का परहेज करना पड़ेगा.....।" वह अपनी ही बात से इतना लजा गयी कि चादर में मुँह ढँककर दूसरी ओर घूम गयी।

मुझे उसकी निश्छल बात से इतनी हँसी आयी कि वह भी हँसते–हँसते लोट–पोट हो गयी। काम–क्रिया की यह सामान्य परिस्थिति है, किंतु मैं इस तकनीकी बात से बिलकुल अनभिज्ञ था। उसकी बात से मेरा ध्यान मैथिल ब्राह्मणों में प्रचलित एक वैवाहिक बिध की ओर गया जिसमें वर की नाक पकड़कर उसे वेदी के चारों ओर घुमाया जाता है। मैंने अनुमान लगाया कि शायद यह स्वाँस नियंत्रण का कोई यौगिक अभ्यास है; जिस पुरुष को स्वाँस पर जितना नियंत्रण, वह इस क्रिया में उतना धैर्यवान रहता होगा। मैं पिछले तीन वर्षों से विवाहित जीवन में था, किंतु मुझे इसकी जानकारी नहीं थी जबकि बासमती इस क्रिया से बिलकुल अछूती थी फिर भी उसे कामक्रिया में स्वाँस की भूमिका का ज्ञान था, चाहे जिस रूप में हो। मुझे पहली बार अनुभव हुआ कि कामक्रिया केवल देह रगड़ने का खेल नहीं है बल्कि एक तरह का जटिल योगाभ्यास है, जिसके संपादन में स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक सचढ़ होती हैं। वे लोग कामचर्या को कला और विज्ञान दोनों रूप में लेती हैं जबकि पुरुष लोग इस चर्या पर मात्र अपने सामाजिक अधिकार के कारण काबिज रहते हैं।

मुझे सोच–विचार में फँसा देखकर बासमती ने पूछा, "सोचते–सोचते कहीं दूर चले गए क्या?"

"दूर तक कहां जाएँगे? मुझे बहुत बात समझ में ही नहीं आती है ..... खैर, आप जो कुछ बता रही हैं, उससे मैं बहुत सीखता हूं। आप अगर अपना अनुभव बताइएगा तो इससे दोनों को फायदा होगा .....।"

"एक ठो बात तो मैं पक्का–पक्की मान रही हूँ कि अगर देह का सब गोदना कागज पर उतारना है तब तो पूरा शरीर आपको दिखलाना ही पड़ेगा..... और उस जगह पर हाथ नहीं लगाइएगा तो कागज पर खाका कैसे बनेगा.....? बहुत बार ऐसा भी होता है कि छाप ठीक से लौकता नहीं रहता है तब छाप को ठीक से उगाने के लिए वहाँ पर दो बूँद तेल लगाकर मलना पड़ता है..... ई सब बात से हमको कोई हरज नहीं है, खाली एक ठो बात का परहेज करना पड़ेगा ..... मुँह से ऊ काम सब नहीं कीजिएगा ..... किसी हालत में नहीं.....।"

मैं उसकी यह बात समझ नहीं पाया। मुझे लगा कि साँस और चुंबन की बात फिर से दुहरा रही है। मैंने उससे खुलासा जान लेने की गरज से पूछा, "आप चुम्मा की मनाही कर रही हैं न ....!"

उसने मुँह पर लाज–मिश्रित मनुहार का भाव लाते हुए कहा, "नहीं ओ .... चुम्मा और साँस वाली बात तो पहले ही हो गयी .... हम मुँह से भी ऊ खेल करते देखे हैं .... सो बता रही हूं कि नहीं करना है.."

मैं वास्तव में ऐसा कुछ नहीं जानता था। उसकी बात से मैं उलझन में पड़ गया। मुझे कहना पड़ा, "मैं आपको कसम खाकर कह सकता हूं कि ऐसा कोई तरीका मुझे पता नहीं है। मुझे लगता है कि जान–अजान कहीं कोई गलती न हो जाए, इससे अच्छा है कि आप जो देखे सो बता देती तो अच्छा रहता .. ..।"

उसने कहा, "आपको कसम खाने की जरूरत नहीं है। सच्चा आदमी मुँहे से पहचाना जाता है। आप ऊ आदमी नहीं हैं जो धोखा देता है। मैं भी आपसे कुछ छिपाना नहीं चाहती हूं। छिपाना ही रहता तो आपसे दोस्ती काहे करते? हीरा डोम ठीके गाते हैं कि हरिजन का कोई भगबान नहीं होता है। मेरे तो साथी और भगबान दोनों आप ही हैं। आपसे लाज क्या?"

वह कुछ देर चुप रही फिर बोलना शुरू किया, "मैं जो बताने जा रही हूं सो भौजी और भभिछना के बारे में है। हम तो पहले ही बताए थे कि हमारे और भौजी के घर के बीच में एक ठो टाट है और भौजी के घर के पीछे में केरबनी है। पांच–सात ठो पेड़ केला और नरकट का जंगल .... काकी उस केरबनी को झाड़–बुहार के एकदम साफ रखती है और दिन में चटाई रख के वहीं आराम करती है। हमलोग भी रात–बिरात निकास के लिए उधरे जाते हैं। ऊ जगह साफ–सुथरा तो है ही, केला के पत्ता से झँपा के एकदम एकौंझ रहता है। भौजी और भभिछना वहीं पर निचिंत से सब करम करता था। एक रात हम पेसाप करने के लिए उधर गए तो अनचोके दोनों पर नजर पड़ गयी। भभिछना नंगे खड़ा था और भौजी मुँह से कुछ कर रही थी। ई सब देखकर मेरा मन ओकियाने लगा। हम दबे पैर वहां से भाग आए। फिर एक रात उधर गए तो देखे कि भभिछना भी मुँह से वैसा ही कर रहा था। सो देखकर मेरा मन एकदम घिनघिना गया। किसी तरह दम साधकर वहां से भागे। दो–तीन दिन बाद जब भौजी मिलने आयी तो हम उसको बहुत डांटे। वह मुझे सब बात बता देती है। हम जब उसको कहे कि तुमको शरम नहीं लगता है तो डर भी नहीं होता है ....? वहां जो कोई देख लेगा तो क्या करेगा सो जानती हो? तो ठसक के साथ ऊ हमसे बोली, "उस जंगल में जो कोई हमको देखने जाएगा उसको साँप नहीं डस लेगा? फिर जब हम उससे पूछे कि मुँह से गंदा काम क्यों करती रहती हो तो ऊ बोली, 'बुच्ची, तुम अभी नहीं समझोगी .... मुँह से भी होता है।' .... आगे हम कुछ नहीं बता सकते हैं, लेकिन आपसे एतना ही निहोरा करेंगे कि भभिछना तो गुंडा–अबारा है .... आप उसके जैसा कोई काम नहीं कीजिएगा, नही तो दूसरे दिन मेरा मरा हुआ मुँह देखिएगा ....।"

इतना बोलकर बासमती दूसरी ओर घूम गयी। मैंने उसका हाथ पकड़ते हुए उसे आश्वस्त किया और कहा, "किसी आदमी के जीने का उदेस क्या होता है, उसी मुताबिक वह कोई काम करता है। हम लोगों के जीने का उदेस गलत काम करना नहीं है। आप मेरे व्यवहार को लेकर कोई चिंता नहीं कीजिए ..... तब हम लोगों को जो काम पूरा करना है, वह बहुत कठिन है..... बात है कि किसी औरत की खुली देह देखना, उसे छूना या सहलाना किसी पुरुष के लिए आसान काम नहीं होता है..... ऐसा करने पर भी मन में कोई गंदगी

नहीं आवे, सो तो किसी पुरुष के लिए बहुत मुश्किल बात है। बड़े–बड़े ऋषि–मुनि की तपस्या तो स्त्री–देह की सुंदरता से ढह गयी, मैं किस खेत की मूली हूँ.... लेकिन आपको घबराना नहीं है।"

"अच्छा आपको एक ठो उपाय बताबें .....? मेरी नानी कहती थी कि मन में जब गुस्सा चढ़ जाए या कोई खराब बात आने लगे तो आँख मूँद के खूब लंबा साँस लेना चाहिए और साँस को रोककर धीरे–धीरे छोड़ना चाहिए। दो–तीन बार ऐसा करने से मन मजबूत हो जाता है। ..... वैसे आप भी कउनो साधारन आदमी नहीं हैं। मेरी दीदी कहती है कि आपके जैसा आदमी आगे जा के गांधीजी बन जाता है। ऊ बनना जिनगी की बहुत बड़ी बात है। जी–जांघ समेट के, मन–चित मार के कोई आदमी बड़ा बनता है। आपका नाम हो जाएगा तो मेरा भी जीवन तर जाएगा। हम कौन सुंदर हैं जो उसके लिए एतना बड़ा जस गमाइएगा, ...!"

"मैं आपकी बात समझ रहा हूँ। गांधीजी बनना तो बहुत दूर की बात है, उनके रास्ते पर चलकर लोगों का कुछ भला कर लें तो भी मन में संतोष होगा। मैं बहुत बड़ा आदमी बनने का सपना लेकर नहीं चल रहा हूँ। मैं तो समाज के दुखी लोगों की कुछ मदद भर करना चाहता हूँ। इस प्रयास में मैं पहले भी लगा था, लेकिन उस समय लोगों की मदद के लिए मेरे पास कोई साधन नहीं था। अब आपने जो रास्ता दिखलाया है उसके लिए आप अपना अनमोल साधन भी दे रही हैं। इसका मतलब हुआ कि अगला काम आपके ही नाम! लोग कहते हैं कि किसी बड़े काम में जो भी पुरुष सफल हुए हैं, उस सफलता के पीछे किसी न किसी औरत का हाथ होता है। पता नहीं, यह सब कैसे हो जाता है, लेकिन जगिया की एक ठो बात याद आ रही है। मैं उसकी दादी के काम देखकर जब आश्चर्य करता था तो वह कहती थी कि अगर कोई सुंदर स्त्री दयावान भी हो तो ऐसे कितने बड़े काम वह आसानी से कर लेती है जो दूसरों के लिए बहुत भारी होता है। आपमें दोनों खूबी है। आप सुंदर भी हैं और दयावान भी, लेकिन ईमानदारी की बात है कि मेरे मन में एक ठो ऐब है। अब आपको बताने में कोई हर्ज नहीं है इसलिए बता देता हूँ। आपके यहां आते दो ही दिन हुए थे। उस समय आप गोदना के घाव के चलते ब्लाउज नहीं पहनती थीं; आँचल से ही देह झाँप लेती थीं। एक सुबह किसी बात पर आप जोर से हँस रही थीं कि आँचल का खूँट खुल गया और आपका ऊपर वाला देखार हो गया। हम देख लिए। उतना सुंदर वह चीज मैंने पहले कभी नहीं देखा था, सो दो–तीन दिन तक उस बारे में मैं अनाप–शनाप सोचता रहा। बाद में मुझे बहुत अफसोस हुआ..... "

मेरी बात सुनकर वह लजा गयी। उसका मुँह एकदम ललोन हो गया और पलकें माटी के अर्धचंद्राकार ढक्कन की तरह अधमुँदी हो गयीं। उसने दूसरी ओर घूमकर कहा, "आप जिस समय की बात बता रहे हैं सो मुझे पता है..... मुझे यह भी पता है कि आपने देख लिया था। इसके लिए आपको अफसोस करने की जरूरत नहीं है। ई सब देखा–देखी का खेल ऐसे ही चलता रहता है। आप जान–बूझकर थोड़े देखने गए थे, आपको अनचोके में देखा गया..... और पढ़ा–लिखा आदमी देखेगा तो बहुत कुछ सोचबे करेगा। तब बात है कि कोई आदमी फुलबारी में रंग–बिरंग के सुंदर फूल देखता है तो क्या करता है? सुंदर फूल देखकर वह खुश होता है, लेकिन फूल को मचोड़कर मुँह में चबाने नहीं लगता है। ऐसा ही करना चाहिए। ... .. सुंदरता तो देखने की चीज है ही ..... देखने में कोई हरजा थोड़े है!"

उसकी बात सुनकर एक बार फिर मैं उसके आगे कमतर महसूस कर रहा था। रात बहुत अबेर हो गयी थी। बाहर में मौसम भी बहुत खराब होते जा रहा था। अब मेरे पास बात बढ़ाने को शब्द नहीं बचे थे। मैं उसकी उदारता और विचक्षणता से मुग्ध था। मैं विदा होने के लिए खड़ा हुआ तो वह भी मेरे साथ ही

खड़ी हुई और हाथ पकड़ते हुए बोली, "हम और आप आज से दोस्त बन गए, मगर मैंने आप पर बहुत तरह की मनाही लाद दिया सो मुझे अच्छा नहीं लगता है। असल में यह मनाही मेरे लिए है.... मैं नानी की बात पर चलना चाहती हूँ लेकिन इससे आपको अगर कोई तकलीफ हो जाए तब तो सब धरम–करम बेकार हो जाएगा। इसलिए आपको जो अच्छा लगे सो कीजिएगा..... मेरा मन और शरीर आपके लिए सब तरफ से खुला रहेगा ..... बाँकी बात आप पर ..... ।" मैंने उसे कुछ नहीं कहा। वह मुझे विदा करने आँगन के मुँह तक आयी।

मैं बासमती के पास से चला तो आया था लेकिन उसके आज के गीत की मिठास अभी तक मन में वैसे ही रची–बसी थी। मुझे लगा, उसका गायन शायद मेरी मनस्थिति को ही आइना दिखलाने के लिए था। इस गीत में विद्यापति ने प्रेम की प्रारंभिक अवस्था में उठने वाले उद्वेगों का चित्रण किया है। गीत में नायिका अपनी सखियों से कह रही है कि वह अपने सामर्थ्य भर प्रेमी के सामने से हँटकर ओट में खड़ी हो गयी और मन को टालकर दूसरी ओर ले जाने का प्रयास करती रही, किंतु दर्शन के प्यासे नयन मानने को तैयार नहीं हुए। प्रेमी के मुँह से हँसी का अमृत जो छलक रहा था, उसका आस्वादन करने के लिए वे बेचैन थे। मन मान नहीं रहा था और आँखें बरज नहीं रही थीं। आखिर हारकर उसने आँखें मूँद ली। उसने सोचा कि नहीं देखने से मन मान जाएगा, लेकिन हो गया उलटा। आँख यदि खुली रहतीं तो हो सकता है कि कुछ समय के लिए दृष्टि इधर–उधर भी टल जाती मगर आँख मूँद लेने से तो लोग हृदयस्थ हो जाते हैं। भीतर के उस संसार में छल नहीं है। वहाँ एक बार जिसकी छवि स्थापित हो जाती है, उससे मन का कोई भाव छिपाना संभव नहीं होता है। वह अपने मन पर हठ के पाथर रख लेती है, तथापि उद्वेग से समूचा शरीर काँपने लग जाता है। वह नहीं जानती है कि अपने शरीर की दलकन को कैसे थिर करे। अपनी सक भर उसने सब प्रयास करके देख लिया, आँख मुँदी होने पर भी हँसी के साथ हृदय का भाव प्रकट हो जाता है। विद्यापति उस नायिका को परबोधते हुए कहते हैं कि इसमें उसका कोई दोष नहीं है; उसके पाहुन कामदेव भूखे हैं और भूखे आदमी का तामस तो अधिक होता ही है। यह सभी उपद्रव उसी अतिथि के क्रोध से हो रहे हैं। इसका उपाय यही है कि भूखे कामदेव को संतुष्ट कर दीजिए, सभी उपद्रव शांत हो जाएंगे ..... ।

विद्यापति के भाव और बासमती के स्वर–माधुर्य में मैं डूबा तो था, लेकिन पेट की आग तो बिना कुछ खाए शांत नहीं होती है। ढँककर रखा भोजन ठंढा होकर बिलकुल नीरस हो गया था, मगर दूसरा उपाय नहीं था। जो रुचा सो खा लिया। खा–पीकर लघुशंका के लिए खुली जगह पर गया तो बाहर के मौसम का पता चला। भयंकर सीत–लहर में सब कुछ धुँधला हो गया था। पेशाब करके उठ ही रहे थे कि एक कुसंयोग हो गया। शीत के प्रकोप से लगा कि पीठ होकर देह में कुछ पैठ गया और उसके साथ ही समूचा शरीर थरथराने लगा। हड़बड़ाते हुए कमरे की ओर भागा, लेकिन बिछावन तक आते–आते लगा जैसे देह अकड़ गयी। मैं समझ गया, ठंढा मार दिया था। अब क्या उपाय करें? औफिस में मात्र कांछा रसोइया था। औफिस के सभी हाकिम, इरसाद अहमद, विश्वंभरजी और असलम बाहर के काम से सात–आठ दिनों के लिए दिन में ही चले गए थे। कांछा भी सुबह में छुट्टी पर चला जाएगा। मुझे कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। धीरे–धीरे तबीअत बहुत खराब होती जा रही थी। दर्द से समूचा शरीर रस्सी की तरह ऐंठने लगा। इतनी रात में कहीं जाना असंभव था। कांछा बाहर के रसोईघर में सोता था। वहाँ तक जाना भी कठिन था। अपनी समझ से होम्योपैथी की दवा तो ली, लेकिन उससे कोई लाभ नहीं हुआ। वह रात बहुत कठिन थी, छटपटाते ही बीती।

10

दुख की एक भयानक रात तो किसी तरह बीत गयी मगर कष्ट और बढ़ता ही जा रहा था। पीठ, कमर और छाती में भयानक टीस उठती थी और मन बेहोश हो जाता था। देह–हाथ चलाने पर लगता था जैसे किसी ने दर्द की फाल घुसेड़ दिया हो। तीन बजे भोर से ही दस्त और ओक जारी थी। देह का पानी हर कै–दस्त के साथ बाहर निकलता जा रहा था। अब तो शरीर बिलकुल बेकाबू हो गया था। किसी तरह से रसोईघर तक गए, कांछा को खोजने। संयोग अच्छा था कि वह मिल गया। उसे सभी बात समझाकर दवा लाने के लिए कुछ रुपए दिए। करीब आधे घंटे बाद वह कुछ दवा और बिस्कुट ले आया। उसने एक बार दवा खिला दी और अपने गाँव सिंधुली के लिए विदा हो गया। उतने बड़े लारी आफिस में मैं अकेला रह गया था।

दवा खाने से इतना फायदा तो हुआ कि शाम के चार बजे तक दस्त और कै रुक गया, लेकिन दूसरी तकलीफ और बढ़ ही गयी थी। जैसे–जैसे मेरी तबीअत बिगड़ रही थी, वैसे ही मौसम भी बिगड़ रहा था। हर तरफ कुहासा इतना घना हो गया था कि चार बजे ही रात जैसा अंधेरा पसर गया। पाला बरखा की तरह बरस रहा था। बुखार से शरीर धधक रहा था लेकिन ठंढा के प्रकोप से भीतर में सिहरन इतनी बढ़ गयी कि शरीर दलक रहा था। विचित्र तरह की कँपकँपी आ गयी थी। कभी–कभी ज्वराधिक्य और निर्जलता के कारण चेतना लुप्त–सी हो जाती थी, किंतु मैं मानसिक रूप से सचेत था। मुझे होस–हवास रहते कोई उपाय कर लेना था। वहाँ अकेले रहना खतरनाक होता। वहाँ से दरभंगा जाने का न तो सामर्थ्य था और न उस समय कोई सवारी मिलती। तब कहाँ जाएँ? कहता है, 'धैरज धर्म मित्र अरु नारी, आपत काल परेखिय चारी।' ध्यान बासमती की ओर गया। सोचा, वैसे भी ये लोग बहुत नेक हैं। अब तो सत–बद के साथ उससे दोस्ती भी लगा ली है। मन में तय कर लिया, वहीं चले जाएंगे। जाने से पहले एक बार शौचालय से हो लेना चाहे। शौचालय कमरे से पचीस कदम दूर पर था। उधर से लौट रहे थे कि तभी लड़खड़ाकर गिर पड़े। वह झोंका जोरदार था। कितनी देर तक वहीं पड़े रहे इसका अनुमान तो नहीं हुआ लेकिन मस्तिष्क तब भी सचेत था। मन में साहस बटोरकर खड़ा हुए और हिम्मत के साथ कमरे में आ गए। माथा घूम रहा था। मैं समझ गया, अब देर करना घातक होगा। मैं झटपट वहाँ से निकलने की तैयारी में लग गया। पहले रुपयों वाला बटुआ कुर्ते की जेब में रखा। इसके बाद मुझे कंबल और खादी की मोटी चादर लेना था; दवा का ठोंगा और गमछा कंधे पर रखना था। माथा और कान में टीस उठ रही थी। गमछे से माथा और गला बाँधे। लुंगी जो पहने थे सो वही पहने रह गए। पहले कंधे पर चादर रखे फिर कंबल से पूरा शरीर ढँके, दवा वाला ठोंगा और चाबी लिए और दरवाजा बंद करके ताला लगा दिए। उसी समय पीठ और जांघ में भयानक दर्द उठा। कुछ देर तक बंद दरवाजे से ओठंगकर बैठे रहे। तबीअत बेसम्हार होती जा रही थी मगर समझ रहे थे कि देर करना खतरनाक है। चलने का साहस नहीं हो रहा था मगर जान बचाने के लिए चलना तो पड़ेगा ही। साहस भी प्राण को पलटा लेता है। किसी तरह उठे और चलने लगे। साहस पर बढ़ते रहे। हर कदम के बाद भरोसा बढ़ रहा था। कुछ दूर चलते थे और सोचते थे कि अब कम ही चलना है। प्राण कंठगत था। आखिर उसके आँगन के द्वार तक आ गए। अब उनकी बातचीत भी सुनाई पड़ने लगी। रासबती कुछ बोल रही थी और दोनों बच्चे हँस रहे थे। अब बस, थोड़ा चलना है। अब चला नहीं जा रहा था, मगर चलते रहे। बीच आँगन में पहुँचे होंगे कि पैर लड़खड़ा गए। माथा घूम गया और मैं तलमलाकर वहीं गिर पड़ा। उन लोगों के लिए

अनहोनी थी। शरीर अशक्त हो गया था मगर चेतना फिर भी बाँकी थी। "माट्साएब माट्साएब" कहकर रासबती दौड़ी.... , "दीदी गे दीदी" कहकर बासमती दौड़ी। पता नहीं कैसे, दोनों बहन मुझे टाँगकर कोठरी में लायी और बासमती के बिछान पर लिटा दिया। मैं इतना समझ गया था कि अब अकेला नहीं हूँ लेकिन मन काबू में नहीं था। मैं समझ रहा था कि बार–बार अचेत हो रहा हूँ, इसलिए उन्हें जल्दी अपने कष्ट का हाल बता दूँ कि इलाज हो सके। मैंने जैसे–तैसे बता दिया कि रात में ठंढा मार दिया..... बहुत दस्त..... बहुत कै..... बहुत दर्द..... देह का दलकना जारी था..... शायद मैं फिर अचेत हो गया।

पता नहीं कितनी देर तक मैं बेसुध पड़ा रहा कि दर्द की एक लहर से फिर चौंककर जाग गया। इतनी देर में रासबती ने बहुत जुगत किया होगा। मेरी देह पर अपना कंबल, उस पर से बासमती का कंबल और उस पर मोटी चादर रखी थी, लेकिन शरीर भीतर से फिर भी काँप रहा था। कोठरी में दो–दो बोरसी जल रही थी। रासबती मेरे तलवों में पकाया हुआ तेल रगड़ रही थी। बासमती ने अपनी गोद में मेरा सिर रख लिया था और हल्के–हल्के दबा रही थी। दर्द से निकली मेरी कराह ने बासमती को बेचैन कर दिया। रासबती ने उसे बोल–भरोस दिया और तेजी से हाथ चलाते हुए मेरी टाँग में तेल मलने लगी। पैर की उँगली से घुटनों तक की मालिश ने मुझे कुछ आराम दिया होगा। मेरी आँख फिर लग गयी।

सिहरन भरी कँपकँपी, भयानक दर्द और उच्च ज्वर ने दस्त और कै से अशक्त मेरे शरीर को अपना अखाड़ा बना लिया था। ज्वर जब बहुत बढ़ जाता था तब मैं अचेत हो जाता था, दर्द जब एकाएक जोर मारता था तो नींद खुल जाती थी मगर सिहरन कभी बंद नहीं होती थी। सिहरन जब बढ़ जाती थी तो शरीर भीतरी ठंढ से कूदने लगता था। इतनी देर में रासबती तीन–चार बार जाफर–काफर जैसी चीज पत्थर पर घिसकर चटा चुकी थी। मेरी हालत बदल नहीं रही थी। अनायास पेट में मरोड़ जैसा उठा। उस मरोड़ से मैं छटपटा उठा। मुझे कुहरते देखकर बासमती रोने लगी। अपनी बहन को रोते देखकर रासबती मेरे सिरहाने आकर उसे परबोधने लगी, "गे बौआ, तू घबराओ नहीं..... हिम्मत से काम लो ..... घबराने से दिमाग काम नहीं करता है ..... इनको कुछ नहीं होने देंगे..... इनको ठंढा मार दिया है ..... पुरुख का हड्डी रूखा होता है, ऊ ठंढा के मार बरदास नहीं करता है ..... तू एक ठो काम कर ..... मुसहरनिया बला उपाय कर ..... बिना लूगा–बस्तर के मुसहरबा को जब ठंढा मार देता है तब ऊ क्या करती है? तू भीतर घुस आ अपना देह सटा के इनकर देह के गरमा ..... हम काढ़ा बना के आ रहे हैं .....।"

बहन को समझाकर रासबती दूसरी कोठरी में चली गयी। मेरी बेचैनी से बासमती बदहवास थी, लेकिन मेरे साथ सोने और मुझे चिपकाकर रखने में वह झिझक रही होगी। बेबसी में वह रोने लगी। तभी मुझे लगा जैसे पीठ में दर्द की कोई लहर घुसी और छाती फाड़ने लगी। मैं दर्द से कुहर उठा, "माँ..... गे माँ.....।" मेरा क्रंदन सुनकर रासबती दूसरी कोठरी से दौड़ी आयी और सिरहाने बैठकर रोती बहन को चपत लगाते हुए क्रोध से बोली, "गे धोंछिया ..... पगली ..... तुमको समझा के कहते हैं सो दिमाग में नहीं घुस रहा है? आदमी जब मर जाएगा तब तू समझेगी..... ?" मरने की बात सुनकर बासमती का धैर्य टूट गया। वह बेहिसाब रोने लगी। रासबती हिम्मत दिलाते हुए उसे चुप करायी और फिर समझाते हुए बोली, "तुम अगर सरम करोगी तो ई कैसे ठीक होंगे? तुम्हारा बहनोइ बीरगंज गया है। हम बच्चा सबको लेकर उधर रहेंगे तो इनके पास के रहेगा? रात–बिरात कुछ हो जाएगा तो क्या करेंगे? जब तक इनकर देह नहीं गरमाएगा तब तक दुलकी नहीं रुकेगा..... ई आदमी तुम्हारा साथी है..... इनकर जान बचाना तुम्हरा धरम है.....तू लाज–सरम छोड़

के भीतर घुस आउर देह के बान्ह के रख.....हम बैदजी के ईहाँ से दबाइ भी ले लेंगे आउर अंडा–दूध सब ले के दौड़ले आ जाते हैं।"

बहन को समझाकर रासबती चली गयी। बासमती ने अपना हाथ मेरे मुँह पर फेरा और धीरे से कंबल में घुसकर मेरे शरीर को कसते हुए रोने लगी। वह रो रही थी सो मैं समझ रहा था लेकिन उसे कुछ कहकर चुप कराता, वह सामर्थ्य मुझमें नहीं था।

पाँच वर्ष पहले भी मुझे ऐसा दुख हुआ था। उस समय मेरा विवाह नहीं हुआ था। माँ और बहनें साथ में ही थीं। माँ अपनी देह लगाकर सोती थी और दोनों बहनें देह पर बैठती थी। तीन–चार दिन के बाद तबीअत सुधरी थी। यहाँ परदेश में अपना परिवार नहीं था, लेकिन जिनके आश्रय में आए वे किसी तरह अपनों से बढ़कर साबित हुए। कहते हैं कि दुख भी कभी–कभी अनमोल चीज दे देता है। रासबती और बासमती ऐसी ही अनमोल थीं मेरे लिए।

रासबती वैद्य से दवा ले आयी थी। कोठरी में आते ही रासबती काम में लग गयी। बासमती ने उससे पूछा भी कि वैद्य ने क्या कहा मगर वह कुछ बोली नहीं, कटोरी को बोरसी पर रखकर काढ़ा बनाती रही। बासमती वैद्य की बात सुनने के लिए उतावली हो रही थी। उसने दुबारा पूछा तो रासबती झल्लाकर बोली, "ई बैदजी पगला गया है..... हमरा कहता था कि इनका ठंढा मार दिया है..... कुच्छो हो सकता है..... तुम लोग से नहीं सम्हरेगा..... किसी के साथ घर भेज दो..... इस बिमारी में बहुत सेवा करना पड़ता है..... देह गरम रखना पड़ता है..... तुम लोग के पास रजाइ–उजाइ नहीं है..... रोगी का घर गरम रखना पड़ता है..... तुम लोग के पास एतना इंतजाम नहीं है..... कुछ हो जाएगा तो हमको नहीं कहना..... ।" इतना बोलकर रासबती चुप हो गयी। मैं सभी कुछ सुन समझ रहा था। बासमती बहुत दुखी तो थी ही, वैद्य की सलाह सुनकर और बेचैन हो उठी। उसने मेरी पीठ को कसकर चिपका लिया। रासबती ने फिर बोलना शुरू किया, "ई बैद समझता है कि दुसाध–मुसहर कउनो आदमी होता है जो बड़का लोक को सम्हार पाएगा?" क्षण भर वह चुप रही फिर उसने बासमती से पूछा, "क्या करोगी, इनको रखोगी कि घर भेज दोगी?" अपनी बहन के इस सवाल के जवाब में वह क्या बोलती? वह रोने लगी। रासबती ने इस बार उसे चुप नहीं कराया, वह भी उसका गला पकड़कर रोने लगी। दोनों बहनों के क्रंदन से मेरे अंदर का बल जागा। मैंने बोलने के लिए सिर उठाया लेकिन लगा जैसे गला बैठ गया था। मैं बासमती की देह पकड़कर सीधा हुआ और गले को खखासते हुए कहा, "ठीक हो जाएगा ..... मैं कहीं नहीं जाउंगा..... आपके पास रहूँगा ..... ।"

मैं पहली बार बोला था। मेरी बात सुनकर दोनों बहनों का धैर्य बँधा। मेरा फैसला जानकर दोनों की हिम्मत बढ़ गयी। रासबती फुरती से उठकर बोरसी पर रखी काढ़ा वाली कटोरी को उतारकर दूसरी कटोरी में ढाला और बासमती को पकड़ाते हुए बोली, "माट्साएब, यह काढ़ा पी लीजिए..... ।" बासमती ने अपनी एक बाँह से मुझे थाम लिया और दूसरे हाथ से काढ़ा पिलाने लगी। अब वहाँ निराशा का दरस नहीं था। कुछ देर के बाद रासबती ने फिर कहा, "माट्साएब, अब हल्दी मिला दूध पी लीजिए।" मैंने कुछ नहीं कहा। रासबती झटपट दूसरी कोठरी में चली गयी। बासमती ने कंबल को ठीक किया और मुझसे चिपक गयी। उसके शरीर की गरमी मेरे लिए संजीवनी थी। मुझे माँ याद आ गयी। कुछ देर में रासबती दूध और एक कटोरी लेकर आ गयी। बासमती ने मुझे दूध पिलाया तो शरीर में लगा जैसे कुछ गरमी आयी। पूरा दूध पी लेने पर उनका मन

भी लगा कि हल्का हुआ। वैद्य ने कहा था कि मुझे घर भेज देना चाहिए क्योंकि ये लोग मेरी उचित देखभाल नहीं कर सकती थीं। इस बात से दोनों बहन हताश हो गयी थी। अब उन्हें लग रहा था कि हताशा की जरूरत नहीं है। मैंने भी उसी होश में एक जरूरी काम कर लेना चाहा। मेरे बटुए में एक हजार से अधिक रुपए थे। उस समय का एक हजार आज के बीस हजार से अधिक रुपए होंगे। मैंने कुर्ते की जेब से वह बटुआ निकाला और रासबती की ओर बढ़ाते हुए कहा, "इन रुपयों से काम चलाइए.....।" रासबती ने बटुआ लेते हुए कहा, "मात्साएब, हम लोगों के पास रुपैया तो नहिंए है, मगर आपकी देखभाल करने लायक हिम्मत कम नहीं है..... ।" इतना बोलकर उसने रुपए निकालकर एक बार देखा फिर बटुए में रखते हुए बटुआ बासमती की ओर बढ़ा दिया, "गे बौआ, ई सम्हाल के रख ले.....।"

मेरी बीमारी तीन दिन और चार रातों तक बनी रही। इस दौरान तरह–तरह की पीड़ा से दग्ध मेरे अनुभव और उन कष्टों से संघर्ष करती दोनों दलित बहनों की स्मृति आज मेरे जीवन की सर्वश्रेष्ठ निधि है, किंतु यदि उनकी अकल्पनीय सेवा मुझे नहीं मिली होती तो उन अनुभवों को बाँटने के लिए मैं शेष नहीं बचा होता। यहीं दो तरह के लोग और दो तरह की सोच का अकुंठ मिलान हुआ था। वैद्य ने रासबती से कहा था कि वह मुझे मेरे घर पहुँचा दे, क्योंकि वैसी बीमारी में मेरी देखभाल उसके सामर्थ्य से बाहर की बात थी। यह उनके दलितपन का अपमान होता यदि मैं उनके पास रहने का निश्चय नहीं करता। मेरे निश्चय ने उनके औकात की तसदीक की और उस विश्वास को बचाने के लिए दोनों बहनों ने अपना सब कुछ दावँ पर लगा दिया; आखिर किसी की जान का सवाल था। रासबती ने अपनी बहन को सिखाया, "जब एक ठो मुसहर बिना लूगा–बस्तर के जाड़े में ठिठुरकर सुन्न पड़ जाता है तो उसकी मुसहरनी कैसे रान से रान और पेट से पेट सटाकर उसकी सिहरन को सिसोह लेती है .... तू भी चिहुँटकर धर ले और अपनी गर्म स्वाँसा से इनकर देह गरमा दे..... ।" रासबती ने जैसा बताया, बासमती ने वैसा ही किया। वह कभी मेरे गात से अलग नहीं हुई। उन तीन दिनों में उसे मेरी साँस से परहेज नहीं था। मेरे ठिठुरे अंगों में उसे अपनी ऊष्मा भरनी थी। अपनी देह जलाकर वह मेरी धमनियों में ऊर्जा भरती रही, उस आँच में कभी पिघली नहीं। ढेरों काम के बीच रासबती अकेली पड़ गयी थी, फिर भी समय कपटकर वह लहसुन से पकाए गर्म तेल से मेरी मालिश करती रही। बोरसी के दहकते ताव से उसके हाथ झाँवर हो गए, मगर उसने मुझे सेंकना बंद नहीं किया। मेरी जान बचाने के लिए दोनों बहनों ने मेरे ऊपर अपनी देह वार दिया, मुझे परपुरुष नहीं समझा। मुझे जीवन देने वाली दोनों बहनों को आज मैं सच्चाई के साथ याद कर लूँ, इससे अधिक मैं और कर ही क्या सकता हूँ?

चौथी रात बुखार उतर गया और देह में कहीं दर्द भी नहीं था, इसलिए गहरी नींद में सोया था कि तभी लगा जैसे पैर की तरफ से एक सर्द लहर–सी उठी और जांघ में समा गयी। मैं एक बार फिर काँप उठा। बासमती भी चौंककर उठ गयी। मैंने उसे बताया तो वह घबरायी नहीं। उसने स्थिर मन से किसी चिकित्सक की तरह मेरे कपार, छाती और पेट पर हाथ फिराया और बोली, "बुखार तो उतर गया है मगर यह ठंढा जो परेशान कर रहा है, इसका उपाय अब करना पड़ेगा..... आप एकदम नहीं घबराइए..... मन को बाँधे रहिए..... ।" वह सावधानी से उठी और तगाड़ी की आग को लहकायी। आग जब लहक गयी तो उसने आँचल के खूँट को गोलियाकर आग पर गर्म करके मेरी ढोंढ़ी सेंकते हुए बोली, "अब बुखार उतर रहा है..... वह जो जगह खाली करेगा, वहाँ फिर तो कुछ आएगा? वही जगह लेने के लिए ठंढ दौड़ लगा रही है..... अब इसकी जड़ काटना पड़ेगा..... इसके लिए ढोंढ़ी से नीचे तक सेंकना पड़ेगा। दीदी कहती है कि ढोंढ़ी में ही कफ पित वात की जड़ होती है। आप एकदम निचिंत रहिए..... अब हम इसका खेलाबेला एकदम समझ गए

है..... ।'' वह किसी ओझा–गुणी की तरह हबर–हबर सेंक रही थी और बोलती भी जा रही थी। वह देर तक नाभि से लेकर पेडू और जाँघ तक सेंकती रही। तीन दिनों में वह कभी मुझसे अलग नहीं सोयी मगर पहली बार मैं उसे उछाह के साथ देख रहा था; आँख मिली तो वह मुस्कान के साथ लजा गयी। उसने तगाड़ी को खिसकाकर बिछावन से दूर कर दिया और कंबल में घुसकर मुझसे चिपक गयी। मुझे लगा, बासमती अपनी निर्मलता से किसी तरह के टोना–टापर जैसा मेरा आध्यात्मिक स्नान करा रही है। मेरा रोग मुझे छोड़कर जाने लगा।

उस सुबह मैं देर से उठा। मन बिलकुल हल्का था। देह में कहीं कोई पीड़ा नहीं थी। दुख का एक भयानक सत्र बीत चुका था। आज का मौसम भी सुहाना था। लोगों ने लंबे समय के बाद भरे–पुरे सूर्य का दर्शन किया था। दुख का कुहरा जब छँटता है तो लोग भूल जाते हैं कि कुछ देर पहले का दुख कितना भारी था; पलक झपकते मन बदल जाता है। यही संसार की माया है। मेरी नींद जब टूटी तब तक पूरे आँगन में धूप पसर चुकी थी। रासबती अपनी ड्यूटी पर चली गयी थी और बासमती मेरे पास ही बैठी मुझे निहार रही थी। मेरी आँख खुली तो पहली नजर उसी पर गयी। वह मुसकिया रही थी। उसने मेरे कपार पर हाथ रखते हुए पूछा, ''अब मन अच्छा लगता है न..... !''

मैंने कहा, ''मन तो अच्छा लगता है लेकिन थोड़ी देर रात जैसे ही रहने का मन करता है ..... ।'' मेरी इच्छा जानकर वह भीतर घुस आयी और पहले की तरह चिपक गयी। कुछ देर तक हम दोनों एक दूसरे को महसूसते रहे फिर उसने कहा, ''ऐसे जो रहते थे सो बिमारी की हालत में ..... आपसे चिपककर मैं अपने देह की गरमी आपके देह में पठा रही थी, जैसे मुसहरवा–मुसहरनी एक–दूसरे को गरमाते हैं..... रोग की हालत में वह एक ठो इलाज था..... अब ऐसे रहना खतरनाक हो सकता है ..... ।'' उसने मेरे मुँह–माथे पर हाथ फेरते हुए कहा, ''अब आप उठ जाइए..... मुँह–हाथ धुला देती हूँ ..... पानी पीकर एक बार चाय पी लीजिए, तब फिर आगे का काम देखा जाएगा..... ।'' इतना बोलकर वह उठ गयी। मेरे ऊपर लदे कंबल, चादर और खेनरा हँटाया और सब कुछ तहाकर दूसरी कोठरी में ले गयी।

मैं जब शौचादि से फारिग होकर ओसारे पर बैठा तो बासमती दो कप चाय लेकर आ गयी। मैं चटगुनी पर बैठा था, वह वहीं पड़ी ईंट पर बैठ गयी। मैंने कप हाथ में लेते हुए कहा, ''इस बीमारी के साथ आप लोगों का उपकार मुझे जीवन भर याद रहेगा।'' उसकी नजरें झुकी थीं मगर ओठों पर स्मिति की रेखा साफ झलक रही थी। उसने मंद स्वर में कहा, ''सो तो बहुत नयी बात सब इस बीमारी में हुई है..... पता नहीं, आप क्या–क्या याद रखेंगे ..... ।''

बासमती ने एक वाक्य में बहुत सारी बातें उँड़ेल दी थीं। मैंने चाय पीने के बहाने तीन दिनों के घटनाक्रम की ओर ध्यान दिया तो लगा कि आधी से अधिक बातें तो मैं जान ही नहीं सकता था। मैं उतना ही याद कर सकता था जितना कुछ सचेत अवस्था में मैंने देखा था, फिर भी जितना जो देखा था वह बेशुमार था, अधिगम्य किंतु अनघ था; बिलकुल निर्दोष। मैंने सोचा, उसने वैसा सब कुछ किया होगा जो मुझे ऊर्जस्व बनाने के लिए आवश्यक रहा होगा। मैं एक बार फिर उनकी श्रेष्ठता से बहुत नीचे था। यहाँ असल में दो तरह के लोग, दो तरह की सोच, दो तरह के सामाजिक दृष्टिकोण और दो तरह की दैहिक समझदारी का एक बिंदु पर मिलान–विमर्श हो रहा था।

इस समय मुझे अपने में खो जाना अच्छा नहीं लगा। यह अवसर था जब मुझे अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहिए था। मैंने बासमती से कहा, "मेरे कारण आप लोगों पर बहुत बोझ पड़ गया। आप दोनों बहनों के कारण मेरी जान बच गयी। आपका उपकार सधाने की बात तो मैं सोच भी नहीं सकता हूं, लेकिन आपकी दीदी का उपकार जरूर मेरे माथे पर चढ़ गया ..... ।"

"दीदी ने आप पर उपकार नहीं किया; उपकार तो उसने मुझ पर किया है जो आपके साथ सोने का हुकुम दे दिया। उसने अगर ऐसा नहीं कहा होता तो हमारे बीच की दूरी पता नहीं कब तक बनी ही रह जाती। उस रात मैंने आपको अंडबंड बातों में लगाकर इतनी देर कर दी कि आप ठंढ की चपेट में आ गए। आपके ऊपर बेमतलब की शर्त थोपकर आपको परेशान कर दिए और इस बीमारी ने एक भी शर्त को साबूत नहीं रहने दिया। असल में गलत मैं ही थी। दोस्ती का संबंध शर्त पर खड़ा नहीं होता है; यह तो दो आदमी की समझदारी का नाता होती है। उस रात आपको इतने परहेज की बात कहकर भी मैं सोच रही थी कि आप शायद बेधड़क होकर मेरे शरीर से सभी गोदना नहीं उतार पाते। आपका संकोच सभी काम आसानी से नहीं होने देता। हालांकि कोई न कोई रास्ता मैं निकाल ही लेती, लेकिन आपकी बीमारी का जैसा इलाज दीदी ने मुझे करने को कहा, उससे मेरा काम आसान हो गया। अब आपके लिए मेरे शरीर का कोई भाग अनजाना नहीं है। मुझे भी अब आपसे छुवाने में कोई झिझक नहीं होगी। ..... आपको भारी कष्ट उठाना पड़ा, मगर अब आप ठीक हो गए हैं तो जो हुआ सो अच्छा ही हुआ..... ।"

हम लोग बतिया रहे थे तभी रासबती आ गयी। मेरा हालचाल जानकर वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने मुझे हिदायत देते हुए कहा, "बड़ा भारी दुख से आप बाहर आए हैं माट्साएब..... अभी जादे बोलने–बतियाने से जरब पड़ेगा..... अभी बढ़िया खानपान अउर आराम जरूरी है।" अभी वह बहुत हड़बड़ी में थी। चार दिन से घर–गृहस्थी का सारा काम गड़बड़ा गया था। रासबती ने बहन को काम की बात बताते हुए कहा, "गे बौआ, माट्साएब को धूप में बिछावन पर बैठाओ आ जल्दी से अंडा–पावरोटी खिला..... मैं सफाई में लग जाती हूँ ..... तू चाय पिला के सब कपड़ा जमा करो..... आज बढ़िया धूप है..... केतना दिन से कपड़ा सब साफ नहीं हुआ है ..... ।" बोलते–बोलते रासबती बकरी खोलकर बाहर ले गयी। बासमती तब तक धूप में मेरा बिछावन लगा चुकी थी। थोड़ी देर में नाश्ता–चाय करके मैं धूप में पड़ रहा। कितने दिनों के बाद देह में धूप लगी थी। गुनगुनी धूप में अलसाकर मैं नींद पड़ गया और तभी उठा जब भोजन का समय हुआ। मैं भोजन कर रहा था और मेरे हर निवाले से बासमती तृप्त हो रही थी। मैंने उसे रात में सिंघी मछली बनाने को कहा।

चार भी नहीं बजा था तभी रासबती एक अढ़िया सिंघी मछली खरीदकर ले आयी। रासबती मछली निकाने बैठ गयी और बासमती मसाले पीसने लगी। साँझ–सबेरे माछ–भात तैयार हो गया तो विचार हुआ कि सभी कोई एक साथ गरमागरम भोजन कर लें। मैं जब से बीमार होकर यहाँ आया था, बासमती ठीक से सोयी नहीं थी। मैं तो बीमार था इसलिए केवल दूध, अंडे और बिस्कुट लेता था, बासमती वह भी लेने को तैयार नहीं रहती थी। अब दुख की वह घड़ी जब बीत गयी तो सभी कोई इच्छा भर खाये और बिछावन पर आ गए।

सोने से पहले बासमती मेरे पैरों में तेल लगाकर दाबने लगी। वह मुझे जाँत भी रही थी और आँघ भी रही थी। मैंने उसे सो जाने को कहा। वह मेरे बगल में आकर पड़ रही और ओढ़ना ओढ़ते ही नींद पड़

गयी। कुछ देर इधर–उधर की बात सोचने के बाद मैं भी नींद पड़ गया। निशिभाग, अधरतिया में एक कुसंयोग हो गया। पेशाब करने के लिए मेरी आँख खुल गयी। उठने के लिए हाथ घुमाया तो मेरे बगल में सोयी बासमती की देह पर मेरा हाथ गया तो मैं चौंक उठा। चौंकने का कारण यह था कि मेरा हाथ उसके शरीर पर कुठाँव में पड़ गया। अरे बा! यह क्या हुआ? क्षण भर के लिए लगा कि मैं सपना रहा हूं। लेकिन नहीं, मैं तो जगा हुआ हूं .....! तब ऐसा क्यों लगा? मैं उठकर बैठ गया। उसके मुँह पर नजर गयी। वह एकदम निचिंत गहरी नींद में थी। उतान पड़ी, उसके चेहरे पर चैतन्यता का कोई चिन्ह नहीं था। मेरी उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। ओढ़ना को थोड़ा अलगाकर देखा। वह मात्र नाइटी पहनकर सोयी थी सो सिमटकर पेट पर चला गया था। आधा पेट से लेकर पैर तक बिलकुल उघाड़ था। यह कैसा विचित्र संयोग था। कैसी यह अनहोनी थी! ऐसा भी कोई देख पाता है? मेरी नजर फिर एक बार उसके मुँह पर गयी। वह पूर्ववत निचिंत निर्भर सोयी थी। एक बार फिर देखने की मन में इच्छा हुई। एक हाथ से ओढ़ना को थोड़ा अलगाकर ढिबरी का पूरा इजोत देह पर पड़ने दिए। अद्भुत! ठेहुन से ऊपर जाँघ के जोड़, काछ तक पूरी जाँघ तरह–तरह के गोदना से आच्छादित ..... और दोनों जाँघ के बीच में ..... माणिक दीप जरै बिनु बाती ..... नारी–देह का गुप्त प्रवेशद्वार ..... सृष्टि की विचित्र सृष्टि ..... अति सुंदर ..... निर्लोम ..... उत्फुल्ल ..... स्फीत ..... . उन्नतोदर ..... अलभ्य! देह उघड़ जाने से लगा कि बाहर की ठंढी हवा ओढ़ना में घुसकर उसकी जाँघ के विरल रोयों को सिहरा रही थी। निमिष भर के लिए सिहरन की अनुभूति से मेरी नैतिकता थरथरायी। चोरी–छिपे किसी स्त्री की देह के उस भाग को देखना जो सब के लिए वर्जित है, एक विशेष क्षण को छोड़कर स्वयं उसके पति के लिए भी अदर्श्य है, उसका दर्शन करना; उसमें भी जब वह गहरी नींद में हो ..... मुझे अपने पर भारी क्षोभ हुआ। वह मेरी ही सेवा के लिए मेरे पास सोयी थी। मैं जैसे ही दुखी अवस्था में उसके आश्रय में आया, दोनों बहनों ने वैसे ही सब कुछ निबाह दिया। रोग की अवस्था में मैं अधिक सोया और वह मेरे मुँह पर ताकती, अगोरती बैठी रही। आज जब सोने का अवसर पाकर वह घोर निद्रा में निमग्न थी तब मैं उसकी अस्मिता का एक तरह से हरण कर रहा था। यही तो पाप है। मैं बीमार होने के कारण भोजन नहीं करता था और वह मेरे दुख से दुखी होकर भोजन नहीं करती थी। आज मेरे निरोग होने की खुशी में सबों ने अघाकर खाया और अलसाकर गहरी नींद में चली गयी तो मैं उसकी अमानत के हरण की चेष्टा कर रहा था। यही तो विश्वासघात है। मैं अपने ही मन का अपराधी बन गया था।

मेरे निश्पक्ष आत्म–विश्लेषण से अपराधबोध तो हुआ, किंतु इसी बोध ने मुझे अपराध की ओर बढने से रोका। मैंने चुटकी से पकड़कर उसके सिमटे वस्त्र को नीचे ससारा और देह झाँप दिया। उसको झाँपने के बाद मैंने दूसरी ओर करवट बदलकर ओढ़ना ओढ़ लिया। क्षोभ से मेरा मन भारी हो रहा था। ऐसी हालत से बचने के लिए मैंने मन के दूसरे पन्नों को खोला ..... मैंने जो कुछ देखा वह अनहोनी थी ..... एक औचक दर्शन था ..... मैंने देखा जरूर लेकिन छुआ नहीं। एक बार छूने का मन हुआ था, लेकिन उस समय भी मैं उत्तेजित नहीं था; एक कौतूहल था। ध्यान ब्राह्मण–साहित्य की ओर घूमा .....'वृहदारण्यकोपनिषद' के 'पंचाग्निविद्या' में उल्लेख है : "योषा वा अग्निर्गौतम तस्या उपस्थ एव समिल्लोमानि धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनंदा विस्फुलिंगास्तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुत्यै पुरुषः संभवति स जीवति यावज्जीवत्यथ यदा म्रियते।" ..... हे गौतम, स्त्री ही अग्नि है, लिंग ही उसका इंधन है, योनि के रोयाँ उसके धुआँ हैं ..... योनि ज्वाला है ..... मैथुन–व्यापार अंगार है और आनंदानुभूति ही उसके स्फुलिंग हैं। उस अग्नि में पुरुष अपने वीर्य की आहुति देते हैं जिससे मनुष्य का जन्म होता है; जब तक कार्य शेष रहता है,

वह जीवित रहता है।" ..... स्मरण में और आगे का उल्लेख उभरा। आगे और फरचाकर कहा है, "..... तस्या वेदिरुपस्थो लोमानि बर्हिश्चर्माधिषवणे समिद्धो मध्यतस्तौ मुष्कौ .....।" स्त्री की योनि वेदी है ..... योनि के रोआँ कुष हैं ..... योनि का मध्य भाग प्रज्वलित अग्नि है और उसके पार्श्व भाग में जो उभरा हुआ कठोर मांसखण्ड है उसको मुष्क कहा जाता है; दोनों तरफ के वही मुष्क 'अधिषवण' नाम से प्रसिद्ध चर्ममय सोम–फलक हैं।" इस प्रसंग पर अधिक सोचना भारी पड़ रहा था। किसी तरह मन मारकर नींद पड़ गया।

मैं नींद तो पड़ा, किंतु वह नींद ही थी, कोई स्वप्न था या अवचेतन से भी ऊपर तुरीयावस्था में कोई दर्शन था, मैं आज तक नहीं समझ सका। कहते हैं, जाग्रत–स्वप्न–सुषुप्ति, इन तीन स्थितियों से भिन्न एक चौथी अवस्था होती है तुरीयावस्था जो ब्रह्मावस्था है, अज्ञान से दूर शुद्ध चैतन्यावस्था। मैं कोई योगी नहीं हूँ, किंतु मुझे एक अद्भुत दर्शन तो हुआ। मैं इतना कह सकता हूँ कि मैंने जो देखा वह स्वप्न नहीं था। कहते हैं, स्वप्न के दृश्य याद नहीं रहते, किंतु मैंने जो देखा उसके बहुतांश जीवन के इस पड़ाव पर भी मेरी आँखों में सजीव हैं। मैं इतना मानता हूँ कि स्वप्न–दर्शन का वह प्रसंग स्वयं मेरे कुविचार और बासमती की समझदारी से उसके परिष्कार की उपज थी। स्वप्न में मुझे लगा था जैसे हर तरफ नग्न स्त्री–पुरुष मंत्र–चालित स्थिति में टहल रहे हैं; योनिमय निखिल विश्व; फिर सभी योनि एक वृहद वृत में स्थापित होने लगीं और उसमें से अनेक प्रकार के वृक्ष, लता–गुल्म आदि उद्‌भिज प्रकट होने लगे। असंख्य योनि के उस वृत के मध्य में अपार विस्तार वाली एक वृहद योनि थी; योनि से ज्वालामुखी की तरह बहुत ऊँची अग्निशिखा निकल रही थी जिसके चारों ओर आतशबाजी जैसे रंग–विरंग के स्फुलिंग निकल रहे थे। उन स्फुलिंगों से आकर्षित होकर असंख्य लोग उधर बढ़ रहे थे, उसे पकड़ना चाहते थे और उस अग्निकुंड में ही समा जाते थे। तभी एक चमत्कार हुआ। बासमती निर्वस्त्र उस अग्निकुंड में प्रवेश कर गयी और दूसरी ओर से छलांग लगाकर बाहर निकल आयी। अग्नि में नहाकर आयी बासमती का रंग अग्नि की तरह ही जाज्वल्यमान हो गया था। स्वर्णकांति से दीप्त उस स्त्री ने मेरा हाथ पकड़ा और यौनाग्नि के उस कुंड में मेरा स्नान कराया। वह मेरे अंगों को मल रही थी। धीरे–धीरे सभी कुछ लुप्त होता जा रहा था। वह अब भी मेरे अंग मल रही थी। मेरी आँख खुली। बासमती हल्के–हल्के मेरे पैर दबा रही थी। मैंने उसे देखा और देखता ही रहा। वह बोली, "कितना सोइएगा..... देखिए न ..... बाहर में कितनी अच्छी धूप है!" उसने हाथ पकड़कर मुझे अपनी ओर खींचकर बैठा दिया।

कुछ देर में मैं शौचादि क्रिया से निवृत होकर आ गया। बाहर से जब लौटा तो बासमती चाय तैयार कर चुकी थी। उसी समय रासबती और कांछा ने एक साथ आँगन में प्रवेश किया। चार–पाँच दिनों के बाद कांछा को देखकर मैं प्रसन्न तो हुआ लेकिन इतनी जल्दी उसे छुट्टी से वापस आया देखकर आश्चर्य भी हुआ। कांछा को रासबती ने मेरा पूरा हालचाल रास्ते में ही बता दिया था। वह मुझे बीमार देखकर गया था, ऑफिस में और कोई थे नहीं, इसलिए अपने माता–पिता से मिलकर वह दूसरे दिन ही मेला के व्यापारियों के साथ वापस लौट गया। मैं अपना मन वहाँ बैठे लोगों की बातचीत में लगाने का भरसक प्रयास कर रहा था, लेकिन मन रात के दृष्य से मुक्त नहीं हो पा रहा था। मैं बेमन–सा होता जा रहा था, किंतु मैं यह समझता भी था कि मुझे अपने गुनधुन से बचना है। सोचने का काम बाद में भी हो सकता है।

चाय के साथ तरह–तरह की बातें चल रही थीं। कांछा ने एक मजेदार जानकारी दी। जनकपुर में 'विवाह–पंचमी' या 'सीता–विवाह' का बहुत बड़ा मेला लगता था। नवंबर–दिसंबर में लगने वाला यह मेला

महीने भर चलता रहता था। उस समय भी मेला चल ही रहा था। हमारे महल्ले से करीब डेढ़ किलोमीटर दूर यह मेला बिसहरा पोखर के पास, तिरहुतिया गाछी में लगता था। उस मेले में भारत और नेपाल दोनों तरफ के व्यापारी और हजारों–हजार लोग जाते थे और रावटी लगाकर या कपड़े टाँगकर लंबे समय तक मेले का आनंद लेते थे। कांछा के गाँव सिंधुली से भी कुछ व्यापारी आए थे। कांछा इतने रोचक ढंग से मेले का वर्णन कर रहा था कि हम लोगों का मन भी मेला जाने का हो गया। तय हुआ कि कल सुबह में नाश्ता करने के बाद रिक्शा से मेला–स्थल तक चला जाए। कांछा के बोलने के ढंग और विनोदी व्यवहार से सबों का मनोरंजन हो रहा था, लेकिन उसकी एक बात ने सबों को दुखी कर दिया। बात यह थी कि अब मुझे ऑफिस वापस जाना था। वहाँ जब भोजन बनाने वाला और देखभाल करने वाला आ गया था तो मैं दूसरी जगह कैसे रह सकता था? अब मुझे ऐसा कोई कष्ट भी नहीं था कि वहाँ पड़े रहते। ऐसा तो होना ही था। रासबती दोनों बहनों का मन उदास हो गया। मैंने उन दोनों को सभी तरह से सहायता करने के लिए धन्यवाद देते हुए विदा होने की अनुमति माँगी। बासमती मेरा कंबल और चादर चौपेतने लगी। रासबती की आँख डबडबा गयी। उसने कहा, "माट्साएब, जो आदमी घर–आँगन में रहता है उसको न बिदा किया जाता है! जो दिल में बसता है, उसको कोई कैसे बिदा कर सकता है? लेकिन यहाँ से वहाँ जाने को भी बिदा करना ही कहा जाता है। ..... आप जाइए, मगर अभी देह पर पूरा धियान देना पड़ेगा..... हम दोनों के लिए यही बहुत बड़ी बात है कि आप उठकर खड़ा हो गए ..... अब आपका आदमी आ गया है तो जाइए लेकिन अइसने बात पर एक ठो नेपाली गीत गाया है कि 'मुदू माथि ढुंगा राखि, हास्नु पर्यो छ..... ' मन पर पाथर रखकर हँसना पड़ता है.....।" इतना बोलकर रासबती चुप हो गयी। उसकी आँखें लोर से भरी थीं।

कांछा कंबल और चादर की गठरी उठा लिया। जब चलने को हुए तो बासमती मुट्ठी में सभी बचे रुपए लेकर आयी। उसने कहा कुछ नहीं, बस टुकुर–टुकुर ताक रही थी। मैंने कहा, "ये रुपए आप अपने पास रखिए ..... कल मेले में कुछ सामान खरीदना है। मेला में खाने के लिए सामान भी खरीद लीजिए। दस बजे कांछा एक ठो रिक्शा लेकर यहाँ आ जाएगा। आप उसके साथ रिक्शा पर बैठ जाइएगा। मैं सियाराम की दुकान के पास मिलूँगा।" इतना कहकर मैं विदा हो गया। चार दिन के बाद अपनी कोठरी में लौटा था, लेकिन लगता था जैसे लंबी छुट्टी बिताकर गाँव से लौटा था।

मैं अभी भी दुविधा–ग्रस्त था। मन बार–बार रात के दृश्य से उलझ जाता था। आखिर अपने बिछावन पर पड़ा लेकिन मन में चैन नहीं था। अनायास मेरा ध्यान श्रीमद्भगवद्गीता की ओर गया। मैंने अब तक गीता को मात्र साहित्य के रूप में ही लिया था; आज पहली बार मैं गीता को मुक्ति के लिए याद करना चाहा। अर्जुन को समझाते हुए भगवान कहते हैं, "मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम। सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।" 'हे अर्जुन, मेरी महद्ब्रह्म नामक योनि सभी प्राणियों की योनि है और मैं उसमें चेतनरूप जीवों का गर्भाधान करता हूँ। इस जड़–चेतन के संयोग से सभी प्राणियों की उत्पत्ति होती है।' ..... यह प्रकृति उस परम सत्ता की योनि है ..... वही इस योनि का भोक्ता भी है और भर्ता भी। वही परम पुरुष प्रकृति के गर्भ में वीर्य वपन करता है जिससे समस्त जीवादि का सृजन होता है। ..... गीता के इस श्लोक के स्मरण से मेरे मन का द्वंद्व छँटने लगा। मुझे लगा कि रात के स्वप्न का निहितार्थ मेरी मानसिकता का परिमार्जन है। प्रकृति की इच्छा है कि बासमती के शरीर का उपयोग मैं लोकहित के लिए करूँ; अपनी क्षुद्र कामुक चित्त–वृत्ति के लिए नहीं। .... इस सोच ने वास्तव में मुझे हल्का कर दिया। मुझे अनुभव हुआ कि मेरे मन में जमे कलुष–कल्मष के परिमार्जन के लिए ही बासमती स्वप्न में मल–मलकर अग्नि–स्नान करा रही थी। मेरे सामने में आगे का पथ कंटक–विहीन हो गया था। अब मैं द्वंद्व–मुक्त था। अब देह–धारणा से मेरा मन मुक्त हो चुका था।

11

जनकपुर का विवाह–पंचमी मेला पूरे नेपाल में प्रसिद्ध है। नवंबर के अंत अथवा दिसंबर में लगने वाले इस मेले में नेपाल और भारत के सीमावर्ती जिलों से सैकड़ों व्यापारी और बेशुमार लोग तो जाते ही हैं, विदेशी पर्यटक भी अच्छी संख्या में भाग लेते हैं। वहाँ पूरब की तरफ से नेपाली दुकानदार तेजपात, धूप, चंदन, चमड़े के रोएँदार कोट, रोएँदार जूते और पहाड़ी भेड़ के रोएँ से बने मोटे कंबल लाते हैं जबकि भारत के व्यापारी सुगंधित तेल, साबुन, इत्र, सूती–रेशमी साड़ी, शॉल और खाने–पीने की वस्तु लाते हैं और मेले में पश्चिम की ओर से दुकान लगाते हैं। उन दिनों जगह–जगह नटुआ का नाच भी होता रहता था और कहीं–कहीं रामलीला पार्टी का खेमा भी लगा रहता था।

तय समय पर अपने डेरा से निकलकर मैं सियाराम की दुकान पर पहुँच ही रहा था कि कांछा के साथ बासमती रिक्शा से वहाँ आ गयी। बासमती ने खाने का पर्याप्त सामान बनाकर एक झोले मे रख लिया था। उसने एक बड़े डब्बे में पानी भरकर भी साथ में रख लिया था। वहाँ मैं भी रिक्शे पर बैठ गया। रिक्शा जब मेले के नजदीक पहुँचा तो तीनों आदमी उतर गए। कांछा सभी सामान उठाकर अपने परिचित दुकानदार के पास आया। मेले में बेशुमार भीड़ थी। लोग एक–दूसरे की देह रगड़ते आगे बढ़ रहे थे और खाली जगह देखकर पसर जाते थे। वहाँ सभी कुछ एकदम जीवंत था; लहलह–कहकह, जैसे लोटे भर पानी वाली किसी कठौती में कबै मछली छलबलाती रहती है।

मेला में लोग क्या देखने जाते हैं? सभी कोई असल में लोगों को ही देखने जाते हैं। लोगों का पहनना–ओढ़ना, साज–सिंगार, उन्मुक्त हो हँसना–बोलना, संबंधियों और मित्रों से मिलना, विविध प्रकार की वस्तुओं का प्रदर्शन देखना, कुछ मोलाना, कुछ खरीदना और कुछ कौतुक देखना –– यही तो मेले का आकर्षण है। हम लोग भी लगभग दो घंटे से यही कुछ देखते घूम रहे थे। बासमती चाहती थी कि मैं अब कहीं ठहरकर सुस्ता लूँ और चाय–पानी कर लूँ। हम लोग नाश्ते की दुकान तरफ बढ़े तो वहाँ विचित्र तरह का दृश्य था। दो विदेशी महिला पर्यटक के पीछे सयाने बच्चों की भीड़ लगी थी। वह जिधर जाती थी, भीड़ उसका पीछा नहीं छोड़ती थी। वह दोनों उस भीड़ से बहुत परेशान लग रही थी। उन दोनों में एक तो तवे की तरह काली थी और दूसरी अंगरेज जैसी गोरी थी। मैं समझ गया कि काली स्त्री अफ्रिकी मूल की थी। वह दोनों इतना परेशान लग रही थी कि मुझे उनकी सहायता करना आवश्यक लगा। पूछने पर पता लगा कि गोरी स्त्री का नाम अलीसांद्रा था और वह इटालियन थी जबकि दूसरी स्त्री का नाम डोरोथी था और वह नाइजीरिया की थी। वह दोनों बहुत भूखी थी मगर लोगों के चलते कहीं खा नहीं पा रही थी। मैंने पहले तो पीछा कर रहे लोगों को डाँटकर भगाया फिर उन दोनों को भोजन का निमंत्रण देकर साथ ले आया। वह दोनों स्त्री बासमती के लिए भी अजूबा ही थी, लेकिन एक–दूसरे से परिचित होकर हम सभी जल्द ही घुल–मिल गए। आज पहली बार बासमती मुझे अंगरेजी में बोलते देख रही थी। मैं जब बोलता था तो वह आश्चर्य के साथ मुझे निहारती रहती थी। बासमती यह समझ गयी थी कि 'फ्रेंड' कहकर मैंने उसका परिचय दिया था मगर जब उन दोनों ने 'बैसमाटी' कहकर उसका नाम दुहराया तो उसे हँसी लग गयी। उसे हँसते देखकर दोनों स्त्री ने उससे हाथ मिलाया। हाथ मिलाने के बाद अलीसांद्रा ने बासमती को सखी की तरह छाती से लगा लिया। अब हम चारों मित्र थे।

हमारे साथ दो विदेशी स्त्रियों को आया देखकर कांछा बहुत प्रसन्न हुआ। नेपाल में पुराने समय से अनेक देष के पर्यटक जाते रहे हैं, इसलिए विदेशी महिलाओं को देखकर कांछा को आश्चर्य नहीं हुआ। बासमती ने उसे एक शतरंजी बिछाने और भोजन के लिए पत्तल लगाने को कहा। कांछा बगल के एक पहाड़ी दुकानदार से पत्तों की बनी कुछ थालियाँ ले आया। बासमती ने भोजन की पोटली खोला। पोटली खोलते ही अचार की गंध सबों के मन पर पसर गयी। उस गंध ने सबों की भूख जगा दी। हमारे पास भोजन के सामान इतने थे कि सात–आठ आदमी भर पेट खा सकते थे। सत्तू भरकर बनी पूड़ी, चावल का पीठा (बगिया), गुड़ से बना पुआ और नमकीन में आलू की भुजिया, चने के साग का अरकोंच, कचरी, आम का अचार, उस पर से सियाराम दुकान के कलाकंद। आम का अचार कमाल कर गया। डोरोथी को तो वह खट्टा–चटपटा अचार इतना अच्छा लगा कि वह उसकी खपटी भी चबा गयी। भर पेट खाने के बाद भी भोजन बहुत बच गया, सो कांछा ने अपने ग्रामीण दुकानदारों में बाँट दिया। खाने के बाद घर से लाए पानी पीने के बाद सबों का मन जुड़ा गया।

उस दिन धूप बहुत सुहानी थी। अघाकर भोजन करने के बाद सबों का मन अलसा गया। विचार हुआ कि शतरंजी पर लेटकर कुछ देर देह में धूप लगायी जाए, इसके बाद मेले में घूमते हुए चार बजे तक वापस चला जाए। डोरोथी ने अपना जैकेट और स्वेटर खोल लिया। बासमती ने भी देह पर से चादर हँटा लिया। उस समय एक बड़ा चमत्कार हुआ। बासमती की बाँह, पेट, कमर और गले से नीचे बना गोदना तो अनावृत होकर देखार हो ही गया, डोरोथी की देह पर बना एक खास तरह का गोदना (जो देह की चमड़ी को काट–काटकर बनाया जाता है, छिदना) भी देखार हो गया। यह एक विचित्र संयोग था जब भूमंडल के दो छोर पर बसी दो स्त्रियों की देह पर मानव–संस्कृति के प्रतीकों का प्रदर्शन हो रहा था। इस रहस्योद्घाटन से सभी कोई अचंभित थे। बासमती डोरोथी के पेट पर बने रहस्यमय खुरदुरे छिदना पर अपनी उँगली चलाकर उसकी निर्माण–प्रक्रिया का अनुमान लगा रही थी। डोरोथी ने बासमती की फद्दी पर बने हाथी को चूम लिया; बासमती ने कहा, 'मकुनी हाथी'..... मैंने कहा, ''टैट्टू ..... दी एलीफैंट.....!'' अलीसांद्रा बासमती की दूसरी फद्दी पर बने मयूर पर अपनी उँगली चलाते हुए बोली, वंडरफुल।

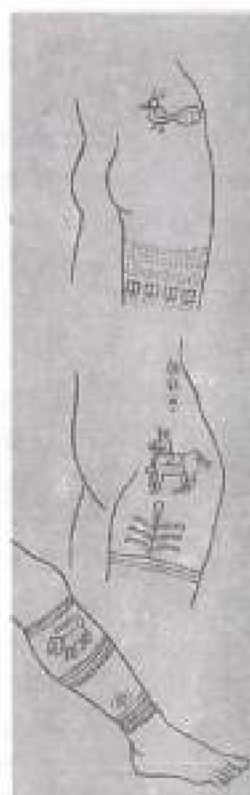
वहाँ तीन महाद्वीप — एसिया, यूरोप और अफ्रिका के लोग मानव–सभ्यता के एक बिंदु पर इकट्ठा हो रहे थे। गोदना और छिदना इस त्रिभुज के केंद्र में थे। बातचीत के क्रम में अलीसांद्रा ने बताया कि वह इटली के नेपुल्स शहर से आयी थी और स्वतंत्र रूप से 'परंपरा और देह' विषय पर अनुसंधान कर रही थी जिसके अंतर्गत उसे विभिन्न देशों में प्रचलित गोदना–परंपरा का अध्ययन करना था, किंतु उसका केंद्रीय विषय अफ्रिकी गोदना था। डोरोथी नाइजीरिया की कला–संस्कृति से जुड़ी एक कलाकार थी और अनुसंधान में अलीसांद्रा की सहायता कर रही थी। डोरोथी के शरीर पर भी बासमती की तरह ही कई जगह गोदना बना हुआ था, लेकिन उसकी निर्माण–प्रक्रिया भारतीय गोदना की अपेक्षा अधिक जटिल और कष्टदायक थी।



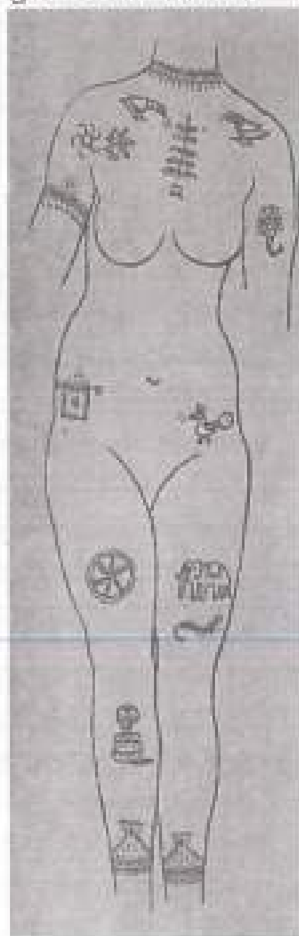
हम लोग बचपन में भूगोल की पुस्तक में पढ़ते थे कि अफ्रिका को 'अंध महादेश' कहा जाता था। प्रकृति की गोद में अपनी मान्यताओं और परंपरा के साथ स्वच्छंद जीवन–यापन करने वाले अफ्रिकी लोगों से पंद्रहवी सदी तक शेष विश्व के लोग अनजान थे। उनका पता लगाया अमेरिकन और यूरोपियन खोजियों ने, जो संसार को जानने, जीतने और लूटने के लिए समुद्री साहसिक यात्राओं पर निकलते थे। अफ्रिकी समाज का रहस्योद्घाटन होते ही उन निश्छल–निरीह लोगों पर क्रूरता का पहाड़ टूट पड़ा। गोरे अमेरिकी लोगों की समझ में वज्रकाले अफ्रिकी लोग मात्र पशु थे। अमेरिकी लोगों ने पशु की तरह घेरकर, जंजीरों में बाँधकर, उनके शरीर पर अपना मालिकाना छाप दागकर, झुंड के झुंड अफ्रीकियों को अपना गुलाम बनाकर अमेरिका लाने लगे। यह सिलसिला 1680 ईस्वी से प्रारंभ हुआ। प्रायः हर रोज, बेनिन और कांगो के 'गुलाम बंदरगाह' से जहाजों का जत्था हजारों स्त्री–पुरुष और बच्चों को बांधकर, अटलांटिक महासागर के जलमार्ग से, लगभग तीन मास में अमेरिका पहुँचता था और इसके बाद ब्रीटिश लोगों के हाथ उन्हें गुलाम बनाकर बेच दिया जाता था। अब वे गुलाम एक खरीदार से दूसरे खरीदार तक सोने के सिक्कों की तरह बिकते रहते थे, जिनसे औपनिवेशिक टापुओं पर खेती के काम में, बिना कोई मजदूरी दिए, जानवर की तरह अंतिम साँस तक काम लिया जाता था। सालों साल अफ्रिका से लाखों की संख्या में पकड़कर लाए गए और यूरोप–अमेरिका के गुलाम–बाजारों में बेचे गए वे गुलाम सतरहवीं से उन्नीसवीं सदी तक अमेरिका, स्पेन, पुर्तगाल और ब्रीटेन के अर्थतंत्र के मुख्य आधार थे। आखिरकार ब्रीटिश साम्राज्य में सन 1883 ईस्वी में और संयुक्त राज्य अमेरिका में 1863–'65 में इस अमानवीय व्यापार का उन्मूलन हुआ। अफ्रिकी लोग जहाँ कहीं गए, अपनी संस्कृति की विरासत, अपने गोदना को साथ ले गए। उनकी यह थाती अगली पीढ़ियों के साथ उस धरती की माटी में समाती रही।

अफ्रिकी समाज की यह दारुण गाथा डोरोथी ने मेले में चलते–चलते बतलाया। वापसी में एक जगह ठमककर मैंने बासमती से कहा कि जो कुछ खरीदना चाहे सो खरीद ले। मेरी इच्छा थी कि मेला से निकलने के बाद बाजार में रासबती और उसके दोनों बच्चों के लिए कपड़ें खरीदें। यह बात बासमती को भी पसंद आयी। मैंने बासमती से भी कहा कि वह जो कपड़े खरीदना चाहे खरीद ले, लेकिन वह कुछ बोली नहीं। उसने मुझे कभी बताया था कि स्कुल जाने वाली लड़कियाँ जो सलवार–सूट पहनती हैं, वह उसे बहुत अच्छा लगता है। मैं उसका पहनावा बदलना चाहता था। वह मान गयी। अंततः निश्चित किया गया कि रासबती और बच्चों के साथ ही बासमती के लिए भी सब कुछ खरीदें जाएँ; सलवारसूट, दुपट्टे, जांघिया, ब्रेसियर, चप्पल और गर्म कपड़े। मुझे ऐसे कपड़े खरीदने का हुनर नहीं था, लड़कियों के भीतरी वस्त्र की नाप तो मैं बिलकुल नहीं जानता था। बासमती भी पहली बार ऐसे वस्त्र खरीदने जा रही थी, इसलिए वह भी इस काम में अनभिज्ञ ही थी। संयोग अच्छा था कि उस समय हमारे साथ दो और स्त्रियाँ थीं जो कपड़े खरीदने में हमारी सहायता कर सकती थी। मैंने अलीसांद्रा और डोरोथी को बताया। उसने बताया कि 'मिल्स एरिया' के 'होटल होली डे' में वह दोनों रहती थीं और वहीं एक रेडीमेड कपड़ों की दुकान है, जिसके

मालिक से उनका अच्छा परिचय है। वहीं साड़ी और बच्चों के कपड़ों की भी दुकान है। तय हुआ कि खरीदारी करने के बाद होटल में गोदना विषय पर बढ़िया से चर्चा हो और वहीं रात का भोजन करने के बाद घर लौटें। मेला से चलते समय बासमती ने घर के लिए कुछ सामान खरीदा — तीन ठो पिढ़िया, एक लालटेन और चार ठो कप। ये सभी सामान लेकर कांछा घर चला गया। मैंने उसे बता दिया कि रात का भोजन हम दोनों उधर ही करेंगे और रात में देर हो जाए तो चिंता नहीं करे।



मेला से निकलकर हम लोग टहलते हुए मिल्स एरिया में आ गए। वहां एक होटल में चाय–कॉफी पीने के बाद हम सब रेडीमेड वस्त्र की दुकान में आ गए। दुकानदार से अलीसांद्रा का अच्छा परिचय था, इसलिए दाम और सामान में ठगाने की चिंता नहीं थी। दुकान के भीतरी भाग में महिलाओं के लिए कपड़े बदलने का ट्राइरूम बना हुआ था। अलीसांद्रा नाप के हिसाब से सभी कपड़े पसंद करने के बाद बासमती के साथ ट्राइरूम में चली गयी। बासमती कभी न तो सलवार–सूट पहनी थी, न जांघिया और न ब्रेसियर। एक सेट सलवार–सूट पहनकर जब वह बाहर निकली तो नए परिधान में उसके सौंदर्य का नवीकरण हो गया था। उसके बाँकी कपड़ों के लिए दुकानदार ने एक थैला दे दिया। उसी थैले में बदले हुए कपड़े भी अँट गए। बासमती के पास रुपए थे ही, उसने भुगतान कर दिया। वहाँ से जब चलने का समय हुआ तो मेरे पास में बैठी डोरोथी उठी और दुकानदार से एक पूरे बाँह का स्वेटर और एक शॉल खरीदकर बासमती को उपहार दिया। अलीसांद्रा ने जिद करके उसे पहना दिया। वह पहली बार स्वेटर पहनी थी, इसलिए कुछ असहज अनुभव कर रही थी। वह मेरे पास आयी और फुसफुसाकर बोली, "स्वेटर में देह एकदम कसाया हुआ लगता है..... ऊपर वाला भी कैसा अलगा हुआ लगता है..... ।" वहाँ मैं जादा बोल नहीं सकता था। मैंने कहा, "अच्छा लगता है..... पहने रहिए ..... ऊपर वाले को शॉल से झाँप लीजिए।" अब रासबती और बच्चों के लिए कपड़ों की खरीदारी करनी थी। बगल में ही ऐसी एक दुकान थी। अलीसांद्रा और बासमती दुकान में जाकर खरीदारी करने लगी जबकि मैं डोरोथी के साथ अलग–अलग विषयों पर बतियाता रहा।



खरीदारी का काम खतम होने के बाद हम लोग इकट्ठे अलीसांद्रा के कमरे में आए। वहाँ कई तरह की बातों पर परस्पर आदान–प्रदान हुआ। मैं मुख्य बातों का अनुवाद करके बासमती को बताते जा रहा था। मैंने संक्षेप में अपनी और बासमती के साथ जुड़ाव की कहानी भी कही। उनके विचार में बासमती की योजना, कि गोदना की पुस्तक तैयार हो और दलित स्त्रियों को प्रशिक्षण देकर काम में लगाया जाए, बहुत रचनात्मक और लोकोपयोगी थी।



उस समय तक मुझे मिथिला या देश के अन्य भागों में प्रचलित गोदना–परंपरा के संबंध में कोई खास जानकारी नहीं थी। मेरे घर के पीछे एक बूढ़ी महिला रहती थीं। लोग उन्हें 'लालकाकी' कहते थे। मैंने उन्हें देवनागरी, कैथी और मिथिलाक्षर या तिरहुता में पढ़ते–लिखते देखा था। उनकी छाती और बाँह गोदना से भरी हुई थी। 1935–40 ईस्वी तक मिथिला में सभी जाति की हिंदू स्त्रियाँ गोदना करवाती थीं। लालकाकी से मैंने गोदना से जुड़ी कुछ कहानियाँ भी सुनी थी, किंतु उन कहानियों में क्या तथ्यपरक बात थी और क्या किंवदंती, उसमें फर्क करने का बोध मुझे नहीं था। बातचीत के क्रम में पहली बार अलीसांद्रा ने ही बताया कि स्थायी कला के रूप में गोदना का प्रचलन, किसी न किसी रूप में, प्रायः विश्व भर में था। उसके हाथ की फट्टी पर भी गोदना का एक मोहर गोदा हुआ था। मक्खन जैसी गोरी उसकी चमड़ी पर हरियॉन काले रंग का वह गोदना बहुत सुंदर लगता था। उस चित्र में कुछ वानस्पतिक अलंकरण के अतिरिक्त डंडा सहित तना हुआ छाता जैसा एक चिन्ह था। अलीसांद्रा ने बताया कि स्पेन की प्राचीन चित्रलिपि में उस प्रतीक को 'आदमी और इंद्रधनुष' कहा गया है और इसका प्रतीकार्थ यह है कि प्रकृति समान रूप से सबों को प्रसन्नता प्रदान करती है। उस चित्र के डंडे को आदमी मान लिया गया था और छाते जैसे अर्धचंद्राकार नतोदर भाग को इंद्रधनुष। गोदना के चित्रों में छिपे गूढ़ार्थ की ओर बासमती ने पहले ही ध्यान दिलाया था। अलीसांद्रा की बात से मैं चमत्कृत हुआ। मैं समझ गया, गोदना विश्वव्यापी ज्ञानमय शृंगार–परंपरा है। अलीसांद्रा ने मुझे बताया कि उसकी जांघ पर बड़े आकार का एक ड्रैगन (चाइनीज प्रतीक) गोदा हुआ है जो उसने बासमती को ट्राइरूम में दिखलाया था, मगर वह गोदना आधुनिक मशीन से गोदा गया था। अलीसांद्रा ने मेरे सामने अफ्रिकी गोदना से संबंधित कई फोटो रख दिया। उन फोटो में उसकी जांघ वाला फोटो भी था।



मिथिला चित्रकला के प्रयोग तो मैं बचपन से अपने समाज में देख रहा था और उसके प्रतीकों, चिन्हों से अक्षर बनाने के काम में भी मैं सन 1965 से जुटा था, मगर फिर भी भारत के अन्य भागों में

प्रचलित लोककलाओं से मैं उस समय तक अनभिज्ञ ही था। अलीसांद्रा ने मुझे बताया कि प्रसंग चाहे भारतीय लोककलाओं के उद्गम का हो अथवा किसी दूसरे देश की कला–परंपरा का, आद्यकालीन शैलचित्रों अथवा गुफाचित्रों को इनका मूल स्रोत माना गया है। भारत में ऐसे शैलचित्रों का बाहुल्य मध्य प्रदेश (छत्तिसगढ़ समेत), महाराष्ट्र, उड़ीसा और आसाम से जुड़े उत्तर–पूर्व के राज्यों में प्रागैतिहासिक काल से रहा है। मध्य और उत्तर–पूर्वी ये भाग भारतीय कला के विकास में सभी युगों में प्रतिनिधित्व करते रहे हैं। इन्हीं क्षेत्रों में भारत की प्राचीनतम आबादी के साथ शैलचित्रों का समृद्ध भंडार भी संकेंद्रित रहा है। भौगोलिक और ऐतिहासिक रूप से ये राज्य अपने पड़ोसी राज्यों के साथ अनेक प्रकार से जुड़े रहे हैं, जैसे कि मध्य प्रदेश के साथ (छत्तिसगढ़ समेत) उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश; महाराष्ट्र के साथ गुजरात और कर्णाटक; उड़ीसा के साथ बिहार, बंगाल और आंध्र प्रदेश; आसाम के साथ बंगाल और उत्तर–पूर्व के आदिवासी क्षेत्र।

अलीसांद्रा भारत में काफी घूम चुकी थी। भारतीय कला–परंपरा और खासकर आदिवासी कला में उसकी गहरी पैठ बन गयी थी। उसकी बातों से पहली बार कला–विषयक मेरा ज्ञान बढ़ रहा था। विश्लेषण के क्रम में उसने मुझे बताया कि राज्य–क्षेत्रों के भौगोलिक और ऐतिहासिक संबंधों का प्रभाव उस क्षेत्र के कला–विकास पर महत्वपूर्ण होता है। इस दृष्टि से मध्य प्रदेश, जो वास्तव में भारत का हृदय–प्रदेश है, भारतीय कला के उद्भव और विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। शैलचित्रों और गुफाचित्रों के लिए प्रसिद्ध भीमबेतका मध्य प्रदेश में स्थित है। पुरातत्वविदों की मान्यता है कि भीमबेतका में मनुष्य का आदिम रूप, बानर–मानव भी करीब एक लाख वर्ष पहले उपलब्ध था। यहाँ मिले कुछ शैलचित्र तीस हजार वर्ष पुराने हैं। कहा जाता है कि 'भीमबेतका' नाम महाभारत के महाबली चरित्र भीम के नाम पर पड़ा। लोक परंपरानुसार, पांडवों के अज्ञातवास की अवधि में भीम ने यहीं पर हिडिंबा से विवाह किया और उसी आधार पर उस स्थान का नाम भीम–बैठका, भीमबेतका पड़ गया। जिस प्रकार भीमबेतका शैलचित्रों के लिए प्रसिद्ध है उसी प्रकार बस्तर गोदना के लिए प्रसिद्ध है।

पहली बार अलीसांद्रा ने ही मुझे बताया कि राजस्थान में गोदना का प्रचलन आदिवासी मूल की अर्ध–घुमंतू जातियों में परंपरागत रूप से रहा है। अब ये जातियाँ सामाजिक धारा में मिल गयी हैं और गादिया लोहार, बनजारा और नाथजोगी जाति–समूहों के रूप में जानी जाती हैं। इन जातियों में स्त्री और पुरुष दोनों अपने शरीर पर गोदना करवाते हैं, किंतु स्त्रियों के भीतरी अंगों पर गोदना करवाना अधिक लोकप्रिय है। नाथजोगी समुदाय में गोदना उनके समूह का परिचायक चिन्ह है।

हमारे सामने में अलीसांद्रा के दिए करीब दर्जन भर फोटो फैले थे। इन सभी फोटो में अफ्रिकी स्त्री–पुरुषों की देह पर चमड़ी को काट–काटकर बनाए छिदना दिखलाए गए थे। अमेरिकी और ब्रीटिश फोटोग्राफरों ने ये फोटो उस समय लिये थे जब वहाँ का जंगली समाज, शेष विश्व से अनभिज्ञ, निर्वस्त्र रहता था। एक तो कोई भी स्त्री दूसरे का नग्न फोटो देखकर स्वभावतः लजा जाती है, किंतु बासमती के लिए लज्जा से भी अधिक यह आश्चर्य का विषय था कि स्त्रियों की योनि पर भी चमड़ी को काटकर उस तरह के गोदना बने थे, फिर भी वह डिजाइनदार था। लगता था जैसे वे सभी स्त्री–पुरुष मगरमच्छ की खाल अपने शरीर से लगा लिये हों।

बातचीत के प्रवाह में यह पता ही नहीं चला कि रात अधिक होती जा रही थी। मैं उनसे बहुत कुछ सीख रहा था, लेकिन घर तो जाना ही था। डोरोथी और अलीसांद्रा ने विचार दिया कि भोजन उनके साथ ही कर लें और कल दिन में दूसरे दौर की वार्ता के लिए बारह बजे तक आ जाएँ। ऐसा ही हुआ। संयोग अच्छा था कि होटल से निकलते ही रिक्शा मिल गया। भानु चौक से आगे स्टेशन की ओर बढ़े तो जूते–चप्पल की एक दुकान खुली मिल गयी। बासमती के लिए चप्पल खरीदना बाँकी था। चप्पल भी अच्छा मिल गया। चप्पल का दाम तो अधिक था, लेकिन इतने वर्ष बिताकर पहली बार अगर मँहगा भी हो तो हर्ज नहीं। अब बासमती का पहनावा पूरा बदल गया था। बदले परिधान में उसका सौंदर्य और भी निखर गया था।

रात की ठंढ बहुत बढ़ गयी थी, लेकिन मुझे इतमीनान था कि अब बासमती की देह पर गर्म स्वेटर और शॉल थे। उसे सुखी देखकर मैं बहुत खुश था। बासमती के साथ मैं उसके घर तक आया और उसे अपने स्थान तक पहुँचाकर वापस औफिस आ गया।

अगले दिन मुझे बासमती के साथ अलीसांद्रा और डोरोथी से बारह बजे 'होटल होली डे' में मिलना था। ग्यारह बजे हम लोग अपने स्थान से विदा हुए। हम दोनों रास्ते में ही थे तभी वह दोनों टहलते मिल गयीं। एक–दूसरे से मिलकर हम लोग प्रसन्न हुए। होटल में पहुँचकर डोरोथी ने तीन कप कॉफी और बासमती के लिए चाय मँगवायी। कॉफी पीने के बाद डोरोथी अपना स्वेटर निकालकर बासमती के बगल में बैठ गयी। उसकी पूरी बाँह पर छिदना बना हुआ था। उसके काम बहुत महीन थे। बासमती उसकी बाँह पर उँगली चलाकर अचंभित हो रही थी। मैंने डोरोथी से आग्रह किया कि वह हमें अफ्रिकी समाज की गोदना–परंपरा के बारे में बतावे।



डोरोथी ने अफ्रिकी लोगों की कला–प्रियता, खासकर चित्रकला के प्रति उनके रुझान पर चर्चा करते हुए कहा कि अफ्रिकी लोगों की सुरुचि और और उनकी कला–प्रियता जाननी हो तो उनके घरों की सजावट देखिए। उनके घर की सजावट में चित्रकारी का विशेष महत्व होता है। उस चित्रकारी का पैटर्न भी गोदना के प्रतीक चिन्हों जैसा ही होता है। उनकी मान्यता है कि मनुष्य की देह और गेह या घर दोनों ही पितरों का वासस्थान होता है। वही उनके देवता होते हैं। इसलिए उनका दायित्व होता है कि देह और गेह दोनों को सजाकर रखें। उनके घर प्रायः बाँस–लकड़ी के टाटर से बने होते हैं जिस पर नदी की पँकीली मिट्टी का दोलेप प्लास्टर चढ़ा होता है। प्लास्टर सूख जाता है तो उस पर लाल, काले और सफेद रंगों से चित्रकारी की जाती है। लेकिन उनके शरीर का रंग इतना काला होता है कि उस पर कोई रंग चढ़ना कठिन होता है, इसलिए कुशल पेशेवर कलाकार उनकी चमड़ी को काट–काटकर अनेक प्रकार के डिजाइन से शरीर को सजाते हैं। शरीर को छेदकर बनायी इस गोदना–कला को हम यहाँ छिदना कहेंगे। छिदना बनाने के क्रम में शरीर का बहुत रक्त निकल जाता है। माना जाता है कि बहा हुआ रक्त पितरों को अर्पित अर्घ होता है। अर्घ पाकर पितर प्रसन्न होते हैं। छिदना बनवाना वस्तुतः एक अनुष्ठान होता है।

डोरोथी ने आगे बताया कि अफ्रिकी गोदना सबों के शरीर पर एक ही विधि से नहीं बन पाता है और न देखने में ही एक जैसा लगता है। चमड़ी के मुलायम या रूखा होने से, चीरे की गहराई से और घाव भरने के उपाय में अंतर होने से चीरों के उभार में अंतर पड़ता है। पहली बार चीरा लगाने के बाद यदि छोड़ दिया जाए तो घाव सूखने के बाद उसके महीन दाग मिट जाते हैं। इसलिए उसके उभार को नियंत्रित करने और उसे कलात्मक रूप देने के लिए बार–बार घाव भरने के बाद चीरा लगाना पड़ता है, तब कहीं जाकर इच्छित डिजाइन बन पाता है। किसी–किसी की चमड़ी इतनी मुलायम होती है कि बहुत कम बार चीरा लगाने के बाद भी मनोनुकूल छिदना बन जाता है। इसीलिए कहा गया है कि अफ्रिकी छिदना में शरीर स्वयं अपने गोदना को कलात्मक बनाता है, कलाकार तो महज एक कामकाजी व्यक्ति होता है। छिदना बनाने की प्रक्रिया पूरी होने में काफी समय लगता है, जैसे कि तरुणावस्था से प्रौढ़ावस्था तक का समय लगना सामान्य बात है।



डोरोथी और अलीसांद्रा तो मेरे साथ अंगरेजी में बात कर रही थीं, लेकिन मेरी अंगरेजी उस समय उतनी अच्छी नहीं थी कि सभी बातों का हूबहू अर्थ मैं समझ पाता। वह दोनों बोलती भी धाराप्रवाह थी। मैं जब तक एक वाक्य का अर्थ समझ पाता था उससे पहले ही वह दूसरा वाक्य बोलने लगती थी। मुझे बासमती को भी अनुवाद करके सुनाना रहता था। मैंने अपनी समस्या उन दोनों से बतायी। वह समझ गयीं। इसके बाद बहुत सम्हालकर आसान शब्दों में मुझे समझाने लगी। अलीसांद्रा ने अफ्रिकी गोदना–परंपरा पर बोलते हुए कहा कि परंपरागत गोदना–चित्रण (असल में छिदना/छिद्रण, पदबपेपवद) एक कठिन अग्नि–परीक्षा है जिसकी पीड़ा लंबे समय तक सहन करना पड़ता है। इसके घाव सूखने में कई सप्ताह लग जाते हैं। छिदना की विधि पीड़ादायक होने के अलावा खरचीला भी है, किंतु उनके समाज में 'मताई' पदवी पाने के लिए यह कष्ट और खर्च लोगों को उठाना ही पड़ता है। संभवतः बहुत खरचीला होने के कारण इस अनुष्ठान में कभी–कभी एक साथ छः लड़के या लड़कियों का छिदना भी करा लिया जाता है जिसमें चार या चार से अधिक कलाकार एक साथ मिल–बाँटकर काम करते हैं। यह अनुष्ठान लड़का और लड़की दोनों के लिए समान रूप से अनिवार्य होता है, लेकिन लड़कियों का छिदना स्त्री–कलाकार द्वारा किया जाता है और उनके डिजाइन धार्मिक नहीं बल्कि सौंदर्यवर्द्धक होते हैं।

आगे डोरोथी ने बताया कि समोअन समाज प्राचीन काल से ही पद, हैसियत और कबीलाई प्रतिष्ठा के लिए जाना जाता है। सामोअन सरदार को 'अली' और उसके सहायक को 'बोलने वाला सरदार' अथवा 'तुलाफले' कहा जाता है। गोदना–संस्कार का अनुष्ठान तरुणावस्था में प्रारंभ होता है जो उसके भावी जीवन की हैसियत निश्चित करता है। अफ्रिका के देशों में गोदना का प्रचलन दस हजार वर्षों से भी अधिक पुराना है। वे अपने शरीर पर चीरा लगवाकर, गर्म धातु के औजार से दागकर या ऐसी ही कठिन विधियों से अपने शरीर को अलंकृत करते हैं। भारत और दूसरे देशों में ऐसी विधि प्रचलित नहीं है, शायद इसी कारण इस क्रिया का सही पारिभाषिक शब्द हिंदी में उपलब्ध नहीं है। अंगरेजी में इस कला को गोदना (tattoo) के स्थान पर स्कैरिफिकेशन या इनसीश्जन, अर्थात चीरा लगाना, त्वचा को छेदना या गोदना कहा जाता है। अफ्रिका की मूर्तिकला में इसका व्यापक प्रयोग हुआ है।

जितनी देर तक डोरोथी मुझे बता रही थी, अलीसांद्रा उतनी देर तक बासमती की बाँह से गोदना के चित्र अपने नोटबुक पर उतारती रही। वह ड्राइरूम में बासमती के पूरे शरीर पर गोदे हुए चित्र का भंडार पहले ही देख चुकी थी। बासमती का हाथ अपने हाथ में लेते हुए उसने कहा, "छिदना के पीछे अनेक प्रकार के सौंदर्य विषयक, धार्मिक और सामाजिक कारण हैं जैसे भारत में गोदना के साथ इस तरह के अनेक प्रसंग जुड़े हुए हैं। पश्चिमी अफ्रिका की जनजातियों में युवावस्था में प्रवेश करते समय विवाह के मानक संस्कार के रूप में छिदना का विशेष अनुष्ठान आयोजित होता है। इसका व्यवहार निजी परिचय से संबंधित जटिल संवाद की अभिव्यक्ति के रूप में भी होता है और इस प्रकार के स्थायी चिन्ह निश्चित सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक भूमिका भी व्यक्त करते हैं। कुछ जनजातियों में युवा लड़की के वक्ष और पेट पर छिदना का चित्रण उसकी वैवाहिक इच्छा और गर्भधारण की कामना भी व्यक्त करता है। उत्तरी घाना की डगोंबा जनजाति जैसे कुछ समूह छिदना का उपयोग मिरगी, खसरा, निमोनिया, पेट दर्द जैसे रोगों के निवारण के लिए भी करते हैं। उनका विश्वास है कि ये रोग खून में पनपते हैं, इसलिए वे त्वचा को काटकर उस स्थान पर वृक्ष–विशेष के औषधीय चूर्ण की लेप करते हैं ताकि औषधि चीरा से बहते खून के साथ मिलकर रक्त–संचार में आ जाएँ और रोग का निवारण हो।"



इस चर्चा से बासमती का निजी और सामाजिक संबंध था, इसलिए वह इतना कुछ जानकर काफी प्रसन्न थी और वार्ता में अच्छी रुचि ले रही थी। अलीसांद्रा ने आगे बताया कि अफ्रिका में बसने वाले अधिकांश कबीलों के लोग छिदना के प्रकार के आधार पर जाति–विशेष या समूह–विशेष से संबद्धता के रूप में पहचाने जाते हैं। खासकर उत्तरी घाना के कुछ समूह, जैसे गोंजा, नानुंबा, डागोंबा, फ्रा फ्रा और माप्रूसी कबीलों के लोगों के लिए इस प्रकार के परिचयात्मक छिदना बनवाना बहुत जरूरी होता है। इसी प्रकार गोदना या छिदना का व्यवहार अनेकों कारण से, विश्व की अनेक संस्कृतियों में प्राचीन काल से होता रहा है।

अलीसांद्रा ने जब बोलना बंद किया तो डोरोथी ने छिदना की चिकित्सकीय धारणा पर बोलते हुए बतलाया कि अफ्रिका की अनेक जनजाति समूहों का विश्वास है कि नवजात शिशु के चेहरा पर चीरा लगवाने से उसे दृष्टि संबंधी रोग नहीं होता है। प्रायः सभी शिकारी आदिवासी समूहों में रक्त बहाना देवता, दुष्ट आत्मा, शुभ आत्मा या पितर–आत्मा को अर्पित अर्घ की तरह होता है। इस रूप में भी अफ्रिकी और ऑस्ट्रेलियन एबोरीजनल (जनजातियों) में, खासकर जहाँ नवजात शिशु को नश्तर लगाया जाता है, इसे कर्मकांड की तरह पूरा किया जाता है। पपुआ न्यूगिनी में युवा लोगों की देह पर घड़ियाल की खाल जैसा डिजाइन बनाया जाता है। उनका विश्वास है कि घड़ियाल ही मनुष्य का सृष्टिकर्ता है। इसीलिए नश्तर लगाकर घड़ियाल का स्वरूप धारण करना घड़ियाल देवता के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना हुआ और इस क्रिया के दौरान बहाया गया रक्त वस्तुतः उस देवता को अर्पित अर्घ है। इस क्रम में दीक्षित लोगों की छाती, पीठ और नितंब पर घड़ियाल के दाँत जैसा डिजाइन बनाया जाता है।



डोरोथी ने जनजातीय समाज में गोदना के सामाजिक अनुबंध पर प्रकाश देते हुए कहा कि ऑस्ट्रेलिया में, पूर्वकालिक समय में, नश्तर–गोदना सभी एबोरीजनल समुदाय में व्यापक रूप से प्रचलित था, किंतु अब इसे कानून द्वारा उत्तरी राज्य–क्षेत्र के अर्नहेमलैंड तक सीमित कर दिया गया है। यहाँ 16 वर्ष की आयु में, पुरुष और स्त्री दोनों की छाती, कंधा और पेट पर नश्तर लगाया जाता है। ऐसे चिन्ह से रहित, सपाट चमड़ी वाले लोग सामुदायिक सदस्यों के परंपरागत व्यापार, आनुष्ठानिक नाच–गान और अन्य सामाजिक उत्सवों में भाग लेने के अधिकारी नहीं होते हैं। इथियोपिया की कारो जनजाति में पुरुष अपनी छाती पर नश्तर गोदना बनवाकर प्रदर्शित करते हैं कि उसने दुश्मन कबीले के कितने लोगों को मारा है। स्त्रियों के वक्ष पर बना गोदना उनकी काम–प्रियता का प्रतीक माना जाता है।

सामाजिक परंपरा में गोदना के प्रभाव की चर्चा करते हुए अलीसांद्रा ने बताया कि दक्षिणी सूडान में नूबा जाति की लड़कियाँ युवावस्था में प्रवेश से पहले परंपरागत रूप से अपने कपाल, छाती और पेट पर गोदना बनवाती है। पहली बार रजस्वला होने पर ये लड़कियाँ दूसरी बार सांस्कारिक समारोह के रूप में दोनों वक्ष के आस–पास चीरा लगवाती हैं। गोदना की यह प्रक्रिया धीरे–धीरे आगे बढ़ती है और जब वह पहले बच्चे को जन्म देती है, तब उसके दूध छोड़ने के बाद व्यापक रूप से दोनों वक्ष के मध्य में, पीठ, नितंब, गला और जाँघ पर गोदना बनाया जाता है। इस प्रथा से स्पष्ट होता है कि नूबा लोगों में गोदना उनकी सामाजिक स्थिति और परिपक्वता से निर्धारित होता है।

वार्ता का दौर गहन रूप से आगे बढ़ रहा था। इस क्रम में अलीसांद्रा हम दोनों को तरह–तरह के फोटोग्राफ दिखलाते जा रही थी। उसने बताया कि डिंका और नूबा जातियों में, गोदना कराने की सांस्कृतिक अनिवार्यता के मद में, किसी की व्यक्तिगत इच्छा का कोई महत्व नहीं होता है। पीड़ा की कठिन परीक्षा का धैर्यपूर्वक सामना करते हुए निर्धारित डिजाइन गोदवाने के बाद ही कोई व्यक्ति सामाजिक मान्यता प्राप्त करता है। कैमेरून के बाफिया लोगों के बीच गोदना–प्रतीकों के सामाजीकरण या मानवीकरण से संबंधित उनकी स्पष्ट मान्यता है कि गोदना–छाप से रहित जनजातीय मनुष्य और किसी सूअर अथवा चिंपाँजी में कोई अंतर नहीं है। दक्षिण–पूर्व नाइजीरिया के लोगों का विश्वास है कि उनके शरीर पर बने गोदना मृत्यु के बाद आत्मलोक तक जाने की यात्रा में मुद्रा (सिक्के) की तरह होता है जबकि इथियोपिया की ओमो घाटी के मुरसी लोग सौंदर्यीकरण के उद्देश्य से गोदना करवाते हैं। वहाँ के स्त्री–पुरुष अपने शरीर पर किसी वृक्ष–लतादि की लचकती डाल जैसे डिजाइन बनवाते हैं। इस तरह के डिजाइन का कोई प्रतीकात्मक अर्थ तो नहीं होता है, किंतु ऐसे डिजाइन विपरीत लिंग के लोगों को आकर्षित करते हैं।

अफ्रिका और ऑस्ट्रेलिया में प्रचलित गोदना परंपरा के मनोवैज्ञानिक पक्ष का उद्घाटन करते हुए डोरोथी ने कहा कि नश्तर–गोदना बनवाने के क्रम में यद्यपि कि बहुत शोणित बह जाता है और असह्य पीड़ा

भी होती है, फिर भी प्रथा से जुड़ी जनजातियाँ इस परंपरा का अनुपालन अवश्य करती हैं। इसके पीछे उनका तर्क है कि यह किसी व्यक्ति की स्वस्थता, सहनशीलता और बहादुरी को प्रदर्शित करता है, जो उन कबीलों की प्रतिष्ठा और जिम्मेवारी का मानक है। इस साहसिक मनोवृत्ति का प्रदर्शन वस्तुतः किसी तरुण बालक या बालिका के 'यौवन–अनुष्ठान' के अंतर्गत बनने वाले गोदना से ही शुरू हो जाता है, जब कम आयु के तरुण को यह प्रमाणित करना पड़ता है कि वह वयस्क आयु की जिम्मेवारी, खासकर युद्ध में घायल होने अथवा मृत्यु की आशंका झेलने का दम रखता है। इसी प्रकार एक तरुण बालिका को यह प्रमाणित करना पड़ता है कि शिशु–जन्म के क्रम में होने वाली असहय पीड़ा को झेलने में वह सक्षम होगी। पीड़ा के साथ भविष्य के रूपांतरकारी तत्व का जुड़ाव वास्तविक दैहिक अनुभव से होता है और भविष्य के सुखद अनुभव से मस्तिष्क में एक तरह की स्वचालित प्रक्रिया होती है जो इंडोर्फिन मुक्त स्राव करती है और आध्यात्मिक अनुभूति का प्रेरक होती है। इस प्रक्रिया से एक तरह की स्वप्निल स्थिति बनती है और आदमी दर्द को बिसारकर गोदना करवा लेता है।

डोरोथी और अलीसांद्रा ने गोदना–परंपरा पर गहन अध्ययन किया था। यह एक अच्छा संयोग था कि उनसे हमारी भेंट हो गयी। मुझे लगा, यह प्रकृति की नियति है। प्रकृति चाहती है कि लोक–विश्वास से जुड़ी इस देह–कला को मैं अपने भविष्य के कर्म–पथ का पाथेय बना लूँ। बातचीत का क्रम अभी भी चल रहा था। उनका मानना था कि विश्व के अलग–अलग भागों में समय के साथ गोदना के औजार और विधि में सुरक्षा की दृष्टि से परिवर्तन होता रहा है, किंतु इसका आधार–सिद्धांत आज भी वही है जो आदिम युग में था। जैसा कि गोदना शब्द से स्पष्ट होता है, त्वचा की तह छेदकर, गोदकर, कभी त्वचा को दागकर स्थायी छाप बनाना जिससे शरीर का रूपांतर हो, इसका मूल उद्देश्य रहा है। आश्चर्यजनक रूप से, इस परंपरा का प्रसार पूरे विश्व में हुआ और हर जगह इसे एक ही धार्मिक, सामाजिक, दैहिक और आध्यात्मिक संदर्भों के मिले–जुले प्रभाव के अंतर्गत रखा गया। भारत में यद्यपि कि गोदना से संबंधित अनुसंधान कार्य बहुत कम हुए हैं, किंतु विश्व की अनेक संस्कृतियों, जैसे कि ऑस्ट्रेलियन एबोरीजनल, माओरी संस्कृति, प्राचीन माया संस्कृति और अफ्रिका के जनजातीय समाज में गोदना–प्रथा पर प्रचुर अभिलेख तैयार किए गए हैं। आज के युग में इस कला का विस्तार विश्वविद्यालयों के युवा वर्ग, सिनेमा, विज्ञापन, व्यापार–जगत और फैशन की दुनिया में खूब तेजी से बढ़ रहा है जो इसे एक नयी ऊँचाई प्रदान करेगा।

अलीसांद्रा चाहती थी कि बासमती उसके नोटबुक में गोदना के कुछ चित्र बना दे। मैंने बासमती से कहा। वह सहर्ष मान गयी। बासमती नोटबुक पर चित्र बना रही थी और डोरोथी उसके फोटो खींच रही थी। अलीसांद्रा ने आगे बताया कि मनुष्य हजारों वर्षों से अपने शरीर पर गोदना बनवाते रहे हैं। यह अमिट देह–चित्र कभी साधारण, कभी अलंकृत किंतु हमेशा व्यक्तिगत, कभी तावीज की तरह, कभी प्रतिष्ठा के प्रतीक की तरह, कभी प्रेम की अभिव्यक्ति के रूप में, धार्मिक विश्वास के चिन्ह रूप में, कभी सौंदर्यवर्द्धक सज्जा के रूप में, कहीं अपराधी होने के अमिट प्रमाण के रूप में तो कहीं संगठन–विशेष के साथ संबद्धता के चिन्ह रूप में प्रयुक्त होता रहा है। यह तब भी था जब मनुष्य जंगल या गुफा में रहता था और आज भी है, जब मनुष्य अपने आप को बहुत आधुनिक मान रहा है। अपने मूल स्रोत, गुफाओं में उत्कीर्ण शैल–चित्रों से निकलकर गोदना मनुष्य की देह को अपना स्थायी निवास बना लिया और विश्व भर में पसरता रहा। इसकी उपस्थिति में अनेकों सभ्यता जन्मीं और तिरोभूत हो गयीं; अनेकों जनपद बने और अनेकों उजड़ गए। किसी ने इसे अपनी परिचिती कहकर, किसी ने अपने पूर्वजों की स्मृति कहकर तो किसी ने इसे धृति मानकर धारण

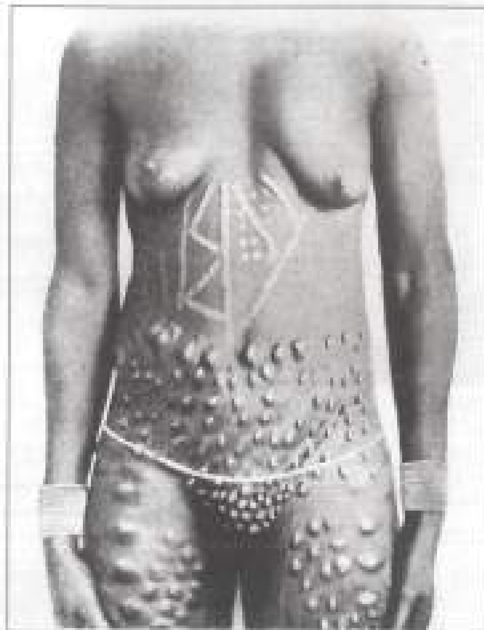
किया। इतिहास बहुत बातों को बिसार देता है, मगर गोदना की देह–कला उसके पृष्ठ से जो चिपकी, सो चिपकी ही रही। इतिहास के अनंत काल–खंड में कितने राजे–रजवाड़े उठे और गिरे, गोदना की अस्मिता कभी कम नहीं हुई। इसे महान शूर–वीरों ने भी अपनाया और विख्यात सुंदरियों ने भी अंगीकार किया। आधुनिक युग में, विश्व के अनेक देशों में, गोदना को शरीर आकर्षक बनाने के एक साधन के रूप में देखा जा रहा है। कलाओं की अन्य शाखाओं के अनुरूप ही गोदना भी आधुनिक फैशन के संसार में एक कला है जिसके संग सौंदर्यबोध की अनुभूति, धैर्य और कलात्मक निपुणता जुड़ी है। यह चिरंजीवी है।



बात करने में सभी लोग ऐसे मगन थे कि पता ही नहीं चला कब साँझ हो गयी। वह दोनों तो दिन का भोजन करना भी भूल गयी। आखिर विचार किया गया कि एक दिन में गोदना के वैश्विक प्रसार पर चर्चा संभव नहीं है, इसलिए अभी वार्ता को विराम दिया जाए और अवसर मिलने पर फिर इस विषय पर आगे काम किया जाए। अलीसांद्रा ने मुझे अफ्रिकी गोदना से संबंधित कुछ फोटो और अपने नोट दिया। विदा होते समय उसने बासमती को अपना गुप्त गोदना–भंडार दिखलाने के लिए और चित्र बनाने के लिए बहुत धन्यवाद दिया। दो ही दिन में हम लोग एक–दूसरे के घनिष्ठ मित्र जैसे हो गए थे। आखिर कॉफी पीकर हम दोनों वहीं से चलने को हुए तो अलीसांद्रा ने बासमती को एक सुंदर पर्स, कुछ पेंसिल और इटली में बना एक बॉडी लोशन, देह में लगाने वाला क्रीम दिया। डोरोथी ने थोड़ा क्रीम उँगली में लगाकर उसकी फट्ठी पर गुदे हाथी पर मल दिया। हाथ और बाँह पर क्रीम मलते ही कमरे में एक दिव्य सुगंध फैल गयी और गोदना की छाप एकदम चकचका उठी। अलीसांद्रा ने बताया कि वह क्रीम लैवेंडर घास के महीन फूल से बना था।

होटल से निकलकर हम दोनों जब सड़क पर आए तो लुकझुक साँझ हो गयी थी। बासमती बहुत प्रसन्न थी। उसकी आँख किसी निश्चय से झिलमिला रही थी और मुँह पर प्रौढ़ता की आभा पसर गयी थी। प्रसन्न तो मैं भी था, लेकिन मेरी प्रसन्नता पर कई बातों का बोझ था। मैं उस भार को हल्का करने के लिए कहीं बैठकर बतियाना चाहता था। मैंने बासमती से कहा कि कहीं कोई शांत–सुंदर जगह होती तो वहाँ बैठकर थोड़ी देर बतियाते। उसने बताया कि गंगासागर ऐसी जगह है, उसके पक्का घाट पर बहुत लोग शाम में बैठते हैं। हम लोग शिव–मंदिर चौक की ओर बढ़ रहे थे तो रास्ते के किनारे एक जगह एक महिला शतरंजी पर फैलाकर मोजा और रुमाल बेच रही थी। बासमती के मन में मेरे लिए रुमाल खरीदने का विचार आया। उसने कहा, "आपने कुछ नहीं लिया..... आपके लिए रुमाल ले लेती हूँ..... उस पर गोदना–चित्र बना दूँगी.....।" मुझे अच्छा लगा। उसे चार सादे रुमाल और चार जोड़े पायताबा लेने को कहा। एक–एक जोड़े पायताबा तो हम दोनों ने उसी समय पैर में लगा लिया, बाँकी दोनों सामान उसने पर्स में रख लिया।

कुछ देर चलने पर हम गंगासागर पोखर पर आ गए। वास्तव में वह स्थान शांत और रमणीक था। वहाँ एक जगह बैठने के बाद मैंने बासमती से कहा कि कुछ देर चुप रहकर वह पानी में पड़ती रोशनी की झिलमिलाहट देखे, बोले नहीं, बस, पिछले दो दिनों के घटनाक्रम को मन में पचाने का प्रयास करे। वह मेरे बगल में पाया से ओठंगकर बैठ गयी।



मैं डोरोथी और अलीसांद्रा से सुनी बातों को जितना पचाना चाहता था, वे बातें मन में उतनी ही फैलती जाती थीं। मैं पहली बार मानव–संस्कृति के किसी एक पक्ष के इतने विराट स्वरूप का अवगाहन कर रहा था जो मेरे मन–मस्तिष्क में अँट नहीं रहा था। मैं अफ्रिकी समाज के संबंध में कुछ खास नहीं जानता था, किंतु उनके नग्न शरीर पर कल्पनातीत पीड़ा झेलने के बाद बने गोदना, अपनी परंपरा के प्रति उनका प्राणाधिक लगाव और अमेरिकी लोगों द्वारा उन्हें गुलाम बनाए जाने की घटना मेरे मन में उनके प्रति सहानुभूति के भाव भर रही थी। मुझे लगा कि गोदना के पारंपरिक प्रयोगकर्ता किसी न किसी रूप में एक–दूसरे के बहुत नजदीक हैं, चाहे वे अफ्रिकी हों अथवा बासमती के जैसे भारतीय समुदाय, सब के सब दलित–संस्कृति के ही अंग हैं। हजारों वर्षों की पीड़ा में छिपे हर्ष और प्राणांतक कष्ट सहने के बाद देह को सजाने की उनकी प्रवृत्ति मात्र इतने तक सीमित नहीं है, विश्व की इस अति प्राचीन कला–विधान में दलितों–पीड़ितों का संपूर्ण जीवन–चक्र गुंफित है। मुझे लगा कि गोदना का अवलंबन कर हम वंचित समुदायों के जीवन और उनके शिक्षण का कोई उपाय जरूर खोज सकते हैं। मुझे गोदना को साधना के तौर पर लेना होगा। मेरा मन इस निश्चय से मजबूत हुआ। मैंने बासमती की ओर ताका। पाया में ओठंगकर वह नींद पड़ गयी थी। आज कितने दिनों से वह लगातार खट ही रही थी। मेरी बीमारी में रात–दिन का जागरण और इसके बाद दो दिनों से किसी प्रौढ़ बुद्धिजीवी की तरह विदेशियों के साथ बतकुट्टन; इस सबसे वह थक गयी होगी। मैंने गोद में पड़े उसके हाथ को सहलाया। मेरे स्पर्श से वह अकचकाकर जाग गयी और मुस्कुराते हुए बोली, "मैं सोयी नहीं हूँ..... ऐसे ही थोड़ी आँख लग गयी ..... आप कहिए न!"

मैंने कहा, "अब मुझे नहीं बोलना है ..... आप बहुत सो लिए ..... अब आपको बोलना है ..... ।"

उसने अपने शरीर को दाएँ–बाएँ मरोड़कर फरहर होते हुए कहा, "आप ठीक कहते हैं..... मैं ही नहीं, पूरा हरिजन समाज आज भी हजारों बरस से सोया हुआ ही है..... अब भी अगर ये लोग नहीं जगे तो पूरा जमाना इनकी पीठ को रौंदते हुए आगे बढ़ जाएगा और ऐसा खुनावें कर देगा कि ये लोग फिर कभी उठ नहीं पाएंगे..... मैं तो समझ रही हूँ कि आपकी संगत में मुझे नया जनम मिला है, लेकिन इस नए जनम में अभी तो मैं बच्ची हूँ..... आप उँगली पकड़कर जहाँ ले जाएंगे, पीछे नहीं हटूँगी.....।" उसकी आँखों में समर्पण का भाव बहुत गहरा गया था।



मेरे प्रति बासमती और उसकी बहन का अटूट विश्वास और मेरी भलमनसी पर उनके भरोसे का अनुभव करके मैं कई बार अपने आपको धन्य मान चुका हूँ , मगर केवल एक बात है जिसके कारण मैंने कभी–कभी भीतर ही भीतर अपने आपको अपराधी भी माना है। मैं जिस सामाजिक परिवेश में पला–बढ़ा और छुटपन से जिन लोगों की संगत में रहा उसका एक प्रभाव तो मेरे स्वभाव पर गहरा पड़ा; मेरी मंडली के प्रायः हर सदस्य स्त्रीदेह की कामुक व्याख्या में काफी रुचि लेते थे। यद्यपि कि इस मनोवृत्ति के कारण किसी ने कोई बड़ा अपराध नहीं किया, किंतु किसी लड़की को देखकर चुहलबाजी का रवैया तो इसी का परिणाम था। बासमती के भरोसे के बावजूद मैंने उस हद को भी तोड़ दिया था, मगर मैं उस घटना को लेकर भीतर–भीतर बहुत आहत रह रहा था। पिछले तीन दिनों से मैं काफी कूह रहा था; विश्वासघात करना और छिपा लेना, यह नहीं हो सकता। मेरी आँखों में फिर वह स्वप्न नाचने लगा। उस स्वप्न का निहितार्थ क्या था? बासमती ने उस यौनाग्नि के कुंड में देह मलकर मेरा स्नान कराया। मेरे मन के कर्दम फिर भी नहीं जले? गीता का श्लोक यादकर मैंने कहा, 'कृष्णं शरणं गच्छामि!' मन फिर भी साफ नहीं हुआ। नहीं, अपराध का यह भूत तब तक मेरा पीछा नहीं छोड़ेगा जब तक मैं इसकी गठरी बासमती से छिपाता रहूंगा। उसे बतलाना ही होगा। लेकिन इतनी बड़ी बात उसे कैसे बतलाऊं? मन तिलमिलाने लगा। बासमती मेरी ऐसी हालत को पहचान लेती थी। उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और पूछा, "आप बहुत देर से सोच रहे हैं ..... क्या सोचने लगे जो परेशान लग रहे हैं?"

मैं वास्तव में परेसान था। मैंने कहा, "आपने ठीक समझा। मैं सही में कुछ परेसान हूं ..... बात ही कुछ ऐसी है कि कहते नहीं बन रहा है .....।"

उसने कहा, "घबराइए नहीं..... मेरी–आपकी दोस्ती से बड़ी कोई बात नही हो सकती..... "

साहस बटोरते हुए मैंने कहा, "आप मानती हैं कि आपका नया जनम हुआ है..... मैं भी नया जनम लेने के लिए छटपटा रहा हूँ, मगर मेरा पाप ही मुझे पुराने जीवन से बाहर नहीं आने दे रहा है..... ।"

उसने धैर्यपूर्वक किसी बूढ़ी बितपन की तरह कहा, "नानी एक ठो फकरा पढ़ती थी, 'पाँक में सूअर लोटे–पोटे, पाँक पबित्तर काटे–बाँटे..... ।' आदमी खुद अपनी गंदगी से लिपटे रहने में इतना सुख पाता है कि उसे छोड़ना नहीं चाहता है और कहता है कि पाप उसे छोड़ नहीं रहा है। जो बात आपको पसंद नहीं है, उसे छिपाते काहे हैं? छोड़ क्यों नहीं देते? थोड़ा जोर लगाइए और उसे निकाल–बाहर कीजिए....."

बासमती की बात से मैंने एक झटका जैसा महसूस किया और उसे उस रात की बात बतला दी। घटना का ब्योरा सुनकर मुझे लगा कि वह सन्न रह गयी मगर प्रकट रूप में उसने कहा, "इस बात से आपको बहुत दुखी होने की जरूरत नहीं है ..... एक साथ सोने–बैठने से ऐसा कुछ हो जाता है ..... आपने

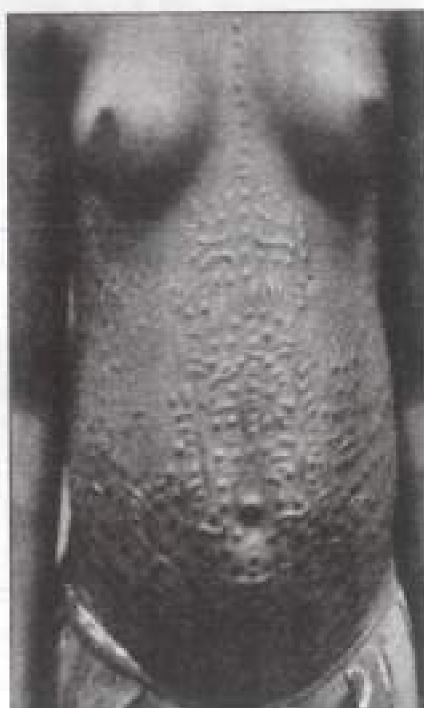
देखा मगर कुछ किया नहीं.... बल्कि मुझे झाँप दिया ..... आपने कोई अपराध नहीं किया सो मेरे ऊपर उपकार किया .....इस बात के लिए दुखी नहीं होइए, भूल जाइए।" मैं उसकी सदाशयता के आगे नत था।

मैंने उसे स्वप्न की बात भी बतलायी और गीता के श्लोक से बनी अपनी समझदारी की बात भी बतलायी। उसने मेरी ओर ताका और कहा, "आपका भी नया जनम हो गया है ..... आप आग में नहाकर आए हैं ..... अब आप में कोई गंदगी नहीं है.... आप मानिए कि यह सभी घटना हम दोनों के नए जनम के लिए ही हुई है।" वहाँ से उठकर हम दोनों चौक की ओर बढ़े तो एक जगह समोसा छन रहा था। समोसे की गंध से भूख जग गयी। उसने कहा कि सबके लिए समोसा खरीद लेते हैं, घर पर सब कोई खाएंगे। आगे बढ़ने पर जब स्टेशन के नजदीक आए तो उसने एक जगह बिलमते हुए कहा, "मेरी इच्छा मछली लेने की है लेकिन आज रात में आप अगर वहीं रह सकते हैं तो लीजिए, नही तो छोड़ दीजिए .....।"

मैंने कहा, "मछली खाने का मन है तो ले लेते हैं.... मैं भी खा लूँगा..... इसके लिए वहाँ रहना तो जरूरी नहीं है? मैं खाकर अपनी जगह पर चला जाऊँगा.....।"

मेरी बात से वह खीज उठी। उसने नाराजगी के स्वर में कहा, "खाने–पीने के अलावे और कोई काम नहीं करना है? समय भागता जा रहा है और खाली सोचते रहने से काम पूरा हो जाएगा क्या? काम नहीं करना है तो सबको बता काहे देते हैं?"

वह वास्तव में नाराज हो गयी थी। मुझे सोच–विचार में फँसा देखकर बासमती जरूर मेरी दुविधा को भाँप गयी होगी। उसने मुसकियाते हुए कहा, "आपका गाँव कहते हैं कि बागमती नदी के किछेर पर बसा हुआ है तो उमड़ी नदी में हेलकर कभी नहीं देखे हैं? आप लहर देखकर ही डर जाइएगा तो कैसे काम चलेगा?"



मैं सही में एक बार तैरते हुए डूबने लगा था। दूर तक फैली नदी में उठती लहर देखकर डर गया था और इसी कारण तैरना खत्म हो गया, मैं डूबने लगा। देखा नाव चला रहे करिया भाई (तेजू बाबू) ने और कूदकर बचाया। मैंने कहा, "अब मैं लहर देखकर डरता नहीं हूँ, मगर आशंका इतनी बढ़ जाती है कि....."

बासमती ने मेरी कमजोर नस को अपनी चुटकी में पकड़ लिया था। वह किसी सिद्ध गुणी की तरह बोली, "समस्या को बढ़ा–चढ़ाकर देखने की आदत होती है पढ़े–लिखे लोगों की..... बहुत आदमी तो बिना मतलब के मन में इतना गुनधुन करने लगता है कि वास्तव में समस्या खड़ी हो जाती है। इसमें भी छोटे–बड़े लोगों की कोई बात है। हमारे जैसे जन–मजदूर के पेट में समस्या की ऐसी ओझरी नहीं रहती है। देह धुनकर खटनी और चैन के साथ पटनी। जितनी दिहाड़ी मिली, चाट–पोछकर खा लिया और चैन से सोया। न बासी खाना बचता है और न कोई समस्या..... फिर भोर हुआ तो वही कमरतोड़ खटनी और रात में रोटी पर चटनी..... आप लोग ऐसे नहीं रह सकते हैं। आप लोगों का संसार बहुत बड़ा है तो समस्या भी बहुत रहती है।"

मैं बासमती के अनुभव और भोगे हुए यथार्थ के आगे हमेशा अपने आपको निरुत्तर पाता था। उसने फिर बोलना शुरू किया, "दिक्कत और समस्या तो सबों की जिनगी में रहती है और हमेशा लोगों के साथ ही लगी रहती है। लोग उसको अपने निश्चय से निपटाते रहते हैं। लेकिन जादा पढ़े–लिखे लोग किसी समस्या को मथते–मथते इतना गाढ़ा कर देते हैं कि उससे निकलना कठिन लगता रहता है। जिनगी इतने काँटों से भरी थोड़े होती है! मजदूर लोग किसी समस्या को पिचके हुए बैलून की तरह से देखते हैं। मेरी दीदी की बेटी बैलून लेकर खेलती रहती है और उस खेल के पीछे खाना–पीना भी बिसर जाती है। जब बैलून की हवा निकलकर पिचक जाती है तो उसको रबड़ समझकर सड़क पर फेंक देती है। उस बैलून को दूसरा समझदार बच्चा उठा लेता है और मुंह से फूँककर फुला लेता है। फिर वही रामा, वही खटोला....बैलून फिर से एक बार फूलकर बच्चे को उलझा लेता है... ''

बासमती के समस्या–विश्लेषण से मुझे तत्क्षण कोई अभिज्ञान हुआ हो या नहीं, किंतु पिचके हुए बैलून वाले उसके उपमान ने मुझे उस समय भी हँसा दिया और आज भी मैं जनकपुर मछहट्टा पर कही उसकी बात याद कर गुदगुदा उठता हूँ। उसके तर्क के आगे मेरा जोर नहीं चल पाता था। मैंने उसे कुछ कहा नहीं मगर मछहट्टा में घुस गया। वहाँ तरह–तरह की मछली कठौतियों में छलबला रही थी। उसकी पसंद की एक रोहू मछली ले लिए। मछली खरीदकर जब वापस लौट रहे थे तो बड़ी–बड़ी झिंगा मछली पर उसकी नजर गयी। वह लपककर वहाँ चली गयी और वह भी खरीद लिया। मछहट्टा से निकलकर जब वापस आ रहे थे तो उसने कहा कि सियाराम की दुकान पर जाकर उसकी बहन को बता दें कि मछली लिए हैं, सो जल्दी घर आ जाए। बासमती उस दुकान पर नहीं जाती थी। वहाँ जाकर मैंने बता दिया। चलते–चलते दोनों आदमी जब लारी ऑफिस के पास आए तो बासमती को मैंने बताया कि वह आगे बढ़े, मैं कपड़े बदलकर आ रहा हूँ। मैं झटपट कपड़े बदलकर शौचालय गया और उधर से निवृत होकर कांछा से मिलने रसोईघर में गया तो वह सब्जी पकाने की तैयारी कर रहा था। उसे खाना बनाने से रोक दिया और बासमती के यहाँ पहुँचने को कहकर मैं विदा हो गया।

मैं बासमती के आँगन पहुँचा तो रासबती पहले ही आ चुकी थी और काम–काज में लग गई थी। बासमती अपनी बहन के पास ही बैठी थी। उसके पास अभी ढेर सारी बातें थीं जो उसे अपनी बहन को बतलाना था। अभी घर में सबके लिए नए कपड़े आए थे, लालटेन भी दो हो गए, अब तीन–तीन पिढ़िया है तो कोई ईंट पर क्यों बैठे! रासबती नयी साड़ी में एकदम फलकी हुई लग रही थी। कलकत्ते की बनी तौंत की साड़ी के बारे में उसने सुना जरूर था, लेकिन पहनी थी पहली बार। बासमती तो अब बिलकुल बदल ही गयी थी। अब वह चप्पल को चौखट के बाहर नहीं रखेगी; चाम का मँहगा चप्पल है, कहीं कुत्ता ले जाएगा तो! दीदी ने कहा, डब्बे में डालकर कोतरी में रखा करो! उसके गाँव की किसी लड़की के पास स्वेटर नहीं है। सो तो शॉल भी किसीके पास नहीं है, सभी लड़की–औरत जाड़े में साड़ी को दुहराकर ओढ़ लेती है। एक बार सुरजी के गिरहत की बेटी का परसूती हुआ तो उसकी उतरन सलवार–सूट इनाम में मिला था, मगर ऊ भी दुपट्टा नहीं दिया। ऐसा दुपट्टा अपने इधर कहाँ मिलेगा! एक दुपट्टा, सतरह काम! माथा और कान झाँप लिया तो मफलर, गले में लिपटा लिया तो फैशन, नही तो छाती का झाँप तो है ही.....।

उस समय तक कांछा आ गया था। अभी रासबती को अपनी बहन के पास रहना है। बाँकी काम कांछा के जिम्मे। कांछा पहले रोहू मछली को निकाएगा–धोएगा, उसमें हल्दी और लहसुन पीसकर मिलाएगा, इसके बाद मछली तलेगा, आखिर में झिंगा तलेगा कि सब कोई नमक–मिर्च के साथ उसका नाश्ता करे।

देखा मगर कुछ किया नहीं..... बल्कि मुझे झाँप दिया ..... आपने कोई अपराध नहीं किया सो मेरे ऊपर उपकार किया .....इस बात के लिए दुखी नहीं होइए, भूल जाइए।'' मैं उसकी सदाशयता के आगे नत था।

मैंने उसे स्वप्न की बात भी बतलायी और गीता के श्लोक से बनी अपनी समझदारी की बात भी बतलायी। उसने मेरी ओर ताका और कहा, ''आपका भी नया जनम हो गया है ..... आप आग में नहाकर आए हैं ..... अब आप में कोई गंदगी नहीं है..... आप मानिए कि यह सभी घटना हम दोनों के नए जनम के लिए ही हुई है।'' वहाँ से उठकर हम दोनों चौक की ओर बढ़े तो एक जगह समोसा छन रहा था। समोसे की गंध से भूख जग गयी। उसने कहा कि सबके लिए समोसा खरीद लेते हैं, घर पर सब कोई खाएंगे। आगे बढ़ने पर जब स्टेशन के नजदीक आए तो उसने एक जगह बिलमते हुए कहा, ''मेरी इच्छा मछली लेने की है लेकिन आज रात में आप अगर वहीं रह सकते हैं तो लीजिए, नहीं तो छोड़ दीजिए .....।''

मैंने कहा, ''मछली खाने का मन है तो ले लेते हैं..... मैं भी खा लूँगा..... इसके लिए वहाँ रहना तो जरूरी नहीं है? मैं खाकर अपनी जगह पर चला जाऊँगा.....।''

मेरी बात से वह खीज उठी। उसने नाराजगी के स्वर में कहा, ''खाने–पीने के अलावे और कोई काम नहीं करना है? समय भागता जा रहा है और खाली सोचते रहने से काम पूरा हो जाएगा क्या? काम नहीं करना है तो सबको बता काहे देते हैं?''

वह वास्तव में नाराज हो गयी थी। मुझे सोच–विचार में फँसा देखकर बासमती जरूर मेरी दुविधा को भाँप गयी होगी। उसने मुसकियाते हुए कहा, ''आपका गाँव कहते हैं कि बागमती नदी के किछेर पर बसा हुआ है तो उमड़ी नदी में हेलकर कभी नहीं देखे हैं? आप लहर देखकर ही डर जाइएगा तो कैसे काम चलेगा?''



मैं सही में एक बार तैरते हुए डूबने लगा था। दूर तक फैली नदी में उठती लहर देखकर डर गया था और इसी कारण तैरना खतम हो गया, मैं डूबने लगा। देखा नाव चला रहे करिया भाई (तेजू बाबू) ने और कूदकर बचाया। मैंने कहा, ''अब मैं लहर देखकर डरता नहीं हूँ, मगर आशंका इतनी बढ़ जाती है कि.....''

बासमती ने मेरी कमजोर नस को अपनी चुटकी में पकड़ लिया था। वह किसी सिद्ध गुणी की तरह बोली, ''समस्या को बढ़ा–चढ़ाकर देखने की आदत होती है पढ़े–लिखे लोगों की..... बहुत आदमी तो बिना मतलब के मन में इतना गुनधुन करने लगता है कि वास्तव में समस्या खड़ी हो जाती है। इसमें भी छोटे–बड़े लोगों की कोई बात है। हमारे जैसे जन–मजदूर के पेट में समस्या की ऐसी ओझरी नहीं रहती है। देह धुनकर खटनी और चैन के साथ पटनी। जितनी दिहाड़ी मिली, चाट–पोछकर खा लिया और चैन से सोया। न बासी खाना बचता है और न कोई समस्या..... फिर भोर हुआ तो वही कमरतोड़ खटनी और रात में रोटी पर चटनी..... आप लोग ऐसे नहीं रह सकते हैं। आप लोगों का संसार बहुत बड़ा है तो समस्या भी बहुत रहती है।''

इतना कुछ करने के बाद कांछा एक बार सबको चाय पिलाएगा। तब तक तो रासबती भी चूल्हे के पास आ जाएगी।

कांछा फटाफट काम में लग गया। बासमती बहन का हाथ पकड़कर अपनी कोठरी में बिछावन पर ले गयी। अभी वह बहुत व्यस्त थी। अभी मेरी ओर उसका ध्यान नहीं था। मैं तो खुद उसके पीछे–पीछे लगा था और सब कुछ देख रहा था। पहले उसने पर्स निकाला और रासबती की गोद में रख दिया। रासबती उलट–पलटकर पर्स को बारीकी से निहार रही थी। अपने देष में ऐसा पर्स नहीं मिल सकता है। यह बिदेश में बना है। चार खाने वाले उस पर्स में बहुत कुछ था। एक खाने में कुछ पेंसिल थे, एक खाने में रुमाल और पायताबा था, एक खाने में क्रीम था और आखरी खाने में रुपयों के साथ कुल बीस ठो फोटो थे। बासमती हरेक खाने से सामान बाहर निकालकर बहन को दिखलाती थी और फिर उसी खाने में रख देती थी। सब कुछ देख–परखकर रासबती निहाल हो रही थी। गोले ट्यूब में भरे क्रीम देखकर वह अकचका रही थी तभी बासमती ने ट्यूब से थोड़ा क्रीम दाबकर उसकी फट्ठी पर लगाया और गुदी हुई पोथी पर हथेली से मल दिया। क्रीम मलते ही पूरी कोठरी सुगंध से गमगमा उठी। गमक सूंघकर कांछा भी दौड़ा चला आया। बासमती बहन की बाँह पर क्रीम मल रही थी और वह सुख के झूले पर पेंग लगा रही थी। कांछा पहचान गया। उसने चहकते हुए कहा, "मलाइ थाहा छ ..... यो जीउ मा लगाउने क्रीम हो ..... यो घीउ जस्तो हुन्छ ... .. मेरो साहू सधैं शरीर मा लगाउँ छ..... ।" (मुझे पता है..... यह देह में लगाने वाला क्रीम है..... यह घी जैसा होता है ..... मेरे मालिक बराबर देह में लगाते हैं.....)। उसके बोलने का ढंग ऐसा था कि सभी लोग हँसने लगे। कांछा सबों को हँसाकर मछली तलने चला गया।



बासमती अपनी बहन को विदेशी महिलाओं के साथ दो दिन की भेंट का ब्योरा सुना रही थी, इसलिए मैं कांछा के साथ चूल्हे के पास बैठकर आग तापने लगा। बासमती अपनी बहन को अफ्रिकी गोदना के बारे में बता रही थी और उसे फोटो भी दिखला रही थी। मैं अचंभित था कि अनुवाद करते हुए मैंने जितना उसे बताया था उससे कहीं अधिक स्पष्टता के साथ वह अपनी बहन को बतला रही थी। शायद यह दो परंपरागत समाज की आपसी समझदारी का विषय हो।

कांछा लोहिया में झिंगा तल रहा था और मैं छनछनाकर सफेद से लाल होते झिंगा को देख रहा था। मैं असल में अपने मन को तोल रहा था। पिछले तीन दिनों में मुझे जब भी एकांत मिला, मैं अपने आपको तोलता ही रहा हूँ। बासमती ने ठीक ही कहा था कि कुछ लोग बात को मथते–मथते भारी बना देते हैं। हो सकता है, उसकी यह बात भी सही हो कि कम पढ़े या बेपढ़े लोग बतकुट्टन की जगह सीधे निदान की बात सोचते हैं। मुझे लगा, सही में मैं ज्यादा सोचने लग जाता हूँ जबकि उसकी निष्पत्ति कुछ खास नहीं होती। यह एक तरह से बौद्धिक ऐब है। मैंने सही में माथे को दाएँ–बाएँ झटकारा और मान लिया कि मुझे निर्विकार भाव से बासमती के साथ गोदना उतारने का काम करना है। भविष्य में यह काम बड़े कल्याण का साधन बनेगा। बासमती सही कहती है, मेरा भी नया जन्म हो चुका है।

कांछा उस समय तक झिंगा तल चुका था। उसने लोहिया से एक थाली में निकाला, थाली में थोड़ा नमक रखा और कूदकर आँगन में जाकर पौधे से तोड़कर हरा मिरचा ले आया। जब हम दोनों कोठरी में प्रवेश कर रहे थे उस समय बासमती शायद मेरे बारे में ही कुछ बतला रही थी। मुझे लगता है कि बासमती ने अपनी बहन को बतलाया होगा कि उसके शरीर से गोदना उतारकर पुस्तक बनाने की योजना से मैं भी सहमत हो गया था और विदेशी महिलाओं ने भी उस योजना की प्रशंसा की थी, मगर मैं कुछ गलत हो जाने की आशंका से हिचक रहा था। इस प्रसंग को मैं ठीक से सुन नहीं पाया था, किंतु रासबती अपनी बहन को जो जवाब दे रही थी और बासमती की मुखाकृति उस समय जैसी थी, उस आधार पर मैंने अनुमान लगाया।

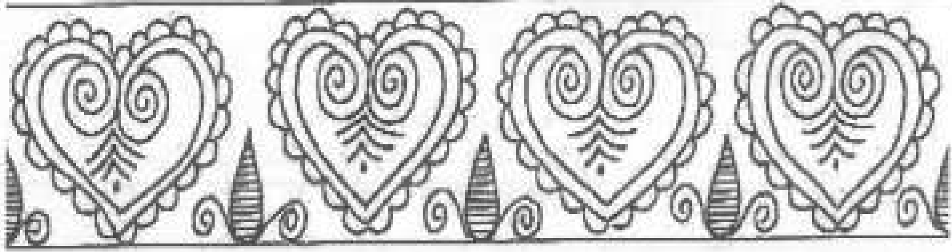
समोसे के साथ तली हुई झिंगा नमक–मिर्च के साथ दाँतों तले कुर्र–कुर्र कर रही थी। सभी लोग एक ही थाली से ले–लेकर खा रहे थे। रासबती ने हँसते हुए कहा, "ऐसा 'चिखना' अगर रक्सी पीने वालों को मिल जाए तो ऊ पीते–पीते बौरा जाएगा..... ।" इस बात पर सबसे ज्यादा हँसी कांछा को आयी। नेपाली भाषा में रक्सी कहते हैं दारू या शराब को और मैथिली भाषा में 'चिखना' कहते हैं चटपटे–नमकीन मेजन को जो दारू के साथ चखने के लिए लिया जाता है। नेपाल में दारू का बेशुमार चलन था। रासबती भी कभी–कभी अपने पति के साथ पीती थी। मैंने रासबती को जवाब देते हुए कहा, "मैं चाहता हूँ कि नेपाल में बेतहाशा बह रहे दारू पर लगाम लगे, लेकिन आप चाहें तो किसी दिन ऐसा चिखना बनाकर पी सकती हैं... ।" बात आयी–गयी हो गयी।

नाश्ता खतम होने से पहले कांछा चाय बनाकर ले आया। चाय पीते हुए मैंने रासबती से पूछा, "बासमती ने आपको विदेशी औरतों के बारे में बताया होगा, कैसा लगा ..... ?"

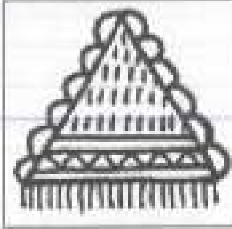
"भाटसाएब, हम तो पहिले से कहते हैं कि हमरा बहिन के भाग में बहुत नाम–जस लिखा है। आप जब मिले तो हमको दिमाग में एकदम पक्का हो गया। अब बिदेसी औरत सबके मिलने से ऊ बात एकदम साफ हो गया ..... मगर हमरा बहिन बोल रही है कि उसके साथ काम करने में आपको लगता है कि कहीं कोई ऊँचा–नीचा हो जाएगा ..... आप अपना दिल से ई भरम निकाल दीजिए ..... हमरा बहिन तो कउनो गड़बड़ी नहिए करेगी, काहे कि हमरी नानी उसको सप्पत दिया था ..... आउर आप एतना गियानी हो के कइसे गड़बड़ा सकते हैं! हम तो एही दुआ करते हैं कि आप लोग जो सोचे हैं सो काम पूरा हो जाए ..... आउर हम क्या कहें? हमरा बात पर खियाल कीजिएगा ..... ।" रासबती इतना बोलकर चुप हो गयी।

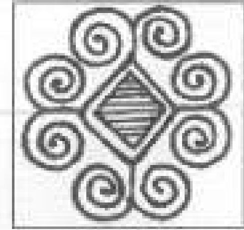
मैं कुछ देर चुप रहा। मेरे सामने में एक लंबा रास्ता इंतजार कर रहा था। दलित–वंचित, उपेक्षित लोगों के लिए यह रास्ता उनके जीवन में बेहतर बदलाव लाएगा। अगर हम लोग उस बदलाव को लाने में सफल हुए तो यह हमारे जीवन का उत्तम लक्ष्य होगा। रासबती की दुआ ईश्वर ने कबूल कर ली। मेरे मन की हिचक दूर हो गयी। मैंने पहली बार खुले मन से उस कठिन काम में लगने की बात कबूल ली। मैंने कहा, "आप दुआ कीजिए कि हम लोग बढ़िया से इस काम को पूरा कर सकें। अब यही मेरे जीवन का निसान बनेगा।" मेरी बात सुनकर कांछा ताली बजाने लगा, रासबती ने भी ताली बजा दी, बासमती मुस्कुरा उठी।

गोदना उतारने का काम कल रात से ही शुरू हो गया था। नाश्ता–चाय के बाद रासबती मेरे साथ ही कोठरी से निकली। मैं पेशाब करने बाहर चला गया। बाहर से लौटा तो बासमती कपड़े बदलकर नाइटी पहन चुकी थी। कोठरी में प्रवेश करने के बाद उसने स्वयं दरवाजा बंद कर लिया। मैं बिछावन पर बैठा अपने मन को संयत कर रहा था। कमरे के एक कोने में लालटेन जल रहा था, लेकिन उसके मद्धिम प्रकाश में गोदना के चित्र उतारना संभव नहीं था। बासमती ने काम की भूमिका बाँधते हुए कहा, "एक डाक्टर को भी लोग भगवान ही कहते हैं, काहे कि वह दुख से छुटकारा दिलाता है। इसीलिए लोग अपना शरीर उसके हाथ में सौंप देते हैं। अब वह देह को जहाँ मन हो छुवे, दबावे कि हँसोथे, लेकिन डाक्टर के मन में कोई गलत बात नहीं आती है। हम लोग जो काम करने जा रहे हैं, उससे गरीब औरतों को काम मिलेगा, उनका दुख दूर होगा। इसीलिए आप मान लीजिए कि आप भगवान का ही काम करने जा रहे हैं।"



उस समय मेरे मन में कोई उद्वेलन नहीं था। कहीं से भी मैं असहज नहीं था। बासमती की बातों से मेरा हौसला और भी बढ़ गया। उसने कहा, "ठेहुना से नीचे के भाग में बहुत छोटी–छोटी बुट्टी बनी हुई है। यह तो मैं कभी दिन में ओसारा पर बैठकर उतार लूँगी। अभी हम लोग ठेहुना से ऊपर का काम करेंगे।" इतना बोलकर





उसने अलीसांद्रा का दिया क्रीम ठेहुना से ऊपर के भाग में मला और बैठे ही बैठे अपना एक पैर पसार दिया। जब उसने टॉर्च जलाया तो उसकी तेज रोशनी में जांघ के सारे चित्र चकचका उठे। ठेहुना से ठीक ऊपर, करीब तीन इंच की चौड़ाई में, पान जैसे डिजाइन की एक पट्टी बनी हुई थी। बासमती ने बताया कि उसे 'पनडोरिया' कहते हैं; पनडोरिया असल में देवता–पितर का आसन होता है। मुझे पता था, मिथिला–परंपरा में पान स्नेह, आदर और पूजा की सामग्री के रूप में माना जाता है। बहुत आसानी से मैंने 'पनडोरिया' का आकार कागज पर उतार लिया। एक पैर से चित्र उतारने के बाद दूसरे पैर के ठेहुना से उसी प्रकार चित्र उतार लिया गया। इस दौर का यह पहला काम था। चित्र की अनुकृति देखकर हम बहुत प्रसन्न थे।





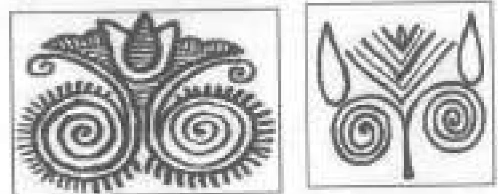
'पनडोरिया' से सटे ठीक ऊपर के भाग में अलंकृत त्रिकोण से बनी रचना बुट्टी की तरह सजी हुई थी। इस त्रिकोण के आधार पर झालर जैसा लटक रहा था, उससे ऊपर तिकनी झिटकी, बाहरी भाग में

मेहरावी झिटकी और त्रिकोण के पेट में खुदी जैसी कचनी। कुल मिलाकर रचना किसी आभूषण जैसी लग रही थी। उसने बताया, इसे 'झुमका' कहते हैं। मेरे पिताजी होली के समय में गीत लिखते थे। झुमके से संबंधित उनका एक गीत याद आया, "चल न यूँ बनके मचलके झूमके, झूमके मुख चूम लेंगे झूमके।" मुझे हँसी आ गयी। उसने समझा, मैं जांघ देखकर हँसा।

झुमका से सटाकर एक पाँती से फिर कुछ बुट्टी बनी थी। इसकी रचना प्रतीकात्मक चिन्ह 'तामा' से हुई थी। किसी लता के सुंघ (स्पाइरल) और लॉकेट जैसी चौकनी वेदी में सरल रेखा वाली कचनी से बने इस गोदना को उसने कोई नाम तो नहीं दिया, लेकिन बताया कि सलहेस बाबा के घोड़े की गरदन में यह तावीज हमेशा लटकता रहता है।



तावीज जैसी रचना से ऊपर, जांघ के भीतरी भाग में एक दो रहस्यमय माछ बना था जिसके माथे पर दोनों तरफ से मुकुट पहने दो अलंकृत सुग्गा (सूआ) बने थे। उसने बताया कि यह गोदना दो जगह बनाया जाता है, बाँयी जांघ पर और दोनों वक्ष के बीच में। इसे 'मगरधज' (मकरध्वज) कहा जाता है। गोदना गोदते समय थारू खोधपारनी (गोदना–कलाकार) ने उसे इस प्रतीक की महिमा बतलाते हुए कहा था कि इससे स्त्री का सुख–सोहाग हमेशा बना रहता है। मैंने उसे बताया कि हरे पंख और लाल ठोर वाले सुग्गा को मिथिला–परंपरा में कामदेव (मकरध्वज) का वाहन कहा गया है; कामदेव प्रेम के देवता हैं। दूसरी बात कि माछ को प्राचीन सिंधु घाटी–सभ्यता के समय से योनि का प्रतीक कहा गया है। मिथिला–परंपरा में भी माछ को योनि अथवा यौन–सुख का प्रतीक कहा गया है। इस हिसाब से 'मगरधज' धारण करने के पीछे स्त्री की कामेच्छा, उसके मन पर कामदेव की कृपा और उत्तम योनि का अर्थ लिया जाता है। इस प्रतीक से जुड़े एक खास प्रसंग की चर्चा उसने की। उसने बताया कि अगर पुरुष अपनी पत्नी के अलावे किसी अन्य स्त्री के साथ फँस जाता है और पत्नी की अवहेलना करता है, उससे विमुख हो जाता है अथवा आपसी तकरार के कारण रूठकर उसका त्याग कर देता है तो 'मगरधज' पर हाथ रखकर उसकी विनती करने से रूठा हुआ पति फिर से उसे प्यार करने लगता है।



मगरधज से सटा, जांघ के मध्य भाग में, एक झबरीला, विशेष अलंकृत, बहुचर्चित हाथी स्थापित था, 'मतनी हाथी'। शुरुआती दिनों में कभी बासमती ने बताया था कि 'मतनी हाथी' के प्रभाव से स्त्री या पुरुष प्रेम में मत्त हो जाते हैं। विद्यापति के गीतों में कृष्ण को मत्त–मतंग हाथी कहा गया है; राधा प्रेम की सरोवर है जिसमें कृष्ण मत्त मतंग की तरह चुभकते रहते हैं। बासमती इस चित्र से संबंधित एक महत्वपूर्ण बात बतलायी। उसने कहा कि किसी कारण से यदि स्त्री संभोग–काल में रुचि नहीं लेती रहती है तो पुरुष यदि मतनीहाथी पर नहुँ–नहुँ हाथ से सहलाते हुए चित्र को चूमता है तो स्त्री मतने लगती है, उत्तेजित होने लगती है और काम–क्रिया में संलग्न हो जाती है। ऐसी ही एक विधि, आर्य–सभ्यता की उद्दीपन विधि का मुझे स्मरण हो आया। हिंदू–धर्मशास्त्र के बहुचर्चित पारस्कर–गृह्यसूत्र में उल्लेख है कि

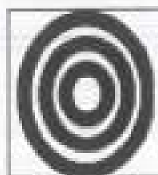
"प्रजाकामः दक्षिणेन पाणिना ऊरु प्रसार्य प्रजास्थानभिमृषति पूषा भर्गसविता मे ददातं।" इसका अर्थ यह हुआ कि पुत्र की कामना करने वाले पुरुष अपने दाहिने हाथ से स्त्री की जांघ को पसारकर उसकी योनि को "पूषा भर्ग सविता" आदि मंत्र पढ़कर मर्दन करे। आगे उल्लेख है कि "प्राङमुख उदङमुखी वोपविष्टो मन्थे द्रतो मूत्रमिति चैके स्रावणं कुर्यात्।" अर्थात पुरुष पूर्व या उत्तर मुँह बैठकर 'रेतो पुत्रम' आदि मंत्र का जप करते हुए वीर्य का क्षरण करे। अपनी–अपनी विधि! कोई मैथुन करेगा कि मंत्र पर ध्यान लगाए रहेगा सो तो वही जाने, लेकिन मुझे इस प्रसंग के स्मरण से हँसी आ गयी। बासमती ने पूछा तो बताना पड़ा। वह भी खूब हँसी। इस हँसी के साथ हम लोगों ने एक विराम लिया और पेशाब करने बाहर निकल गए।

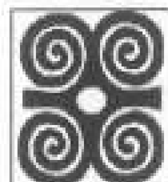


बाहर से लौटकर आए तो रात के एक से अधिक का समय हो चुका था। हम दोनों देह–मंथन से रत्न की खोज में लगे हुए थे। अभी तक जो कुछ मिला था वह अनमोल था। बाहर से लौटकर आने के बाद बासमती ने फिर तुरत काम चालू करने की गरज से बॉयी जांघ पसार लिया। मैं उसकी दॉयी जांघ पर नोटबुक रखकर चित्रों की अनुकृति कर रहा था। मेरे द्वारा की गयी अनुकृति बहुत सटीक या सुंदर नहीं होती थी, किंतु ऐसी तो रहती ही थी कि बासमती फिर से उसे सुधारकर बना ले। अभी बॉयी जांघ पर काम चल रहा था। अब मेरे सामने एक खूब भड़कीला, विशेष अलंकृत मयूर था। बासमती ने बताया कि उसे 'सुहबा मोर' कहा जाता है। मैंने अनुमान लगाया कि मयूर की उस रचना का संबंध स्त्रियों के सुख–सुहाग और कल्याण से जुड़ा होगा। प्रतीकात्मक रूप से उस मयूर को गर्भवती दिखलाया गया था जिसकी पूँछ का अंतिम भाग जांघिया के भीतर तक चला गया था। उस दीर्घकाय मयूर (मोहर) के अतिरिक्त जांघ का शेष भाग तीन तरह की बुट्टियों से भरा था।

उस समय तक काफी देर हो चुकी थी, रात ढल रही थी। विचार किया गया कि अगला काम कल किया जाए। हम दोनों आज की उपलब्धि से संतुष्ट थे।

अगले दिन बासमती सुबह से ही काम में लग गयी। पिछली रात मैंने जितने चित्रों की अनुकृति की थी, उसने फिर से नोटबुक पर ठीक से बना लिया था। मैं जब शाम में गया तो उसने पहले अपना काम दिखलाया। उसके बनाए चित्र बहुत सुंदर थे। चित्र दिखलाने के बाद वह कुछ चर्चा करना चाहती थी। वह इतना तो जानती ही थी कि उसके शरीर पर जितने गोदना हैं उनके कुछ न कुछ अर्थ जरूर हैं। अब वह अफ्रिकी गोदना में प्रयुक्त चिन्हों या प्रतीकों के अर्थ जानना चाहती थी।



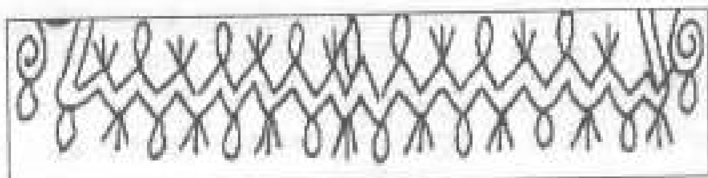


अफ्रिकी गोदना के प्रतीकों के संबंध में मैं उतना कुछ ही जान पाया था जितना अलीसांद्रा और डोरोथी ने बतलाया था। अलीसांद्रा के नोट पढ़कर भी मैं कुछ बात समझने लगा था। बासमती ने मेरे सामने में अलीसांद्रा के दिए फोटोग्राफ्स फैला दिया था ताकि प्रतीकों अथवा चिन्हों में

अंतर किया जा सके। एक फोटो में स्त्री के पेट पर ढेर सारे ज्यामितिक चिन्ह उत्कीर्ण थे। मेरे लिए ये चिन्ह अजूबा थे। इस तरह के कुछ चिन्ह मैंने सिंधु घाटी–सभ्यता की मुद्राओं पर देखा था, इसलिए इतना तो मैं समझ रहा था कि संभवतः वह प्राचीन अफ्रिकी चित्रलिपि हो, किंतु मैं उनके अर्थ नहीं समझ सकता था। मैंने बासमती को बतलाया कि मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति के लिए तरह–तरह के चिन्हों का उपयोग सभ्यता के आद्य काल से करता रहा है। धीरे–धीरे ये चिन्ह आपस में जुड़कर और अधिक अभिव्यक्ति के साधन बने। फिर चिन्ह आकार का रूप लेने लगे, चिन्हों को जोड़कर चित्र बनने लगे। चिन्हों से बने आकार को आज हम प्रतीक कहते हैं। जिस प्रकार मिथिला पेंटिंग में हाथी, माछ, साँप, कछुआ, शंख, स्वस्तिक, कमल आदि अनेकों प्रतीक हैं, उसी प्रकार गोदना चित्रकला में भी हाथी, सुग्गा, मगरध्वज जैसे अनेक प्रतीक हैं जिनके अपने–अपने अर्थ हैं। यह जरूरी नहीं है कि किसी चिन्ह या प्रतीक का जो अर्थ भारतीय कला में लिया जाता है, वही अर्थ अफ्रिकी कला में भी लिया जाए; अपनी सभ्यता के मुताबिक प्रतीकों या चिन्हों के अर्थ बदल जाते हैं। मिथिला–कला और गोदना–कला में एक प्रतीक है 'चकरी', जिसका प्रयोग विश्व की अनेक कला–परंपराओं में हुआ है लेकिन सभी जगह उनके अर्थ में अंतर पाया जाता है। भारतीय कला में चकरी का अर्थ कभी सूर्य और कभी सृष्टिचक्र तो कभी स्त्री या प्रकृति के रूप में लिया जाता है जबकि अफ्रिकी कला में चकरी को महानता, चमत्कार और नेतृत्व का प्रतीक कहा गया है। मिथिला चित्रकला और गोदना चित्रकला में एक और समान प्रतीक है 'तामा', जो प्रेममय संबंध का प्रतीक कहा गया है। अफ्रिकी कला में भी एक रचना चार 'तामा' से बने चिन्ह को मिलाकर हुई है जिसका अर्थ 'सर्वत्र शांति' कहा गया है।

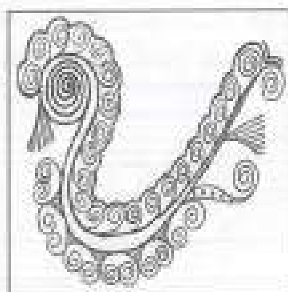


एक फोटो में ऊर्ध्व नोक वाली चौकनी का अंकन एक स्त्री की छाती से नीचे, पेट पर किया गया था। रचना की दृष्टि से वह चौकनी मिथिला चित्रकला के ऊर्ध्वमुख और अवाङमुख त्रिभुजों का योग लगती थी। भारतीय तंत्र साहित्य में ऊर्ध्वमुख त्रिभुज को शक्ति का प्रतीक कहा गया है जबकि अवाङमुख त्रिभुज को शिव का। यदि इन दोनों त्रिभुजों के योग से बनने वाली रचना से बीच की विभेदक रेखा का लोप कर दिया जाए तो ऐसी ही चौकनी बनेगी। तंत्र में ऊर्ध्व और अवाङमुख त्रिभुज के योग को शिव–शक्ति का मिलन कहा गया है। डोरोथी ने बताया था कि अफ्रिकी कला में भी इस प्रतीक का अर्थ स्त्री–पुरुष संयोग ही है। अफ्रिकी परंपरा में इस प्रतीक को 'अवान' कहा जाता है और इसका प्रतीकार्थ 'प्रेम के फाँस में सुरक्षित' है।



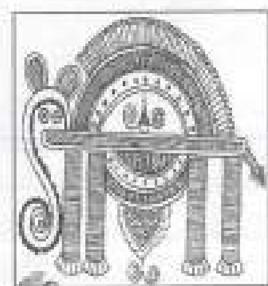
मैंने कभी बासमती को बताया था कि अपने सामाजिक कार्य का प्रारंभ मैंने 1965 में किया था (सोलह वर्ष की आयु में) जब निरक्षर समुदायों के लिए ज्यामिति के कुछ चिन्हों से अक्षर बनाने की विधि विकसित की थी। साधारण चित्रों के टुकड़े करके मैं गोला, आधागोला, सरल रेखा और तिरछी रेखा जमा करता था। बच्चे उन चिन्हों को जोड़कर अक्षर बनाते थे। बासमती के आग्रह पर मैंने उसके अपने गोदना और अफ्रिकी गोदना के चिन्हों से देवनागरी, मिथिलाक्षर और अंगरेजी के कुछ अक्षर बनाकर दिखलाया। वह इस बात से बहुत उत्साहित थी कि गोदना–चित्र की पुस्तक बन जाने के बाद हम लोग गोदना–विधि से साक्षरता और आजीविका (Learning & Earning together) दोनों कार्यक्रम एक साथ चला सकते हैं। हम

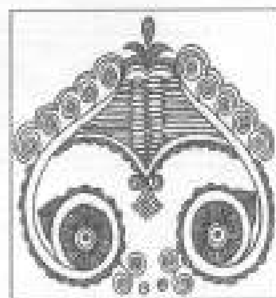
लोग इसी चर्चा में थे कि रासवती चाय के लिए पूछने आयी। बासमती ने उसे बैठा लिया और गोदना के चिन्हों से अक्षर बनाने की बात बतलायी। रासबती यह खेल करके देखना चाहती थी। बासमती ने उसे अफ्रिकी फोटो दिखलाकर पेट पर बने चिन्ह पहचानने को कहा। उस फोटो में सबसे ऊपर एक खड़ी रेखा और अंगरेजी का **ई** बना था। फोटो में दाहिनी ओर एक गोले में चीरा या कट्टिस बना था और नाभि के अगल–बगल दाहिने–बाँए खुलने वाले दो अधगोले बने थे। अब बासमती ने उस फोटो से गोला, बाँयी ओर खुलने वाला एक अधगोला, एक सरल रेखा और एक लंब या खड़ी रेखा जमा करने को कहा। रासबती ने बहन के कहने पर आधागोला के नीचे में एक और आधागोला जोड़कर **उ** बनाया, फिर उ में बीच से एक अधगोला जोड़कर **ऊ** बनाया, उ में बीच से एक रेखा लगाकर उसमें एक खड़ी रेखा लगाया और **अ** बनाया, अ में एक और खड़ी रेखा लगाकर **आ** बनाया। अब बात–बात में, गोदना के चिन्हों से ही, रासबती ने **उ ऊ अ** और **आ** बना लिया। गोदना से अक्षर बनाकर वह अचंभित थी। वह कभी मेरा मुँह देखती थी, कभी अपनी बहन का। अब तक निरक्षर रही उस दलित स्त्री के पास शब्द नहीं थे। वह रोने लगी। बहन ने पूछा, रोती क्यों हो? फिर भी उसका रोना बंद नहीं हुआ। उसके लोर कागज पर बने अक्षरों पर गिरकर उन्हें फैला रहे थे। रासबती ने अपने आँचल से रंग में घुले उन अक्षरों को समेटकर कपार से लगा लिया और उठकर चाय बनाने चली गयी।



चाय पीने के बाद हम लोग फिर काम में जुट गए। बासमती ने दाहिनी जांघ में लैवेंडर क्रीम मलकर टॉर्च जलाया और मैं उसकी बाँयी जांघ पर नोटबुक रखकर चित्र उतारने लगा। ठेहुना से ऊपर एक कोर (बॉर्डर) बना था जिसके काम किसी चित्रलेख की तरह लग रहे थे। उसने बताया कि गोदना के उस चित्र को 'तिलडोरिया' कहते हैं। तिल के फूल से बनी उस रचना का अंकन गले में भी किया जाता है। उसने यह भी बताया कि दाहिने पैर के चित्र वस्तुतः पितरों को समर्पित होते हैं।

तिलडोरिया कोर से ऊपर दो तरह की बुट्टी ऊपर–नीचे सजायी गयी थी जिसकी रचना 'तामा' या सुंघ (स्पाइरल) से हुई थी। बासमती ने बताया कि एक बुट्टी पितरों का आसन होता है जबकि दूसरी बुट्टी असल में उनके दीपों का चक्का या स्तंभ होता है, जिसके प्रकाश से पितर लोक में निरंतर उजास बना रहता है। इस तरह की रचना बहुत दलित–परिवार अपनी भीत पर गोबर–माटी से भित्ति–पट्टिका के रूप में या गेरू रंग से भी बनाते हैं और सामान्यतया 'प्रकाश–वृक्ष' के अर्थ में लेते हैं। जिस थारु खोंघपारनी ने गोदना गोदा था, उसने इस प्रतीक को 'बढ़मदीया' बताया था।

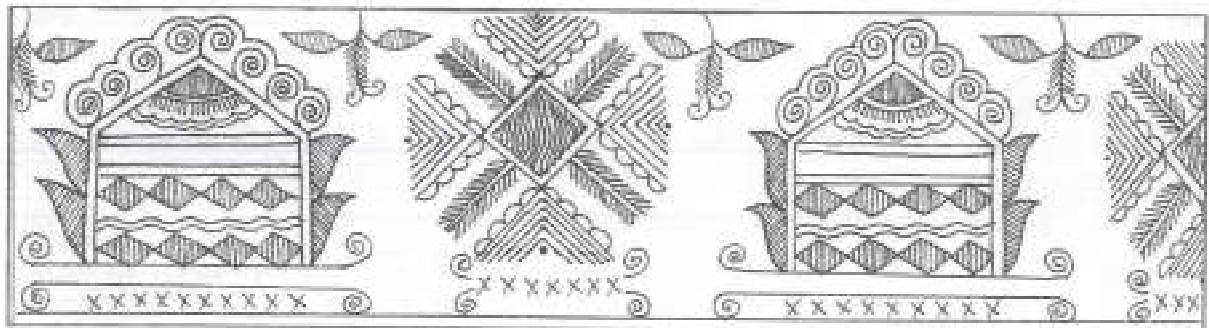




इन चित्रों से ऊपर दो तरह के हाथी, दो तरह के मयूर, कछुआ और एक खास चित्र बना था, **रतनपौती**। रतनपौती का अर्थ होता है 'रत्नों से भरी पिटारी'। इसकी रचना दो सुग्गा की उदग्र आकृति से हुई थी जिसका आकार किसी पौती (फूस और सीकी घास से बनी ढक्कनदार पिटारी या मंजूषा) जैसा था। बासमती ने बताया कि इस तरह का गोदना उसकी

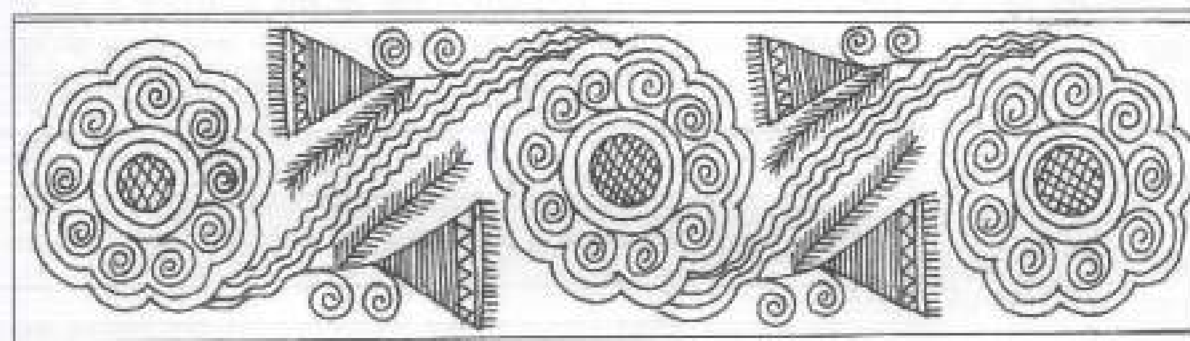
नानी की छाती पर बना हुआ था। नानी ने उसे बताया कि यह चित्र असल में स्त्री की इज्जत और सुहाग की पिटारी है। खोधपारनी ने इस चित्र को 'सुहाग मटका' कहा था। खोधपारनी ने बासमती को इस चित्र से जुड़ी एक रोचक कहानी भी सुनायी। उसने बताया कि शुरू–शुरू में यह धरती रहने लायक नहीं थी। धरती पर पुरुष अकेले रहता था और उसे घर बसाने का हुनर नहीं था। उसे इसकी चिंता भी नहीं थी। दिन भर वह इधर से उधर दौड़ता रहता था और बेमत होकर कहीं पड़ रहता था। उसे खाना बनाने का हुनर भी नहीं था। धरती पर हर तरफ पानी और कीचड़ फैला हुआ था। जहाँ–तहाँ बड़े चट्टान, काँटे और कुश जंगल की तरह फैले हुए थे। एक दिन पता नहीं कैसे, माछ और कछुआ को साँप की रस्सी से लपेटकर बनाए बेड़ा पर बैठकर एक स्त्री नदी से निकली और धरती पर टहलने लगी। उस समय उसकी देह में योनि नहीं थी और न उसके वक्ष थे, लेकिन उसका शरीर उस समय भी गहना से लदा था। उसने जहाँ–तहाँ फैले पत्थरों को हँटाया, काँट–कुश को हँटाया और बाँस–बल्ला जमा किया, एक घर बनाया। उसी समय कहीं से तूफान की तरह पुरुष आया और सब कुछ उजाड़ दिया। उसने स्त्री के सभी गहना छीनकर उसे पानी में ठेल दिया। ऐसा बार–बार होता रहा। स्त्री आती थी, जगह साफ कर घर बनाती थी, पुरुष सब कुछ छीनकर घर तोड़ देता था और मार–पीटकर उसे पानी में ठेल देता था। आखिर एक बार फिर वह स्त्री बदले रंग–ढंग में आयी। इस बार उस स्त्री की छाती में सुंदर पुष्ट वक्ष थे, दोनों जांघ के बीच रोयों में छिपी योनि थी और जांघ में रतनपौती थी, जिसमें सभी तरह की सुख–शांति की विभूति भरी हुई थी। पुरुष की नजर सबसे पहले उसके वक्ष पर गयी। उसने समझा कि उन्नत वक्षों में वह अनमोल रत्न छिपाकर लायी है, किंतु देह में लगे होने के कारण वह छीन नहीं सकता था। उसने सोचा कि स्त्री को फुसला–पटियाकर यह धन हड़प लें। अब पुरुष धन हथियाने के फिराक में उसके आगे–पीछे करने लगा। स्त्री जब भगल करके आँख मूँदे पड़ रहती थी तब पुरुष उसके वक्ष को हँसोथकर धन की थाह लगाता रहता था। एक दिन ऐसा करते हुए उसकी आँख लग गयी। स्त्री ऐसा ही चाहती थी। उस दिन स्त्री ने उसे संभोग करा दिया। पुरुष के लिए यह अनुभव अविस्मरणीय था। वह बार–बार इस अनुभव को दुहराना चाहता था और स्त्री हर बार उससे कुछ न कुछ गछाने के बाद ही उसके साथ सोती थी। आखिर पुरुष धीरे–धीरे संयत होने लगा। वह अच्छा बन गया। स्त्री ने फिर घर बनाया। इस बार पुरुष ने उसे पूरा सहयोग दिया। स्त्री अब 'घरवाली' कहलाने लगी। उसे बच्चा हुआ। पुरुष बाप बना। इस तरह से संसार बसा और स्त्री–पुरुष मेल से रहने लगे।

मैं बासमती से 'रतनपौती' की कथा सुनकर अवाक था। गोदना दलितों–वंचितों का कैसा ज्ञान–भंडार है! पुराणों–उपनिषदों के लिए अछूत इन लोगों की अपनी संहिता है, अपना कथा–सागर है। हिंदू धर्मशास्त्रों में सृष्टि की जो कथाएँ हैं, उनसे भिन्न यह उनकी लौकिक संसार–कथा है। इसकी परिपाटी समझ में आती



है। स्त्री और पुरुष के मूल स्वभाव का भी इस कथा में दर्शन होता है। मुझे बासमती की ज्ञान–संपदा से ईर्ष्या होने लगी।

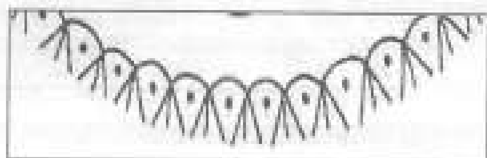
अब तक दोनों जांघ में सामने की तरफ से चित्र उतारने का काम पूरा हो चुका था। बासमती चाहती थी कि जितना अधिक काम हो जाए, अच्छा है। अब नाभि से नीचे के चित्रों पर काम करना था। नाभि से ठीक नीचे महीन काम की एक रचना बहुत सुंदर थी। बासमती ने बताया कि उस चित्र को 'गहबर' कहते हैं। गहबर में पितरों का वास होता है जो असल में हरिजनों के देवता होते हैं। यही पितर स्त्रियों के गुप्त अंगों की रक्षा करते हैं और कल्याण प्रदान करते हैं। मैंने जिज्ञासवश पूछा कि फोटो में प्रदर्शित अफ्रिकी स्त्रियों की देह पर गुप्तांगों में भी गोदना बना हुआ है; ऐसा उसकी देह में भी है क्या? उसने बताया कि उसके शरीर में भी उस स्थान पर कुछ है, किंतु वे साधारण बुट्टी की तरह हैं। मैं उस भाग को अनावृत नहीं करना चाहता था। मेरा मन थक गया था। हमने माना कि आज के लिए इतना काम पर्याप्त था। बासमती चाहती थी कि मैं भोजन करने के बाद वहाँ से चलूँ, लेकिन मैं इतना थक गया था कि अब रुकना मेरे लिए कठिन था।

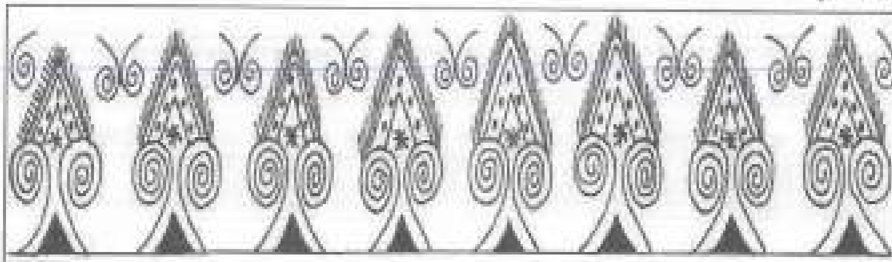


अगले दिन मैं सूर्यास्त होने से पहले ही उस आँगन चला आया। मैं वहाँ पहुँचा तो बासमती ओसारा पर बैठकर चित्र ही बना रही थी। मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि अब तक जितना स्केच मैंने किया था, उसने सभी चित्र सुंदर ढंग से बना लिया था। मैं उसकी कार्य–कुशलता और काम के प्रति तत्परता देखकर बहुत प्रभावित हुआ। मैंने अनुमान लगाया कि वह दिन भर उसी काम में लगी रही होगी, बिना रुके।

बासमती के शरीर से गोदना उतारने का काम अगली तीन रातों तक निर्बाध चलता रहा। उसके अंग–प्रत्यंग विविध प्रकार के गोदना से भरे हुए थे। इस क्रम में 'पुरैन पट्टी', 'टोपिया कोर', 'सुगवा कोर', परिबर्द्धित 'मगरधज', 'जटवा मोर', 'पिंड कटुका', 'बन तित्तिर', 'चंद्रहार', 'जतरा' और 'वनसप्तो' जैसे प्रमुख चित्रों के अतिरिक्त माछ, कछुआ और वनस्पति से बनी बुट्टियाँ थीं। इन प्रतीकों की अपनी कथा–शृंखला है। बासमती ने प्रायः सभी कथाओं का उल्लेख किया। वनसप्तो नर–मादा के जोड़े में पशु–शरीर वाले पक्षी हैं जो वन में भटके हुए लोगों की रक्षा करते हैं और राह दिखलाते हैं। बासमती ने बतलाया कि हरिजन लोगों का कोई स्वर्ग नहीं होता है और न कोई देवलोक होता है बल्कि पितरलोक होता है, जहाँ मरने के बाद सभी कोई जाते हैं। जिसकी देह पर गोदना होता है, वह अपने माता–पिता से पितरलोक में मिल सकती है। पितरलोक में आत्माओं की पहचान गोदना के आधार पर ही होती है। यदि किसी की आत्मा अधूरी इच्छा के

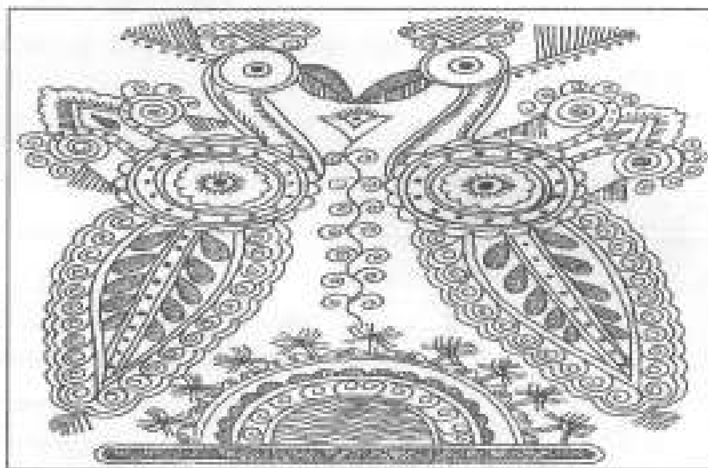
कारण धरती पर भटक जाती है तो पितरलोक में भी उस आत्मा को अपने पितर से भेंट होने में कठिनाई होती है। ऐसी हालत में वनसप्तो मदद करती है और उसे पितर से भेंट कराती है। ऐसी ही कुछ बात अलीसांद्रा बतलायी थी। उसने कहा कि दक्षिण–पूर्व नाइजीरिया के लोगों का विश्वास है कि मृत्यु के बाद आत्मलोक (पितरलोक) तक जाने के मार्ग में गोदना रुपए की तरह काम करता है। लेकिन बासमती के गोदना में नाइजीरिया के गोदना से अधिक कुछ और है। उसकी कटि से ऊपर, नतोदर भाग से दोनों भाग में बढ़ते हुए, हाथी की एक पंक्ति है। बासमती ने बताया कि हाथी की उस पंक्ति को 'जतरा' कहते हैं। समय–समय पर, उन हाथियों पर सवार होकर, पितर लोग आत्मलोक से धरती तक की यात्रा करते हैं और अपने परिजनों का कुशल–क्षेम जानते हैं (जैसे 'ओणम' के दानवेन्द्र बलि वर्ष में एक बार अपनी प्रजा का हाल जानने पृथ्वीलोक पधारते हैं। यही बलि मिथिला में रक्षा–बंधन के दिन आते हैं जब उनकी प्रजा "दीनबंधु बली राजा दानवेन्दो महावलः, तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षः माचल माचल" मंत्र के साथ अपनी कलाई पर पुरोहित द्वारा राखी बँधवाते हैं)। हाथियों की पट्टी या कोर से ऊपर हाथियों की एक और पंक्ति होती है जिस पर कोठी और चौपड़ जैसी रचना होती है। बासमती ने बताया कि उस रचना को 'पितर पाटी' कहते हैं। पितरपाटी की कोठियों में पितरों की धन–संपदा सुरक्षित रहती है। बासमती ने बताया कि धरती पर हरिजनों को धन जमा करने का अधिकार नहीं था, लेकिन धन की जरूरत तो सबों को होती है; हरिजनों के श्रम का मूल्य मरने के बाद ही सही, गोदना के पितर पाटियों में इकट्ठा मिल जाता है। मुझे लगा, ब्राह्मण धर्म की मनुस्मृति में शूद्रों के लिए धन–संचय की वर्जना–नीति पर प्रहार के लिए 'पितरपाटी' का चौपड़–वज्र उपयुक्त था।

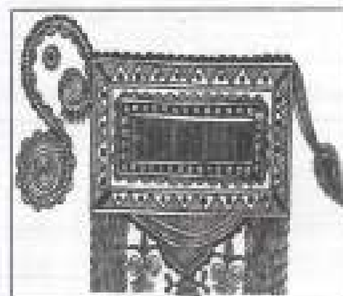




बासमती अपना काम करने में कभी देर नहीं लगाती थी। रात में मैं जितने चित्रों का स्केच बनाता था, अगले दिन वह उतने चित्र तैयार कर लेती थी। अब तक ढेर सारे चित्र बनकर तैयार थे। पिछले कई दिनों से हम लोग लगातार काम में जुटे हुए थे। अब काम का कठिन दौर पूरा हो चुका था। बासमती चाहती थी कि काम पूरा होने के अवसर पर शाम में बाजार चला जाए और घूम–फिरकर अगले काम के लिए मन को तैयार किया जाए। योजनानुसार हम लोग बाजार गए, होटल में नाश्ता–चाय किया, गंगासागर पोखर पर बैठकर बहुत तरह की योजना बनाते रहे और बासमती ने कुछ खरीदारी की। हम दोनों काम पूरा होने के कारण बहुत प्रसन्न थे। बासमती अब पुस्तक के आकार में चित्रों को बैठाना चाहती थी। मैं पहली बार किसी पुस्तक की रचना को लेकर रोमांचित था। हमने पुस्तक का नाम **"गोदना–चित्रकला"** रखा। तय हुआ कि पहले बुट्टी रखी जाएगी, एक पन्ने में चार; इसके बाद मोहर रखे जाएंगे, एक पन्ने में दो और अंत में कोर रखे जाएंगे। हर चित्र के नीचे कुछ स्थान खाली रहेगा, ताकि मैं उस चित्र के संबंध में कुछ लिखूँ। इतना कुछ विचारने के बाद हम दोनों घर वापस आ गए।

मै जब ऑफिस पहुँचा तो वहाँ अधिकारियों की बैठक चल रही थी। मुझे भी बुलाया गया। मुझे बताया गया कि जलेश्वर भट्ठी का प्रबंधक बीमार हो गया था, इसलिए सुबह की पहली बस से मुझे वहाँ जाकर भट्ठी का प्रभार लेना है। मुझे पहली बार अनुभव हुआ कि नौकरी में व्यक्ति की इच्छा का कोई महत्व नहीं होता है, अधिकारी का आदेश ही सर्वोपरि होता है। मैं इनकार नहीं कर सकता था। मुझे रात में ही अपना सामान पैक कर लेने को कहा गया।



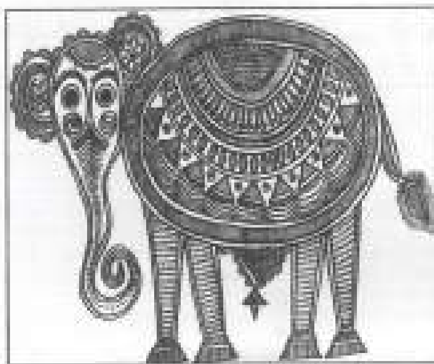


सुबह बहुत सवेरे मुझे जगा दिया गया। मैं सबकी नजर बचाकर भागा–भागा बासमती के आँगन आया। वह दोनों बहन घर–आँगन बुहार रही थी। मैंने जल्दी से इतना ही बता पाया कि मेरी ड्यूटी जलेश्वर में लग गयी है, तुरत निकलना पड़ेगा, लेकिन चार दिनों के बाद वहाँ का काम निपटाकर मैं जरूर मिलूँगा। मैंने हड़बड़ी के कारण चाय पीने का आग्रह भी नहीं माना और धड़फड़ाते हुए वापस लौट गया। अच्छा हुआ कि स्टैंड से निकलता हुआ बस मैंने पकड़ लिया, नही तो दूसरी बस देर से मिलती और मुझे इसका जवाब देना पड़ता।

कहा गया है कि 'नौकरी न करी'। मेरे जैसे मन–मिजाज वालों को तो भूलकर भी नौकरी नहीं करनी चाहिए। मैंने तो बहुत पहले ही फैसला कर लिया था कि नौकरी नहीं करूँगा और वही करूँगा जो मन में सोचा है। लारी ऑफिस में भी मैं नौकरी करने के लिए नहीं अँटका था; वहाँ तो मैं अपने साले महोदय के पास आया था। खैर, जो भी हो, जब मैंने काम करना गछ लिया था तो मुझे आदेश का पालन तो करना ही था। मैंने बासमती से वादा किया था कि चार दिन बाद मिलूँगा। यह वादा तो जरूर निभाउँगा, चाहे झूठ ही क्यों न बोलना पड़े।

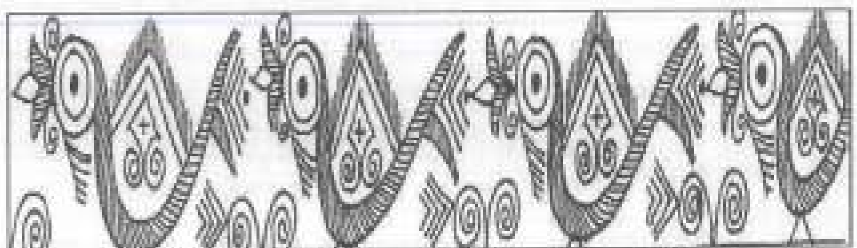
मैं पाँचवें दिन जलेश्वर से चलकर शाम होते–होते जनकपुर आ गया। मैंने तय कर लिया था कि पेट खराब होने और बुखार लगने का बहाना करूँगा, इसलिए जरूरी था कि बाजार से लौटते हुए मैं कुछ दवा भी खरीद लूँ। वही किया। अभी हाल में ही तो बीमार पड़ा था, दवा का नाम याद ही था। ऑफिस में जब लोगों ने मुझे देखा तो सबों ने पूछना शुरू कर दिया, क्यों आ गए? छोटा मैनेजर खुद भी काइयाँ टाइप का आदमी था। वह सच्चों पर तो भरोसा करता ही नहीं था, झूठों की क्या बिसात है! लेकिन सभी कोई जानते थे कि मेरे ऊपर कोई कड़ाई चलने वाली नहीं थी, इसलिए बड़ा मैनेजर इरसाद अहमद ने मेरा बचाव करते हुए कह दिया, "अच्छा किया कि दवा लेने यहाँ चले आए .... सुबह में चले जाइएगा।" इरसाद अहमद काबिल आदमी थे। वह जानते थे कि मैं कभी भी नौकरी छोड़ सकता था, लेकिन अभी तुरत उनको मेरे जैसा

भरोसे का आदमी नहीं मिल सकता था। इरसाद अहमद के बोलने के बाद बात आयी–गयी हो गयी। मैं अपने काम में लग गया। कुछ देर बाद थोड़ा घूमने का बहाना करके मैं बाहर निकल गया और सीधा बासमती के आँगन आ गया।



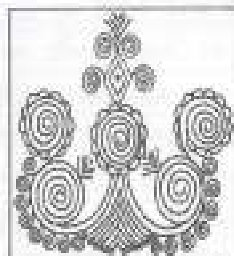
बासमती मेरा इंतजार कर रही थी। वह जानती थी कि मैं आज उससे जरूर मिलूँगा। मैं जब पहुँचा उस समय दोनों बहन सब्जी छील–काट रही थी और किसी बात पर हँस रही थी। मुझे आया देखकर रासबती और जोर से हँसने लगी। जब उसकी हँसी रुकी तो अपने चिर–परिचित अंदाज में उसने एक फकरा सुनाया, "जिसका नाम किसन–कन्हैया, ओही चला आवे कि तुमका मार पड़ाय।" बासमती फकरा सुनकर हँसने लगी। हँसने पर उसका मुँह एकदम ललोन हो जाता था। मैं उसे एकटक देखता रहा। उसने मेरी ओर ताका और लजा गयी।

आज मैं अधिक देर नहीं रुक सकता था। बासमती हालात की नजाकत समझती थी। वह उठकर ड्राइंगबुक ले आयी। नए ड्राइंगबुक में वह पिछले चार दिनों से काम कर रही थी। काम पूरा होने का उल्लास उसके पोर–पोर से टपक रहा था। वह अपने बक्से से निकालकर पुस्तक ले आयी और सहेजकर मेरी गोद में रखते हुए बोली, "अब आपको रात में छिपकर गोदना नहीं उतारना पड़ेगा.....।" मैंने दोनों हाथों में थामकर पुस्तक को चूम लिया। पुस्तक के कवर पर उसने लिखा था, "गोदना चित्रकला"; उसके नीचे दो मोर बने थे, चोंच में चोंच सटाए; उसके नीचे मेरा नाम लिखा था। मैंने जेब से कलम निकालकर अपने नाम से ऊपर लिख दिया 'बासमती'। उसने मेरा हाथ पकड़ते हुए कहा, "मेरा नाम ऊपर में क्यों लिख दिए?" मैंने कहा, "यह आपकी देह से निकला है..... आपका बच्चा हुआ, इसलिए ..... ।" उसने धीरे से कहा, "आपका भी ..... ।" और उसकी आँखों से खुशी के दो बूँद लोर ढप्प से पुस्तक पर गिर पड़े।



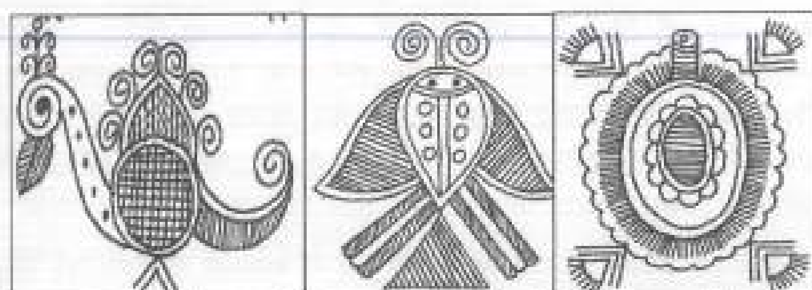
रासबती मेरी बात सुन गयी थी। उसने कमरे में पैठते हुए कहा, "माट्साएब ठीक कहते हैं बौआ..... ई तुम्हरे देह से निकला है त तुम्हरा बच्चे हुआ न..... आउर माट्साएब ई दूहकर निकाले हैं त ई इनका भी बच्चा हुआ..... माट्साएब, इसका बहनोइ जब दारू पिए रहता है तब बहुत बोलता है। उसको धरम सास्त का बहुत खिस्सा पता है..... ऊ कहता है, गनेसजी का जनम कइसे हुआ? एक दिन पारबती आ भोला बाबा में बहुत झगरा हो गया। झगरा कर के भोला बाबा त घर से निकल गए आ पारबती मन बिधुआ के बइठी रही। ऊ अपना तरहत्थी से देह का मैल छोड़ाने लगी। छोड़ाते–छोड़ाते मैल का ढेर लग गया। अब ऊ मैल से मुरती बनाने लगी। मुरती जब बन गया त ऊहें घर के मुँह पर बइठा के ऊ सो गयी। कुछ देर के बाद भोला बाबा घूम–फिर के आए। अनचोका में उनका पैर मुरती में लग गया। मुरती का गरदन टूट गया। सो देख के पारबती रोने लगी।

आखिर भोला बाबा अपना भूत–परेत को बोले कि जो कोई बच्चा पहले मिल जाए उसका गरदन काट के ले आव। भूत–परेत को एक ठो हाथी का बच्चा मिला। ऊ लोग उसीका गरदन काट के ले आया आ भोला बाबा को दे दिया। भोला बाबा ऊ गरदन मुरती में जोड़ दिया। ऊ त भगवान थे, मंतर से मुरती में परान दे दिए। ऊ मुरती फुरफुरा के खड़ा हो गया आ भोला बाबा से पूछा कि ऊ कौन हैं? भोला बाबा ने कहा, तुम्हरा नाम गनेश है। तब तक पारबती ऊहाँ आ गयी। भोला बाबा गनेशजी को बोले, ई तुम्हरी माइ है। पारबती ने कहा, आ ई तुम्हरे बाबू हैं। बच्चा दोनों के पैर छुआ। पारबती बच्चा को गोद में उठाकर खुस हो गयी .....।" उस अवसर पर गणेशजी के जन्म की कथा सुनकर मैं बहुत खुश हुआ और मन ही मन उनकी वंदना करते हुए प्रार्थना की कि यह पुस्तक दुखी लोगों का कष्ट हरे।



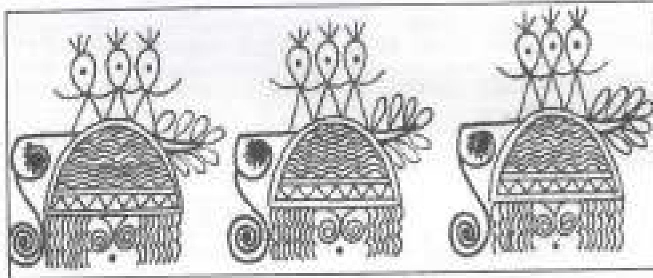
मुझे जल्दी निकलना था। मैंने दोनों बहनों से जाने की अनुमति माँगी। बासमती ने एक झोले में वह पुस्तक और लिफाफे में अलीसांद्रा के दिए फोटोग्राफ्स डालकर मुझे सौंप दिया। जाते–जाते मैंने कहा, अब मैं जादा दिन लारी ऑफिस में काम नहीं करूँगा। अब हम अपने मन का काम शुरू करेंगे। मुझे विदा करने दोनों बहन आँगन के मुँह तक आयी। बासमती ने पहली बार मेरे पैर छुआ। मैंने भरे मन से उसे आशिष दी। वह 25 दिसंबर, 1976 की रात थी।

आज लगभग चार दशकों के बाद जब मैं स्वयं उन घटनाओं और परिस्थितियों का साक्षी भाव से उल्लेख कर रहा हूँ तब भी बासमती की तुलना में मैं अपने आपको कमतर ही पाता हूँ। प्रकृति की लीला मनुष्य की समझ से परे है। मुझे लगता है कि मनुष्य के जीवन में घटित होने वाली सभी घटनाएँ प्रकृति की योजना के अधीन और उसके नियंत्रण में होती हैं। बासमती का मेरे जीवन में आना एक अवतार जैसी घटना है। प्रकृति मेरे द्वारा लोकहित के कुछ काम करवाना चाहती थी। बासमती उस काम की 'रतनपीती' बनकर मेरे जीवन में आयी, विचित्र घटनाओं का सामना किया, अपने अवदान का प्रतिफल देखा और अंतर्धान हो गयी।



बासमती से "गोदना–चित्रकला" की नवजात पुस्तक प्राप्त कर अगली सुबह मैं जलेश्वर चला गया और तीन सप्ताह बाद, 15 जनवरी, 1977 को जनकपुर लौटा। दिन के बारह बज रहे थे जब मैं बासमती से मिलने उसके आँगन पहुँचा। वहाँ कोई नहीं था। मैंने सोचा कि रासबती अपने बच्चों को लेकर ड्यूटी करने गयी होगी और बासमती कहीं निकास आदि के लिए गयी होगी। मैंने उसे हर जगह खोजा, वह कहीं नहीं थी। मैं दौड़ता हुआ रासबती से मिलने सियाराम की दुकान पर गया। वह मुझे देखते ही रोने लगी और मेरे साथ ही घर के लिए विदा हो गयी। आँगन में आते ही वह धड़ाम से ओसारे पर गिरी और जोर–जोर से रोने लगी। मैं कुछ समझ नहीं पा रहा था। आखिर वह सम्हली और पूरी बात बतलायी। बासमती के साथ बहुत बड़ा अन्याय हो गया था। घटना उसके पति से शुरू हुई। उसकी शादी पाँच बरस

की आयु में जिस लड़के से हुई थी उसका नाम बैजू पासवान था। बासमती ने बचपन में अपनी देह पर गोदना नहीं करवाया था जिस कारण से उसका गौना या बिदागरी नहीं हुई। आखिर जब वह जवान हो गयी तो नियमानुसार पूरे शरीर में गोदना करवाना पड़ा, सरगतिया। अब गौना कराने के लिए बैजू पासवान पंजाब से कमाकर आया था। दोनों तरफ गौने की तैयारी होने लगी। बैजू कुछ सामान, और खास कर बासमती के लिए पॉलिस्टर की झूमकसाड़ी खरीदने जनकपुर गया था। वह सामान खरीदकर वापसी में जयनगर (भारत) स्टेशन के प्लेटफार्म पर मधुबनी जाने वाली ट्रेन का इंतजार कर रहा था। टिकट खिड़की खुली नहीं थी, इसलिए उसके पास टिकट नहीं था।



वह इमरजेंसी का शीर्ष समय था जब 'पुरुष नसबंदी' के नाम पर संजय गांधी का अत्याचार चरम पर पहुँच गया था। लोग कहते थे कि प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी को इतना अत्याचार अच्छा नहीं लगता था, लेकिन वह अपने बेटा को रोकने में असमर्थ थी। सरकारी नौकरी करने वालों के वेतन का बिल तभी बनता था जब कम से कम दो लोगों को वे नसबंदी कराने के लिए, राजी–खुशी से, फुसला के या जबरदस्ती नसबंदी शिविर में ले जाते थे। जो लोग नसबंदी कराने के लिए ले जाते थे, उनको भी प्रोत्साहन राशि के रूप में कुछ रुपए मिलते थे और कराने वालों को भी कुछ रुपया मिलता था। पुलिस वाले सबसे ज्यादा कमा रहे थे। वे लोग छोटी–मोटी गलती करने वाले, पाकिटमार, भिखमंगा और बिना टिकट सफर करने वालों को पकड़कर नसबंदी करवा देते थे। बैजू टिकट खिड़की खुलने का इंतजार कर रहा था, वह बिना टिकट यात्रा नहीं कर रहा था, लेकिन पुलिस वालों ने उसे भी पकड़कर अपनी गाड़ी में बैठा लिया और शिविर में ले जाकर नसबंदी करवा दिया। उसके साथ एक ग्रामीण भी था जो भाग गया और गाँव जाकर सब हाल लोगों को सुनाया। इस अन्याय का समाचार सुनकर गाँव से बहुत लोग जयनगर के नसबंदी शिविर पर आए लेकिन तब तक बैजू वहाँ से जा चुका था। वहाँ लोगों ने बताया कि उसे जब से पकड़कर शिविर में लाया गया, वह तभी से चिल्ला रहा था। वह बोल रहा था कि उसका गौना होने वाला है, नसबंदी नहीं करो, लेकिन किसी ने नहीं माना। लोगों ने बताया कि नसबंदी कराने के बाद बैजू बिस्तर पर नहीं लेटा, वह पागल की तरह चिल्लाता हुआ भाग गया। बैजू के परिवार वाले दस दिनों तक उसे खोजते रहे, वह कहीं नहीं मिला।

बैजू को खोजने के सभी प्रयास जब विफल हो गए तो उसके बाप ने बासमती के पिता को सब हाल सुनाकर संबंध तोड़ लिया। अब बासमती को जनकपुर में रखने का कोई तुक नहीं था। उसके माता–पिता जनकपुर आए और बासमती को लेकर अपने गाँव चले गए। गाँव जाते ही बासमती बीमार पड़ गयी। उसके मन पर भारी वज्रपात हो गया था। वह कहीं की नहीं रही। जिसकी प्रतीक्षा में वह बरसों से नियम–निष्ठा का पालन कर रही थी, वह अन्याय का ग्रास बन गया और जिस योजना के लिए उसने मुझे अपना सर्वस्व सौंप दिया था, उससे भी उसे पृथक कर दिया गया। इस आघात ने मानसिक रूप से उसे विक्षिप्त कर दिया। वह कुछ बोलती नहीं थी, केवल माथा झोंटती रहती थी और अगर कोई कुछ पूछता था तो रोने लगती थी। रासबती ने बतलाया कि उसके मामा का पूरा परिवार कलकत्ता में रहता था। डाक्टरों ने

जब बासमती को पागल करार दे दिया तब उसके माता–पिता इलाज कराने के लिए उसे लेकर तीन दिन पहले कलकत्ता चले गए। मेरे लिए भी वह घटना वज्रपात जैसी ही थी। पिछले पंद्रह–बीस दिनों में इतनी बड़ी बात हो गयी और मुझे पता नहीं चला। इतने दिनों का ही साथ था हमारा, लेकिन जाते–जाते उसने मुझे अपनी अमूल्य निधि दे दी थी। इस निधि से मुझे वंचित लोगों के लिए एक विकल्प खड़ा करना है, जैसा वह चाहती थी।

अनायास एक बड़ा उलटपुलट हो गया था। मेरे सामने अब निशिभाग रात में अकेले सफर पर निकलने जैसा एक चैलेंज था। नेपाल में तो मुझे रहना नहीं था; तब क्या करना है? अपने देश में कोई नौकरी खोजनी है या वैसा कुछ करना है जैसा बासमती के साथ मिलकर तय किया था? मैंने उस निश्चय को दुहराया; मुझे गरीब लोगों के लिए काम करना है; उनके लिए लेखक बनना है; कलाकार बनना है; उनकी लोक–कलाओं को शिक्षा और रोजगार का औजार बनाना है; दूसरा कुछ नहीं करना है। मैं बासमती की निधि को व्यर्थ नहीं जाने दूँगा। मुझे राजनीतिक झंडों के तले अपने भविष्य का मार्ग नहीं चुनना है बल्कि जो प्रण विनोबाजी के चरण छूकर किया था, उनके महान दर्शन 'जीवन और शिक्षण' के प्रयोग से समाज का हित करना है। विनोबा जी से मुझे जगिया ने मिलवाया। विनोबा जी एम एल एकेडमी आए थे। उनकी सभा में सभी छात्र–छात्रा जमा थे। जगिया को मैंने कभी बताया था कि जिस दिन मेरे पहले वाले विद्यालय में वर्ग–शिक्षक विनोबा जी का लेख "जीवन और शिक्षण" पढ़ाने आए थे, उसी दिन शिक्षक महोदय ने मुझे कान पकड़कर वर्ग से निकाल दिया था; मैं विनोबा जी का लेख नहीं समझ पाया। विनोबाजी की सभा में मुझे जगिया कहती थी कि मैं उनको यह बात बतला दूँ लेकिन मैं उतने लोगों के बीच में ऐसा कुछ बोलने का साहस नहीं कर सकता था। जगिया मेरे हाथ पकड़कर बार–बार उठा देती थी। एक बार बाबा की नजर मेरे हाथ पर चली गयी। उन्होंने किसी स्वयंसेवक को मेरे पास भेजा। मैं जगिया के साथ बाबा के पास गया। बाबा ने जब प्रवचन बंद किया तो मेरे माथे पर हाथ फेरते हुए बोलने के लिए कहा। मैं बोल नहीं पा रहा था। जगिया ने बाबा को सब बात बतला दी। मेरा हाल जानकर बाबा करुण हो गए। उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रखकर टहलते हुए मुझे अपने लेख का मर्म समझाया। मैं कुछ नहीं समझा। बाबा ने मेरे माथे पर हाथ रखकर थपथपाया। मुझे रोमांच हो आया। बाबा ने पूछा, "बाबा का काम करेगा?" मैंने कहा, हाँ। किसी स्वयंसेवक ने मुझे बाबा के पैर छूने का इशारा किया। मैंने बाबा के पैर छुआ और उनका शिष्य हो गया। मुझे जगिया ने महान संत का मंत्र दिलवा दिया। फिर आयी तबस्सुम और बासमती। सबों ने मुझे कुछ दिया, कुछ कहा। जगिया और उसकी दादी ने काम करने की एक दिशा दिखलायी। तबस्सुम ने एक काम दिया। मरते समय उसने मुझसे वादा करवाया कि लड़कियाँ मजबूत बनें, ऐसा कोई उपाय खोजना। बासमती चाहती थी कि उसकी भौजाई की तरह कोई औरत भूख के चलते भभिछना जैसे लोगों की वासना का शिकार नहीं बने। इतने काम अगर पूरे हो जाएँ तो बहुत है।

मैं अपने निश्चय से प्रसन्न था, किंतु बासमती का अभाव काम का स्वरूप तय करने में भारी पड़ रहा था। किसी तरह कसमसाहट भरे दिन काट रहा था। अनायास भारत में एक भारी राजनीतिक परिवर्त्तन हुआ। इंदिरा गांधी ने अपने ही दमनचक्र से बेजार होकर प्रजातांत्रिक मार्ग का रुख किया। 18 जनवरी, 1977 को राष्ट्रपति ने लोकसभा भंग करके मार्च में चुनाव कराने की घोषणा कर दी। यद्यपि कि देश में इमरजेंसी लगा ही रहा, किंतु लोगों ने मान लिया कि अब इससे डरना नहीं है। अब नेपाल में रहने का कोई कारण नहीं

था। मैंने अपने काम का हिसाब–किताब हाकिम लोगों को सौंप दिया और 19 जनवरी को अपने गाँव के लिए जनकपुर से प्रस्थान कर गया।

दरभंगा आने पर हर तरफ लोगों में तरंग दिखा। कांगरेस और भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (सीपीआइ) एक तरफ और दूसरी ओर बाँकी पार्टियाँ मिलकर जनता पार्टी बन गयी थी। छात्र और युवा, लोगों से चंदा माँगकर चुनावी उमीदवारों की सहायता कर रहे थे। हर तरफ लोग उमड़ रहे थे। चुनाव को लेकर लोगों में भारी उत्साह था। जिस तरह इमरजेंसी में लोग तबाह हुए थे उसी तरह चुनाव में कांगरेस का सफाया हो गया। दिल्ली में 'जनता सरकार' का गठन हुआ। जयप्रकाश नारायण और आचार्य कृपलानी की उपस्थिति में मोरारजी भाई देसाई को प्रधान मंत्री चुना गया, लेकिन उतने बड़े आंदोलन से भी पदलोलुप राजनीतिज्ञों का ह्रदय–परिवर्त्तन नहीं हुआ। खैर, मुझे राजनीतिज्ञों के कृत्य पर किसी तरह की चर्चा नहीं करनी है। मुझे तो मात्र यह देखना था कि अकल्पनीय संघर्ष के बाद बनी सरकार जेपी की 'संपूर्ण क्रांति' को अपना मार्ग बनाती है या पुराने राजनीतिक छल–छद्म को। 1977 के अंत तक मैं भी दिल्ली पहुँच गया। वहाँ मेरा कोई आश्रय या ठिकाना नहीं था, लेकिन था तो मैं भी एक आंदोलनकारी ही। मुझे अपना आश्रय स्वयं खड़ा करना था। समझिए कि अपने ढंग की जीवन–शैली के साथ मुझे बासमती के गोदना से कुछ करने का अवसर तलाशना था।

दिल्ली जाने का मेरा उद्देश्य प्रकट रूप से तो नयी सरकार की कारगुजारी देखना था, लेकिन मैं जानता था कि जिस सरकार को बदलने या बनाने के लिए जनता भावुकता में अपनी जान तक कुर्बान कर देती है, उसी सरकार के एम एल ए या एम पी चुने जाने के बाद नेता अंगरेज हो जाते हैं। उनका परिचय सिमटकर उनकी कुरसी तक रह जाता है। जो हो। जब आंदोलन में भाग लिया था तो इतनी उत्सुकता जायज ही थी; जैसा अस्सी वैसा निन्यानवे। असल में बासमती के अचानक संकट में फँस जाने और ठीक ऐसी हालत में उससे अलग हो जाने के कारण मैं अकबका गया था। यद्यपि कि घर पर रहते हुए मैंने अपनी पत्नी शिवा के साथ मिथिला चित्रकला पर कुछ काम जरूर किया, लेकिन कोई गौं हाथ नहीं लग रही थी। इस चित्रकला का बाजारू नाम 'मधुबनी पेंटिंग' पड़ गया था। यह नाम मुझे सुहाता नहीं था। मैं यह मानता था कि जिसने भी इस कला को ऐसा गलत नाम दिया होगा वह या तो अकल का पूरा अंधा होगा या फिर शातिर स्वार्थी। और उस उद्योग से जुड़े मधुबनीवाले लोग क्यों चाहते कि दुनिया के सामने कला का असली परिचय जाए? सरकार ने बैठे–बिठाए उनके लिए पेंटिंग पेटेंट करा दिया था। मधुबनी के कलाकारों में परस्पर ईर्ष्या और प्रतिद्वंद्विता इतनी बढ गयी थी कि सभी कलाकार अपने परिवार में ही सबसे बड़े कलाकार होने का दावा करते थे। सामूहिक रूप से सोचने वाला कोई नहीं था। उन दिनों देश–विदेश के खरीदार जितवारपुर, रॉटी, मंगरौनी, रसीदपुर जैसे कुछ गाँवों में घूमकर, कलाकारों के आँगन में जाकर पेंटिंग खरीदते थे। बाहरवाले समझते थे कि इस कला का मूल उद्गम मधुबनी के उन गिने–चुने गाँवों से ही हुआ है, सरकार भी यही बतलाती थी; इसीलिए तो इसका नाम 'मधुबनी पेंटिंग' रखाया। बाजार शुरू होने से पहले तो किसी ने यह नाम नहीं सुना था। मुझे यह सब देखकर चिंता होती थी कि ऐसी स्थिति में संपूर्ण मिथिला या पूरे बिहार की औरतों के लिए यह कला रोजगार का औजार कैसे बन सकती है? भारत सरकार या उसका वस्त्र मंत्रालय (हस्त शिल्प बोर्ड जिसके अधीन था) मधुबनी से बाहर उस कला को फैलाना नहीं चाहता था और बिहार सरकार को तो कभी ऐसे कामों में रुचि हुई नहीं (आज 2018 के मध्य तक भी बिहार सरकार इस

कला के लिए कुछ नहीं कर पायी)। मैंने तय कर लिया कि अब मुझे ही कुछ करना होगा, सब के लिए, बिना सरकारी मदद के।

मधुबनी के दलित लोग भी 'गोदना पेंटिंग' के नाम से चित्र–उद्योग में गहन रूप से लगे हुए थे। दलितों के अलावे इस चित्रकारी में अन्य जाति के महिला–पुरुष दोनों लगे हुए थे, लेकिन चित्रकला के विकास की ओर किसी का ध्यान नहीं था। 'मधुबनी पेंटिंग' के काम में जुटे लोगों के पास तो पौराणिक प्रसंगों का विशाल भंडार था; सीता–राम, राधा–कृष्ण, शिव–पार्वती, देवता–दानव सभी सदल–बल उनके पेंटिंग के लिए उपलब्ध थे, किंतु गोदना–पेंटिंग में मूल कला बहुत ही कम नजर आ रही थी। कलाकार अंडबंड कुछ बना रहे थे और चित्र की गलत व्याख्या करके किसी तरह काम चला रहे थे। देह पर से चित्रों को कागज पर उतारने का तरीका कभी मैंने ही बताया था, लेकिन सभी औरतों की देह पर इतने गोदना तो होते नहीं थे कि बहुत दिनों तक पेंटिंग के रूप में उसे दुहराते रहें। होना यह चाहिए था कि इसे समग्रता में लेकर कोई चले और महिलाओं को डिजाइन–प्रशिक्षण दे, लेकिन सरकार के पास दृष्टिकोण नहीं था और ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जो सबों के लिए काम करता। मेरे पास गोदना का भंडार था, लेकिन हर कोई चाहता था कि ये चित्र मैं उसीको दे दूँ। ऐसा कैसे हो सकता था? बासमती की निधि मैं किसी एक व्यक्ति को कैसे दे सकता था?

बहुत मंथन के बाद मैंने निश्चित किया कि चित्रकला यदि गलत नाम और सरकारी हठधर्मिता के कारण सर्वव्यापी नहीं हो सकती है तो उसके स्वरूप में ही परिवर्त्तन कर दिया जाए, जैसे कि चित्र को केवल सजावटी सामग्री ही नहीं बल्कि उपयोगिता आधारित उत्पादन से भी जोड़ा जाए। यह एक जटिल निर्णय था। चित्र के नए स्वरूप को बाजार कैसे मिलेगा? मधुबनी पेंटिंग के लिए तो भारत सरकार देश–विदेश में विज्ञापन कर रही थी, हमारे नए उत्पाद का प्रचार कौन करेगा? मैं यह तो चाहता था कि फैशन–वस्त्र के रूप में चित्र का चलन हो, लेकिन इसके लिए हमारे पास न पूँजी थी और न बनाने वाली कलाकार। अकेले मेरी पत्नी कितना कर सकती थी? वस्त्र पर चित्रांकन करना सीधे पेंटिंग बनाने जैसा काम नहीं होता है। इसके लिए निरंतर डिजाइन–प्रशिक्षण की और बड़े बाजार की जरूरत होती है। चित्रकला से बने सामान खरीदने वाले गाँव में तो मिलेंगे नहीं। इसके ग्राहक तो महानगर में होते हैं। मैं खुद कभी दिल्ली–बंबई गया ही नहीं था, उसके सपने कैसे बाँटता? इतने सारे सवाल मेरे सामने एक साथ जमा हो गए थे, जिनका जवाब मेरे पास नहीं था मगर मैं खुश था कि बात तो आखिर साफ हुई। बासमती कहती थी, सोचेंगे तभी तो कुछ होगा। मेरी पत्नी थोड़ा–बहुत पेंटिंग बनाती थी और अपने मायके भेज देती थी, बेचने के लिए। इससे ज्यादा वह कर भी क्या सकती थी? जैसे–जैसे मेरे सामने में योजना साफ हो रही थी, इंतजाम के अभाव में मेरी छटपटाहट भी वैसे ही बढ़ रही थी। इतना तक सोच लेने के बाद मैं चैन से बैठा नहीं रह सकता था। अब मेरे सामने सबसे पहले महानगर देखना था। मैं यह जानता था कि बिहार से रोज अनगिनत मजदूर दिल्ली जा रहे थे। एक दिन मैं दरभंगा स्टेशन जाकर देखना चाहता था कि वास्तव में कैसे मजदूर जा रहे थे। उस समय शायद दरभंगा से दिल्ली की सीधी गाड़ी नहीं थी। काम की तलाश में जाने वाले झुंड के झुंड मजदूर, स्त्री–पुरुष, मुझे दरभंगा स्टेशन पर दिखे। वे समस्तीपुर से दिल्ली की गाड़ी पकड़ते थे। आखिर मुझसे नहीं रहा गया। जब सभी लोग दिल्ली में गुजारा कर लेते हैं तो मैं क्यों नहीं थोड़े दिन बिता सकता हूँ? मैं घर में दिल्ली की बात नहीं बताना चाहता था। मेरे पास कहने को ऐसा कोई कारण नहीं था कि मैं दिल्ली क्यों जाना चाहता था। घुमक्कड़ी के लिए कौन जाने देता? माँ और पत्नी को बताया कि बनारस जा

रहे हैं। मुझसे छोटी बहन बनारस में रहती थी, लेकिन उसके मकान का पता मेरे पास नहीं था, बस इतना ही जानते थे कि वह अपने परिवार के साथ दशाश्वमेध घाट इलाके में रहती है। घर में लोगों ने माना कि ठिकाने पर ही जा रहा है तो कोई हर्जा नहीं है। मैं बनारस आया, चार दिनों तक खोजता रहा, मुझे बहन–बहनोई का घर नहीं मिला। मैं असल में चाहता भी यही था। बहन–बहनोई अगर मिल जाते तो बिना खास मतलब के मुझे दिल्ली नहीं जाने देते। मैं तो बस दिल्ली जाना चाहता था। मुझे दिल्ली की जमीन से उसके विस्तृत आकाश की उड़ान भरनी थी, चाहे फटेहाली में ही क्यों न रहना पड़े! मैंने मान लिया था कि वहीं कोई उपाय मिलेगा।

दिल्ली पहुँचने पर सबसे बड़ा प्रश्न ठहरने का स्थान खोजना था। मैं किसी परिचित व्यक्ति के पास रहकर अपने तरह से घूम–फिर नहीं सकता था। मेरे पास जो थोड़े रुपए थे उसे मैं होटलबाजी में खर्च नहीं करना चाहता था। शुरू की कुछ रातें स्टेशन के प्लेटफार्म पर ही गुजारी। दिन भर जहाँ–तहाँ घूमना, कहीं ढाबे में खा लेना और रात में प्लेटफार्म पर अखबार बिछाकर सो जाना। यही दिनचर्या थी। एक दिन घूमते–घामते जनपथ, जनपथ लेन से अशोक रोड गोलंबर, पार्लमेंट स्ट्रीट की तरफ चला गया। उधर हर तरफ बहुमंजिले भवन बन रहे थे और बनाने वाले मजदूर बिहार–उत्तर प्रदेश के थे। मजदूरों में स्त्री–पुरुष दोनों थे। एक–डेढ़ बजे वे खाना खाने के लिए जमा होते थे। जनपथ लेन जहाँ अशोक रोड गोलंबर से मिलता था, उस प्वाइंट पर कोठियों से लगे पेड़ों की छाया में बेशुमार मजदूर खाने के बाद सुस्ताते थे। अब मैं रोज वहाँ जाने लगा। जल्द ही कुछ लोगों से हमारी दोस्ती हो गयी। वे मजदूर रात में सोते भी उधर ही थे। पार्लमेंट स्ट्रीट के फुटपाथ से लेकर जनपथ लेन तक उनका सघन बसेरा बन जाता था। मजदूरों के साथ घुलमिल जाने पर वे पढ़ने के लिए तैयार हो गए, लेकिन प्लेटफार्म पर मेरा सोना उन्हें पसंद नहीं था। आखिर मैं भी उनकी मंडली का सदस्य बन गया। अब मैं लगभग दिन भर, कई पालियों में पढ़ाता रहता था। दिन में तो मैं कहीं कुछ खा लेता था, लेकिन रात का खाना मजदूरों से ही मिलने लगा।

अब मेरी गाड़ी तो पटरी पर आने लगी थी मगर मेरे रुपए खतम होते जा रहे थे और आमदनी का कोई उपाय नहीं था। मजदूर लोग चाहते थे कि पढ़ाने के एवज में जो जितना पैसा दे दे मैं ले लूँ, लेकिन मेरा तो प्रण था कि किसी से पढ़ाने का शुल्क नहीं लूँगा। मैंने उन्हें बताया। उन लोगों ने आपस में विचार करके मुझे उसी जगह पान–बीड़ी–सिगरेट बेचने की सलाह दी। मजदूरों में एक था समस्तीपुर का भोला मंडल। दिल्ली आने से पहले वह अपने गाँव में पान की दुकान चलाता था। उसने दुकान जमाने का जिम्मा ले लिया। उसी जनपथ लेन और अशोक रोड गोलंगर के कोने पर मजदूरों ने बक्सा रखने लायक एक छोटा चबूतरा बना दिया, फलों की पेटी से काम चलाऊ बक्सा बना दिया और पहाड़गंज से सभी सामान खरीदकर दुकान चालू करा दिया। अब मैं वहीं बैठकर पान–बीड़ी बेचता था और बारी–बारी से मजदूरों को पढ़ाता भी था।

एक दिन एक बाबा मिले। वह सहरसा के थे। धोती–कुरता, लंबी सफेद दाढ़ी और कपार पर सिंदूर का ठोप; उनका बाना प्रभावशाली था। वह 21 अशोक रोड के सर्वेंट क्वार्टर पर कब्जा करके उसमें सपरिवार रहते थे। उन्होंने मुझे भी उस क्वार्टर के एक परित्यक्त, टूटे–फूटे कमरे में रहने का निमंत्रण दिया। फुटपाथ पर सोने से तो अच्छा था; असल में मैं वहाँ कुछ लिख नहीं पाता था। उनका प्रस्ताव मुझे अच्छा लगा। अब मैं खा–पीकर रात को वहीं चला जाता था।

मेरे पास आठ–नौ साल का एक लड़का आकर बैठता था। उसका नाम कोरल वैज था। वह कचड़ा बीछकर गुजारा करता था। एक दिन मैंने उसका हाथ पकड़कर देखा। उसके हाथ में कहीं बाल–सुलभ कोमलता नहीं थी। उसकी हथेली और उँगलियाँ कट–छिलकर एकदम कठोर हो गयी थीं। उसने बताया कि वह केवल टूटे–भांगे सीसा चुनता था। सीसे की तेज धार से उसकी हथेली और उँगलियाँ रोज कटती रहती थीं, अब खून नहीं निकलता था। मैंने सोचा, उस बच्चे की देह में खून ही कितना था जो बहता, मगर मैं उसकी बात नहीं समझ सका। वह सीसा ही क्यों चुनता था? उसके जैसे दर्जनों बच्चों को मैं उधर कचड़ा चुनते देखता था मगर यह नहीं जानता था कि सभी बच्चे अलग–अलग तरह की चीज चुनते थे। उसने बताया कि उनका भी संगठन था जो तय करता था कि कौन कचबचिया क्या चुनेगा। कचड़ा चुनने वालों को कचबचिया कहा जाता था। कोई केवल कागज और गत्ता चुनता था, कोई प्लास्टिक और रबड़ बीछता था, कोई लोहा और टिन चुनता था; कोरल को सीसा और पीतल चुनना था।

कुछ दिनों से कोरल वैज कचड़ा नहीं चुन रहा था। वह मेरे पास आता तो रोज था, लेकिन मन्हुआकर कहीं पड़ रहता था। एक दिन वह मेरे सामने के गोलंबर पर भागा जा रहा था और पीछे से एक पुलिस उसे खदेड़ रही थी। दौड़ते–दौड़ते वह बच्चा मुँह के बल गिर पड़ा। मेरे कहने पर कुछ मजदूर दौड़े। मजदूरों ने पुलिस को घेर लिया। पक्की सड़क पर मुँह के बल गिरने से कोरल के दो–तीन दाँत टूट गए और कमीज खून से भींग गयी। कुछ लोग उसे उठाकर पास के एक डाक्टर के पास ले गए और कुछ लोग पुलिस की घेराबंदी कर हमारे पास ले आए। मजदूर बहुत गुस्से में थे। वे किसी अधिकारी को ही उसे सौंपना चाहते थे। उस घटना के पीछे बात यह थी कि कोरल ने उस पुलिस को पिछले कई सप्ताह से चार आने (पचीस पैसे का सिक्का जो अब नहीं चलता है) का हफ्तावारी महसूल नहीं दिया था। नियम था कि जो बच्चा जिस इलाके में कचड़ा बीछेगा वह उस इलाके की पुलिस को चार आने हफ्ता का महसूल देगा, नही तो उसे चोरी के आरोप में धर लिया जाएगा। कोरल वैज लंबे समय से बीमार चल रहा था और ठीक से काम नहीं कर पाता था, इसलिए इलाके की पुलिस को हफ्ता भी नहीं चुका रहा था। पुलिस उसे खोज रही थी। उस दिन वह उसे दिख गया, इसलिए खदेड़ रहा था।

मेरी दुकान पर चार बजे के बाद ऑफिस से छूटे बाबू लोग भी जमा होते थे, सिगरेट पीते थे और बहस में भाग लेते थे। मैं एक आंदोलनकारी तो था ही, अच्छी हिंदी और अंगरेजी भी बोलता था, लोगों को मुफ्त में पढ़ाता था और कुछ राजनीतिक विचार रखते हुए पान बेचता था, यह बात पढ़े–लिखे लोगों के लिए कौतूहल और आकर्षण की थी। बहुत लोग मेरे साथ हिलमिल गए थे। उस समय तक मजदूर लोग भी आने लगते थे। सभी लोग बगल के 'दिलखुश टी स्टॉल' पर चाय पीते थे और चाय पीने के बाद पान–बीड़ी के लिए मेरी दुकान पर आकर गप्पें मारते थे। कुल मिलाकर वहाँ रोज एक मजलिस जम जाती थी। उस मजलिस के एक सदस्य मथुरा पांडे भी थे। वह सात्विक विचार के नेकदिल रिटायर्ड दारोगा थे। घूस–पेंच का विरोध करने के कारण हमेशा उनका ट्रान्सफर ही होता रहता था। अंत में ऊबकर उन्होंने समय से पहले ही इस्तीफा कर दिया। उस दिन जब मथुरा पांडे आए तो मजदूरों ने पुलिस को उनके हवाले कर दिया। सभी बात सुनने के बाद पांडे जी ने पहले तो उसकी खूब धुनाई की, इसके बाद उसे पकड़कर कुछ लोगों के साथ पुलिस चौकी ले गए।

इस घटना का अच्छा असर यह हुआ कि अगले दिन मेरी दुकान पर उस इलाके के सभी कचबचिया जमा हुए। मजलिस में जुटने वाले बहुत उत्साही लोग भी जमा हुए। मथुरा पांडे दस बजे ही आ गए। अब कचबचिया बच्चे संगठित हो रहे थे। संगठन में बहुत लोग शामिल हुए। संगठन ने पहला निश्चय किया कि कोई कचबचिया अब पुलिस को पैसे नहीं देगा। दूसरा निश्चय हुआ कि सबों को पढ़ना है। तीसरा महत्वपूर्ण निर्णय हुआ कि संगठन समय–समय पर तरह–तरह के काम का ट्रेनिंग आयोजित करेगा, ताकि कचड़ा चुनने से मुक्ति मिले। मथुरा पांडे ने ट्रेनिंग के दिनों में खाने–पीने का बंदोबस्त करने का जिम्मा लिया ताकि बच्चे निचिंत होकर सीख सकें।

महीने भर के अंदर ही बच्चों से सहानुभूति रखने वाले बहुत लोग संगठन के सदस्य हो गए। सभी लोग उन बच्चों के लिए कुछ न कुछ करना चाहते थे। बच्चों की संख्या सोलह थी जो आठ–नौ साल से पंद्रह–सोलह वर्ष आयु–वर्ग के थे। उनकी सबसे बड़ी समस्या रात में सोने और नहाने–धोने की थी। संगठन के एक सदस्य सुरजीत सिंह थे। उनका एक गैरेज था जो अब खाली रहता था। उन्होंने उसमें बच्चों को सोने और नहाने–धोने की अनुमति दे दी। एक सदस्य थी मणिकर अम्मा। वह दक्षिण भारतीय महिला घरों में काम करने वाली कामगर महिलाओं की लीडर थी। उसने अपनी मंडली की सभी कामगरों की मदद से कपड़े जुटाने का मुहिम शुरू किया, नए–पुराने कपड़े। सप्ताह भर में ही ढेर सारे कपड़े बच्चों के लिए जमा हो गए। चार युवक मेरे साथ पढ़ाने के काम में भी शामिल हो गए। मणिकर अम्मा और उनकी मंडली की महिला कामगर अपने डेरों से मिले ढेर सारा खाना भी गैरेज में जमा कराती थी। एक सदस्य थे गोपाल रेड्डी। वह चित्तूर जिला (आंध्र प्रदेश) के कलाहस्ति गाँव के थे जो 'कलमकारी' लोकचित्र के लिए प्रसिद्ध रहा है। वह स्वयं भी अच्छे कलाकार थे। गोपाल रेड्डी ने बच्चों को बासमती के गोदना चित्र से प्रशिक्षण देना शुरू किया। कुछ ही दिनों में बच्चों का कला–कौशल निखरने लगा। कुछ लोगों ने आर्टपेपर और कैमेल के रंग खरीद दिया। उस कागज और रंग से बच्चों ने तीन–चार डिजाइन के खूबसूरत ग्रीटिंग कार्ड बनाया। सभी कार्ड हाथों हाथ, दो रुपए की दर से बिक गए। स्वयं मेरे लिए यह प्रशिक्षण एक चमत्कार की तरह था। बासमती की देह से उतारे चित्रों का उपयोग अब मेरी समझ में आ गया था।

एक दिन शाम में जब मैं 21 अशोक रोड के अपने आश्रय पर आया तो देखा कि मेरे सामान बाहर में फेंके हुए थे। बंगले के गार्ड ने आकर बताया कि अब उस कोठरी को तोड़ दिया जाएगा, इसलिए वहाँ नहीं रह सकते। अब दिल्ली से मेरा मन भी भर चुका था। मैं जिस बात के लिए वहाँ रहा, वह काम अब पूरा हो गया था। मुझे जो देखना–सीखना था, वह मैंने सीख लिया था। अगले दिन मैंने अपनी दुकान कोरल वैज को सुपुर्द कर दिया और सबों से मिलकर दरभंगा लौटने की तैयारी में जुट गया। मेरा भविष्य अब मुझे साफ–साफ दिखने लगा था।

मैं दिसंबर, 1977 में दिल्ली गया था और करीब पंद्रह महीने वहाँ रहकर मार्च, 1979 में गाँव वापस आ गया। अब मुझे बासमती के चित्रों का उपयोग समझ में आ गया था। मैं व्यापक क्षेत्र में स्त्रियों के लिए इस चित्र–विधा का प्रयोग करना चाहता था, लेकिन मिथिला जैसे रूढ़िवादी समाज में ऐसा कोई उपक्रम खड़ा करना अपराध माना जाता था। बड़ी जाति की स्त्रियों, खासकर सयानी लड़कियों को घर से बाहर निकलकर किसी सामूहिक कार्य में भाग लेने की कठोर मनाही थी। उस समय तक मिथिला में छुआछूत की परंपरा भी पुराने समय जैसी ही बनी हुई थी, महिलाओं में यह वर्जना और भी पकिया थी। बड़ी जाति की

स्त्रियाँ सभी जाति के मिलेजुले समूह में नहीं बैठ सकती थी। इस परंपरा को तोड़ने के लिए लड़कियों को प्रेरित करने का साहस मैं नहीं कर सकता था। मुझे यह सब करना तो था, लेकिन बहुत धीरे–धीरे।

गाँव में एक सप्ताह बिताने के बाद मैं बासमती का हालचाल पता करने जनकपुर चला गया और रासबती से मिला। रासबती करीब महीना दिन पहले कलकत्ता गयी थी। बासमती का इलाज अभी भी चल रहा था मगर वह धीरे–धीरे ठीक हो रही थी। उसका मन पढ़ने में लग गया था। उसके मामा चाहते थे कि उसका विवाह कर दिया जाए, लेकिन विवाह की चर्चा से ही उसका मन बिगड़ जाता था। इसलिए चिकित्सक भी विवाह कराने की अनुमति नहीं दे रहे थे।

दिल्ली में मैं कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं के संपर्क में आया था जो बच्चों, स्त्रियों और मजदूरों के लिए काम कर रहे थे किंतु उनके उद्देश्य और काम की पद्धति अपने शहरी तरीके की थी। मैं बिहार के देहातों की परिस्थिति के अनुसार बदलाव की प्रक्रिया शुरू करना चाहता था। मिथिला में उन दिनों ऐसी कोई संस्था नहीं थी जो सामाजिक बदलाव और गरीबी की मार से दग्ध स्त्रियों के लिए काम करती हो; असल में ऐसी सोच का ही लोगों में अभाव था। उन्हीं दिनों मेरा संपर्क श्री लखन दीन से हुआ। वे मुझसे तीन–चार साल बड़ी आयु के होंगे लेकिन सामाजिक कार्य के मामले में वे मुझसे बहुत बड़े थे। वे सर्वोदय और भूदान आंदोलन से जुड़े हुए थे और संगठन में उनकी विश्वसनीयता बहुत अधिक थी। मेरी पूरी योजना सुनने के बाद उन्होंने मुझे उस समय की प्रसिद्ध सर्वोदय संस्था "समन्वय आश्रम", बोधगया के प्रमुख श्री द्वारको सुंदरानी के नाम एक पत्र दिया। मैं वह पत्र लेकर समन्वय आश्रम पहुँच गया और द्वारको जी से मिला। उन्होंने मेरे काम और विचार जानने के बाद आश्रम का कार्यकर्ता बना लिया।

समन्वय आश्रम की स्थापना मेरे गुरु विनोबा जी की इच्छा से हुई थी। यह असल में विनोबा जी के दर्शन, "जीवन और शिक्षण" पर आधारित एक विद्यालय था जो अनाथ और दलित बच्चों को कृषि पर आधारित शिक्षा और आश्रय प्रदान करता था। इसके कई केंद्र थे जहाँ खासकर 'भुइयाँ' बच्चे आवासीय पद्धति में रहते थे। समन्वय आश्रम में मुख्यतया लड़कियाँ रहती थीं, कुछ सयाने लड़के भी रहते थे। संस्था की स्थापना ट्रस्ट के रूप में हुई थी। द्वारको जी इसके ट्रस्टी थे। इसका निर्माण चूँकि स्वयं भूदान–यज्ञ के प्रणेता संत विनोबा भावे की इच्छा से हुआ था, इसलिए ट्रस्ट के नाम से हर केंद्र पर भूदान की बहुत जमीन मिली हुई थी। आश्रम की जमीन पर खेती–बाड़ी होती थी, गोशाला चलती थी, फल उपजाए जाते थे और यह सब करने के लिए अथवा छात्र–छात्राओं के कल्याण के लिए देशी–विदेशी दान एजेंसियों से भारी दान मिलता था। हो सकता है कि कभी आश्रम धन का उपयोग उद्देश्य के अनुसार करता रहा हो लेकिन जिस समय मैं वहाँ पहुँचा, उस समय धन के उपयोग में बहुत अनियमितता थी।

बोधगया सब दिन से बौद्धधर्म का प्रमुख केंद्र होने के कारण सब दिन से विदेशियों के आकर्षण का तीर्थ रहा है। बौद्ध धर्मावलंबी देशों जैसे जापान, इंडोनेसिया, थाइलैंड, बर्मा, चीन, भूटान, तिब्बत, श्रीलंका आदि देशों ने वहाँ अपने मठ तो बनवाया ही है, इन देशों से पर्याप्त पर्यटक भी आते रहते हैं। मुख्य महाबोधि मंदिर के निकट होने के कारण और प्रचार के कारण समन्वय आश्रम भी विदेशियों के लिए दान करने योग्य संस्था के रूप में जाना जाता था। वहाँ हमेशा कुछ विदेशी (अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, इंगलैंड सहित यूरोप के अन्य देशों के लोग) अध्ययन के लिए आश्रम में रहते थे। आश्रम में मेरे जिम्मे दो काम थे; विदेशी छात्रों को

हिंदी सिखाना, अन्य विषयों में उन्हें भारतीय दृष्टिकोण से परिचित कराना और आश्रम की छात्राओं को पढ़ाना। वहाँ मेरी मित्रता इंगलैंड के लंकाशाएर से आयी छात्रा मैरियन हचिंसन से हो गयी।

समन्वय आश्रम में मैं नौकरी करने नहीं गया था। मैं संस्थाओं की संगठन–प्रक्रिया और कारगुजारी देखने–सीखने के लिए ही वहाँ गया था। जाहिर है, मैं वहाँ की कारगुजारी देखकर बेचैन रहता था। एक थे जनार्दन भाई। वह विद्वान और तपस्वी जैसे सर्वोदयी थे। वे पटना के बिहटा से सटे किसी गाँव से आते थे। उनसे बहुत कुछ सीखने को मिला। मैं पहली बार भुइयाँ जैसे दलित समुदाय के संपर्क में आया था। उनकी सामाजिक–आर्थिक दशा के अध्ययन से दलितों के प्रति मेरा प्रेम और भी मजबूत हुआ। मैरियन हचिंसन के साथ मिलकर मैंने विचार किया कि दलितों और अन्य वंचित समुदायों की शिल्प–कलाओं को यदि औपचारिक शिक्षण–पद्धति में ढाल दिया जाए तो इससे उनके लिए **"पढ़ाई के साथ कमाई"** की एक नयी पद्धति विकसित हो सकती है, कला से संबंधित जानकारियों से उनकी शिक्षा भी होगी और उपयोगिता–आधारित उत्पादन–विपणन का नवोन्मेष भी होगा। मैरियन के साथ निरंतर वार्ता करते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि समाज के सबसे निचले पाएदान पर खड़े समुदायों के पास उनके शिल्प, गीत, कथा आदि तत्वों के विशाल भंडार हैं जो वस्तुतः उनके परंपरागत ज्ञान के अक्षय भंडार हैं। यदि इन स्रोतों का दोहन करके शैक्षणिक पद्धति में उनकी ढलैया की जाए तो इससे वंचित समूहों के लिए एक अभिनव पद्धति बनेगी जिससे उनकी आजीविका और शिक्षा दोनों का विकास होगा और इस पद्धति को वे सहज रूप से अपना सकेंगे। यही पद्धति लंबे प्रयोग के बाद **"शिल्प–कला विश्वविद्यालय"** के रूप में विकसित होकर सार्वजनिक लाभ का संस्थान बन सकेगी। मैंने मान लिया कि इस मद में यदि मैं आधा काम भी कर लूँ तो भी समाज के वंचित लोगों को नया जीवन मिल सकेगा। इतना सोचने के बाद मुझे समन्वय आश्रम की कुव्यवस्था से टकड़ाकर अपना समय बर्बाद करना अच्छा नहीं लगा। कुछ और सीखने के उद्देश्य से मैं सतीश–गिरिजा के साथ मिल गया।

दिल्ली में 'जनता सरकार' का गठन जे पी आंदोलन के कारण संभव हो पाया। उस आंदोलन की सबसे बड़ी शक्ति छात्र–युवा या 'संपूर्ण क्रांति' की अवधारणा थी, लेकिन जब पुराने राजनीतिज्ञों के हाथ में आंदोलन का प्रसाद आ गया तो उनका पुराना खेल फिर शुरू हो गया। नए लिफाफे में लिपटे ये नेता और मंत्री पूर्व के कांगरेसी मंत्रियों से ज्यादा पद–लोभी साबित हुए। यह सब देखकर बहुत युवक खिन्न थे। उनका मोह–भंग हो गया और उन्होंने समाज–सेवा का मार्ग पकड़ लिया। सतीश–गिरिजा से मेरी भेंट समन्वय आश्रम में हुई थी। वह दोनों इंजीनियर मित्र जे पी की प्रेरणा से गया और हजारीबाग जिले में संस्था बनाकर काम कर रहे थे। उनकी दृष्टि व्यापक थी। मेरे–उनके सिद्धांत बहुत हद तक मिलते थे। जे पी की अवधारणा वाली "लोक–समिति" को मैं भी मानता था और वे भी इसके संगठन में लगे हुए थे। उनके निमंत्रण पर मैं "नव भारत जागृति केंद्र", चौपारन, गया पहुँच गया। वहीं व्यापक क्षेत्र में दलितों के लिए काम करने का अवसर मुझे मिला। वहां के दलित विकट गरीबी और निरक्षरता के साथ सामंती दबाव में जी रहे थे। दलितों के पचास गाँवों में संस्था साक्षरता कार्यक्रम चलाती थी। मेरा एक काम साक्षरता–अनुदेशकों को प्रशिक्षित करना, चेतनामूलक पाठ्यक्रम बनाना और लोगों को बदलाव के लिए प्रेरित करना था। यहाँ मैंने अपनी साक्षरता–विधि को स्थानीय सामाजिक–आर्थिक परिस्थिति के आधार पर परिवर्द्धित किया और हस्तलिखित उस पुस्तक को "आखर" नाम दिया। अक्षर सिखाने से पहले बासमती के गोदना के कुछ डिजाइन का अभ्यास कराया जाता था। गोदना उनके यहाँ भी गोदवाया जाता था, लेकिन उनके गोदना

बासमती जैसे प्रचुर और विशिष्ट नहीं थे। गोदना के चित्र बनाते–बनाते वे स्वतः अक्षर की ओर मुड़ जाते थे। यहाँ मैंने 'अक्षर–गीत' में भी शोषण के विरुद्ध स्वर भरा। उदाहरण के लिए, ड और ह के पाठ के साथ अक्षर–गीत देखिए ––

"ड से डरना नहीं किसी से, कोई बड़ा है अपने घर में, ह से हल की मूंठ पकड़कर हम खटते हैं, धरती पर हक ले के रहेंगे।" ऐसे गीतों का असर वहाँ की सामंती व्यवस्था पर बहुत बड़ा हुआ। दलित जन्मजात मजदूर थे, दिन भर खटते थे, फिर भी भूखे–नंगे रहते थे। इन अक्षर–गीतों ने उनके भीतर की चिनगारी को हवा दे दी। उन्होने जब–तब गाना शुरू कर दिया, "जो जमीन को जोते–बोये, वो जमीन का मालिक होये।" सतीश–गिरिजा के साथ रहते हुए मैंने **"लोक–समिति बुलेटीन"** नाम से हस्तलिखित साइक्लोस्टाइल्ड पत्रिका का संपादन और प्रकाशन भी किया।

सतीश–गिरिजा के साथ काम करते हुए मैं बहुत प्रसन्न था, किंतु आगे चलकर मैं जिस सिद्धांत के साथ काम करना चाहता था, उसे लेकर उनके तरीके से मेरा मतभेद था। वे दलितों की गरीबी दूर करने के लिए, उन्हें पौष्टिक आहार उपलब्ध कराने के लिए और कई तरह की परियोजना चलाने के लिए बेशुमार विदेशी फंड प्राप्त करते थे। दूसरी ओर, मैं गरीबी दूर करने के लिए स्वनियोजन की ऐसी विधि खोजना चाहता था जो व्यक्ति का सशक्तिकरण भी करे, शिक्षा का साधन भी बने और शोषण पर आधारित उनकी निर्भरता को समाप्त करे। लगातार विदेशी सहायता पर जीने की आदत लगाना मैं अच्छा नहीं मानता था। मैं मानता था कि बाहरी सहायता उतनी ही लेनी चाहिए जो काम शुरू करने या आगे बढ़ाने के लिए बहुत जरूरी हो। बाहरी सहायता पर निर्भरता व्यक्ति या समूह की क्षमता को कुंठित कर देती है। मैंने अनुभव किया कि सभी संस्था की अपनी सोच और सीमा होती है। मैंने खुद भी स्वनियोजन का कोई कार्यक्रम उस समय तक चलाया नहीं था तो उन लोगों पर ऐसा काम शुरू करने की सलाह कैसे दे सकता था? उसी बीच एक ऐसी घटना हो गयी कि मुझे नहीं चाहते हुए भी सतीश–गिरिजा से अलग होना पड़ा।

बात हुई कि 'नव भारत जागृति केंद्र' के चौपारन मुख्यालय पर सभी कार्यकर्ता की तरह लेखापाल शिवशरण भाई भी अपनी पत्नी मोती बहन और बच्चों के साथ रहते थे। सतीश और गिरिजा ने उस समय तक विवाह नहीं किया था। शिवशरण भाई की बड़ी बेटी शीला का विवाह बचपन में ही हो गया था, लेकिन गौना (विदागरी) नहीं हुआ था। अब शीला पूर्ण युवा हो गयी थी। विचित्र बात यह हुई कि सतीश और गिरिजा एक साथ उससे प्रेम करने लगे। शीला भी बिना किसी भेद के दोनों से प्रेम करने लगी। इसी बीच उसके ससुराल वाले एक दिन विदागरी कराकर ले गए। सतीश–गिरिजा ने कहा कि शीला बचपन में हुए विवाह को नहीं मानती है और अपने ससुराल जाने को इच्छुक नहीं है, अतः उसके साथ हो रही जबरदस्ती का विरोध करना चाहिए और शीला को उसके ससुराल वालों से मुक्त कराना चाहिए। वह दोनों शीला को उसके ससुराल से ले आए। इस घटना से संस्थाओं के समूह में खलबली मच गयी। एक ऐसी बात होने जा रही थी जो किसी के गले नहीं उतर रही थी। एक पत्नी के साथ दो पति वाली बात उन लोगों के बीच भी कटु आलोचना का विषय बन गयी थी जिनके लिए हम काम करते थे। बड़े–बड़े कार्यकर्ताओं और समाजशास्त्रियों की बैठकें चलती रही। इन दोनों का तर्क था कि महाभारत में यदि पाँच भाइयों की एक पत्नी हो सकती है तो दो मित्रों की एक पत्नी क्यों नहीं हो सकती? अपना–अपना विचार! इस घटना से मैं दुविधा में पड़ गया। मुझे और भी काम करना था, इसलिए संस्था से मुक्त होकर मैं आगे की सफर पर चल पड़ा।

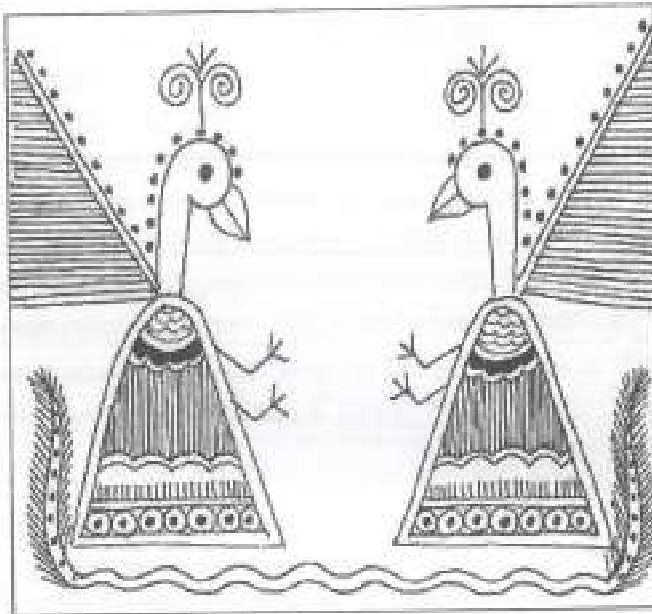
सतीश–गिरिजा ने स्वयंसेवी आंदोलन को मजबूत करने के लिए बहुत काम किया। बिहार (झारखंड समेत) के अनेक भागों में "लोक–समिति" के संगठन के तहत नये कार्यकर्ताओं को आर्थिक सहायता और प्रशिक्षण देकर उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में कई संस्थाओं का गठन करवाया। इस काम में मैं भी सदैव तत्पर रहता था। इस्लामपुर (नालंदा) के दलित मजदूरों और भू–स्वामियों के बीच लंबे समय तक मजदूरी के सवाल को लेकर आंदोलन चलता रहा। यह शांतिपूर्ण आंदोलन "लोक–समिति" के द्वारा ही श्री विनोद शर्मा के नेतृत्व में चला। मैं भी आंदोलन में शामिल था। इस आंदोलन से जो सामाजिक पृष्ठभूमि तैयार हुई, उसके फलस्वरूप आगे चलकर विनोद शर्मा ने "विनोबा आरोग्य एवं लोक–शिक्षण केंद्र" 1987 में पंजीकृत कराया। आज भी इस संस्था को लोग 'लोक–समिति' ही कहते हैं।

लोक–समिति की अवधारणा ने दलितों में बदलाव की जो चिनगारी जगायी उसीके फलस्वरूप गया के वजीरगंज प्रखंड अंतर्गत भीखमपुर और घरेया गाँवों में दलित लोग शोषण के विरुद्ध खड़े हुए। इस जागरण में मेरे अक्षर–गीतों का बड़ा हाथ था। भीखमपुर के उपेंद्र सिंह और घरेया के उपेंद्र सिंह हमारे मित्र हैं। मैं अक्सरहाँ भीखमपुर जाता था। भीखमपुर का उपेन्दर बड़ा अक्खड़ किस्म का आंदोलनकारी था। वह भीखमपुर के भुइयाँ टोला में साक्षरता–केंद्र चलवाता था और वहाँ लोगों के साथ खाता भी था। दलित महिला सुरजी दलितों की मेट थी। उधर के गाँवों में छुआछूत का बड़ा बोलवाला था। जात–पात नहीं मानने के कारण उपेन्दर की माँ को लोग बहुत तरह की शिकायत करते रहते थे और गाँववालों का दबाव बना रहता था। इस दबाव से उपेन्दर को राहत दिलाने के लिए मुझे झूठ का सहारा लेना पड़ा। राजपूतों के उस गाँव में चारों तरफ मेरे बारे में प्रचारित करा दिया गया कि मैं मिथिला का असली ब्राह्मण–पंडित हूँ ; उपेन्दर ऐसे बड़े पंडित के साथ उठता–बैठता है। भीखमपुर उपेन्दर का ननिहाल है। अब जब कभी उपेन्दर के नाना–मामा या दूसरे सगा–संबंधी मुझे देखते थे तो "पाए लागूँ सरकार" कहकर बूढ़े–बच्चे मुझे प्रणाम करने लगे। जब बूढ़े प्रणाम करते थे तो मुझे बहुत बुरा लगता था लेकिन मैं भेद नहीं खोल सकता था; उन्हें आशिष दे देता था, "जय हो!" या "सुखी रहो!" इस झूठ से उपेन्दर पर दबाव कम हो गया। लोक–समिति के आंदोलन से ही "ग्राम–निर्माण केंद्र, घरेया" की स्थापना हुई। मैं उसका संस्थापक अध्यक्ष था और घरेयावाले उपेन्द्र सिंह संस्था के मंत्री बने।

अक्तूबर, 1980 में मेरे पिताजी का निधन हो गया। उनका श्राद्ध–कर्म संपन्न हो जाने के बाद दिसम्बर में मैं फिर जनकपुर गया, रासबती से मिलने। वह अपनी बहन से मिलने समय–समय पर कलकत्ता जाती रहती थी। इस बार उसने अच्छा समाचार बतलाया। रासबती ने बताया कि उसकी बात मानकर बासमती ने एक सुशिक्षित व्यक्ति से पिछले महीने विवाह तो कर लिया लेकिन वह विवाह एक तरह से अधूरा ही था। बासमती का इलाज करनेवाले चिकित्सक ने विवाह से पहले उसके वर को बतला दिया कि वह सहवास के लिए मानसिक रूप से उस समय तक तैयार नहीं थी, इसलिए विवाह के बाद धैर्य के साथ कुछ दिनों तक उसे प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। किसी प्रकार की जबर्दस्ती करने से वह फिर बीमार हो सकती थी। वह महाशय समझदार थे और हर प्रकार से बासमती को सहयोग करने के लिए तैयार रहते थे। बासमती ने बिना किसी हुज्जत के विवाह तो कर लिया किंतु वह अपने वर के साथ सोती नहीं थी। विवाह के बाद एक बार रासबती को भी अपनी बहन के साथ चिकित्सक के पास जाना पड़ा, उसके पूर्व जीवन के सम्बंध में जानकारी देने के लिए। रासबती ने चिकित्सक को बताया कि बासमती मुझसे पढ़ती थी और जनकपुर में दो विदेशी महिलाओं से भी मिली थी। उसने जानबूझकर गोदना–मंथन की बात नहीं बतलायी। सब कुछ जानने के बाद

चिकित्सक ने बासमती के वर को सलाह दी कि उसे किसी ऐसे स्थान पर घुमाने के लिए ले जाया जाए जहाँ देश–विदेश के लोग आते रहते हैं। उसने मुझसे मिलाने की सलाह भी दी। बासमती चिकित्सक की सलाह से बहुत खुश थी। उन दिनों टेलीफोन की बहुत सुविधा नहीं थी। मेरे साथ रासबती तभी संपर्क कर सकती थी जब मैं उसके पास जाऊँ। मैं भी इसी कारण से बार–बार जनकपुर जाकर उससे मिलता रहता था। इस बार जब जनकपुर गया तो रासबती ने सभी हाल बतलाया। मैंने उसे जनवरी के बाद गया आने का निमंत्रण दिया। अब मैं गया के गोरक्षिणी महल्ला में स्थित 'बाम इंडिया' ;ठ।ड प्दकपंद्ध में को–आर्डिनेटिंग डायरेक्टर की हैसियत से काम करने जा रहा था। 'ब्रदर्स टू ऑल मेन' फ्रांस की संस्था थी और वहीं से इसका प्रशासन चलता था। यह संस्था मूलतः कुष्ठ–निवारण, स्वास्थ्य और साक्षरता विषय को लेकर गया जिला में काम करती थी। इसका कार्यालय गोरक्षिणी में था। मैंने रासबती को अपने गया स्थित कार्यालय का पता और वहाँ का टेलिफोन नंबर लिखकर दे दिया। निश्चित हुआ कि जनवरी के अंत तक वह बासमती और उसके पति को लेकर गया आएगी और पहले मुझे फोन से बताएगी।

जनवरी, 1981 बीतने पर था। मैं 'बाम इंडिया' के काम में लग गया था। एक व्यस्त दिन में फोन की घंटी घनघना उठी। उस तरफ से किसी पुरुष का स्वर था। उसने अपना नाम विनय पासवान बतलाया और अपना परिचय देते हुए कहा कि वह बासमती का पति था। मेरे साथ उनका कोई पूर्व परिचय नहीं था, इसलिए विस्तार से सब कुछ बतलाना पड़ा। आखिर उसने बताया कि डॉक्टर की सलाह के मुताबिक वह बासमती और उसकी बहन रासबती के साथ घूमने के विचार से गया आना चाहते थे और मेरे पास ठहरना चाहते थे। मैंने उन्हें एक सप्ताह बाद आने को कहा। आखिर 5 फरबरी को वे सब हमारे यहाँ पहुंच गए। वे तीन लोग थे; बासमती दोनों बहन और बासमती के पति विनय पासवान। दिन के दो बज रहे थे। सबों ने स्नान–भोजन किया। मेरे पास दो कमरे थे। ऑफिस की एक जीप भी हमारे पास थी। विनय पासवान कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातक थे और कोई अच्छी नौकरी करते थे। भोजन के बाद विनय ने बतलाया कि बोधगया में उनके कोई रिश्तेदार रहते थे और उनके यहाँ विवाह के कार्यक्रम में उन्हें शामिल होना था। वह दो दिनों के लिए बोधगया चले गए। मेरे पास बासमती और रासबती रह गयी। वह क्षण तीन वर्षों के बाद फिर से हमारे जीवन में थपकी दे रहा था। कई तरह के विचार हम तीनों के मन में उठापटक मचा रहे थे, सो हम तीनों जान रहे थे, लेकिन कोई किसी से कुछ कह नहीं रहा था। करीब चार बजे हमलोग बाजार की तरफ निकले। हम दोनों अगली सीट पर बैठे थे। जब तक घूमते रहे, मैं अपनी बात उसे बताता रहा। मैंने जब उसे बताने को कहा तो उसके चेहरे पर समझने लायक कोई भाव नहीं दिखा। उसने एक गहरी साँस छोड़ी और बाहर की ओर देखते हुए कहा, "आप जिस दिन छोड़कर गए तब से मैं वहीं खड़ी हूँ ...... उस हालत में अपने आप को बनाए रखने के लिए मुझे बहुत कुछ करना पड़ा ...... आज भी वैसा ही कर रही हूँ ...... आपके साथ जो परहेज निश्चित किए उसको दाँत के नीचे दबाकर रख लिए ..... बहुत पुरवा–पछवा बहा लेकिन मैं डोली नहीं ...... अब आप जो कहेंगे वह होगा ......।" इतनी बात बोलकर वह चुप हो गयी। उसने मेरा हाथ पकड़कर अपनी गोद में रख लिया और आँखें मूँद ली। उसके मुँह से गर्म भाफ का एक झोंका निकलकर मेरे इर्द–गिर्द घुमड़ने लगा। अभी भी उसकी रहस्यमयता मेरे लिए अबूझ ही थी।



आज मैं बासमती दोनों बहनों को अपने साक्षरता–केन्द्रों का दर्शन कराना चाहता था। गोरक्षिणी से उत्तर खंजापुर, कौथेटिया और तपसी गांव में हमारे अच्छे केन्द्र थे। इन केन्द्रों पर लड़कियाँ अधिक थीं और वे सभी गोदना चित्र के माध्यम से अक्षर और चित्रांकन सीख रही थीं। कुछ लड़कियों ने ग्रीटिंग कार्ड बनाया था और दो लड़कियाँ एक साथ मिलकर ढाइ मीटर लंबे कपड़े पर ओढ़नी बना रही थी जो पूरा होने पर था। कुछ लड़कियों ने कपड़े पर ही कुछ और सामान बनाया था। पिछले कुछ दिनों में मैंने एक आइडिया विकसित कर लिया था, पढ़ाई के साथ ही चित्र से उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन का आइडिया। दिल्ली में कचड़ा चुनने वाले बच्चों के कला–प्रशिक्षण से स्वयं मुझे बहुत लाभ हुआ था। मैंने बच्चों के प्रशिक्षण और उत्पादन करने की विधि का एक खाका मन में तैयार कर लिया था जिसका प्रयोग अंततः 'बाम इंडिया' के केंद्रों पर शुरू हुआ। मैंने कैमेल के फेब्रिक पेंट और ब्रस से काम करते हुए कपड़े पर चित्रकारी करने की आजमाइश बखूबी कर ली थी और अपने तीन केंद्रों पर छात्राओं को स्वयं प्रशिक्षण दे रहा था। बासमती की हैसियत आज मेरी नजर में किसी सरकार जैसी थी। उसने मुझे जो निधि दी थी उसके प्रयोग मुझे आज उसे दिखलाना था, जिसकी तैयारी मैं पिछले दो–ढाइ महीने से कर रहा था।

हमारा काम अभी प्रयोग की अवस्था में ही था किंतु जो कुछ हो पा रहा था वह बहुत उत्साहजनक था। लड़कियाँ आज उसके सामने ही उसके खजाने के रत्न पसारकर बैठी थी। उन गरीब छात्राओं को मलमल के कपड़े पर धड़ाधड़ हाथ चलाते हुए मोर–मयूर, हाथी और दूसरे प्रतीक बनाते देखकर वह खुशी से रोने लगी। इस विधि में उत्पादन का क्रम शिल्प–पाठ्यक्रम और अक्षर या साहित्य के साथ तालमेल बनाकर चलता था। मैंने बाजार से कपड़े, रंग, ब्रस और पेंटिंग के लिए कागज खरीद लिया था। दुपट्टे के लिए मलमल का महीन कपड़ा खरीदा गया। दुपट्टे या ओढ़नी की लंबाई ढाइ मीटर और चौड़ाई नब्बे सेंटीमीटर होती है। यहाँ भी मैंने अपने दुहरे दृष्टिकोण को नहीं छोड़ा था; दृष्टिकोण यह कि शिक्षा केवल अक्षर–बोध तक सीमित नहीं रहे बल्कि पीड़ितों–वंचितों की विमुक्ति का साधन बने; उनकी वैयक्तिक मुक्ति का साधन बने; वे सामाजिक उत्पीड़न के बंधन से मुक्त हों साथ ही आर्थिक रूप से स्वनियोजित हों। मुझे स्मरण था जो कुछ एक खतवे लड़की ने करीब नौ साल पहले जितवारपुर में कहा था, मासिक धर्म के बारे में; "तुम लोग जितना कपड़ा रहेगा तब न.....।" मैंने ओढ़नी को केवल एक सामान के रूप में नहीं, लड़कियों के लिए एक जरूरी स्वास्थ्य–उपकरण के रूप में भी इस्तेमाल करने का निश्चय किया। मैंने मलमल के कपड़े का एक थान खरीदा। उस कपड़े की चौड़ाई एक सौ पाँच सेंटीमीटर होती थी। उस पूरे थान को नब्बे सेंटीमीटर की चौड़ाई में काट लिया। अब हमारे पास पंद्रह सेंटीमीटर चौड़े कपड़े की छाँट बच गयी। छाँट का यह

गट्ठर स्टोर में लड़कियों के लिए, उनके माहवारी पैड के लिए रख दिया गया। बासमती को छाँट का वह गट्ठर दिखलाकर जब मैंने उसे पूरी बात बतलायी तो वह बहुत हँसी। हँसी रुकने के बाद उसने कहा, "अब उस काम के लिए आपको धोती नहीं फाड़ना पड़ेगा।" रासबती जानना चाहती थी कि किस बात पर हम दोनों इतना हँस रहे थे। बासमती ने उसे कान में बता दिया। असली बात जानकर रासबती इतना हँसी कि सभी बच्चे भी हँसते–हँसते लोटपोट हो गए।

हम लोग आधा–पौन घंटा जब तक वहाँ आए लोगों से बतियाते रहे तब तक दोनों लड़कियों ने ओढ़नी तैयार कर लिया। मैंने दोनों लड़कियों को ओढ़नी पकड़कर तानने और दिखलाने को कहा। मैं भी पहली बार ही बासमती के गोदना–चित्र से फैशन वस्त्र तैयार होता देख रहा था। मेरा भविष्य अब मेरे सामने मुस्कुरा रहा था। वहां उपस्थित लोग पहली बार ऐसा वस्त्र देखकर आश्चर्य–चकित थे। उनके बीच रहनेवाली बच्चियों ने वह फैशन वस्त्र तैयार किया था। मैंने दोनों लड़कियों से ओढ़नी लेकर बासमती की देह पर डाल दिया। बासमती ने ओढ़नी को किसी सपने की तरह देह से लिपटा लिया। अपनी ही देह की छापवाली ओढ़नी में लिपटी बासमती किसी राजरानी से अधिक अलंकृत लग रही थी। इस रूप में उसे देखकर बच्चे खुशी से ताली बजाने लगे। बच्चों के माता–पिता भी चमत्कृत थे। अब मैंने बासमती के दोनों हाथों पर बने गोदना के चित्र बच्चों को दिखलाया और लोगों को बतलाया कि गांव–देहातों के समाज में सुरक्षित हमारी लोक–कलाएँ किस तरह वंचित समुदायों की शिक्षा और आजीविका के साधन बन सकती हैं। मुझे अब बच्चों को उनके काम के एवज में रुपए देने थे। उस समय मेरे पास पर्याप्त रुपए नहीं थे लेकिन कुछ तो देना ही था। मैंने दोनों लड़कियों को एक सौ रुपए दिया। उन दोनों ने सबों के पैर छुआ। पढ़ाइ के साथ कमाई का यह उदाहरण सबों के लिए चमत्कारी था। दोनों लड़कियों ने आपस में विचारकर हमें बताया कि पचास रुपए वह दोनों आपस में बाँट लेगी और शेष पचास रुपए बाँकी सभी बच्चों में वितरित कर देगी। यह और भी बड़ी बात थी। इस बात पर एक बार फिर तालियां बजीं। हम सभी बहुत प्रसन्न थे। आखिर वहां से हम लोग विदा होकर बाजार की तरफ बढ़े। विचार हुआ कि किसी होटल में भोजन कर लिया जाए। इस क्रम में एक और बात सामने आयी। बासमती शाकाहारी हो गयी थी।

होटल में भोजन करने के बाद घर के लिए विदा होते हम तीनों अपने–अपने ढंग से बहुत प्रसन्न थे। बासमती और मेरी प्रसन्नता के कारण तो स्वाभाविक ही थे, रासबती इसलिए बहुत खुश थी क्योंकि वह अपनी बहन को लगभग तीन वर्षों के बाद फिर से पुरानी मनस्थिति में लौटी देख रही थी। रासबती ने मुझे बताया था कि वह उस लंबी अवधि में हँसने–बोलने और हरदम चहकते रहने की बात बिलकुल भूल चुकी थी। लेकिन रासबती की एक गुप्त इच्छा भी थी। कहीं न कहीं वह यह समझती थी कि हम दोनों ने जिस कठोर परहेज को अपनी दोस्ती का नियम बनाया था, उस परहेज के कारण भी बासमती का मन गड़बड़ाया। हो सकता है, रासबती ठीक समझती हो। रासबती चाहती थी कि हम दोनों उस परहेज का समापन समागम से करें , इसके बाद ही बासमती अपने वैवाहिक जीवन में सुखी रह सकेगी। मैं यद्यपि कि रासबती के मन की चाल समझ रहा था लेकिन बासमती उस समय भी मेरे लिए अबूझ ही थी। मैं उसकी गरिमा से किसी प्रकार का खिलवाड़ नहीं करना चाहता था। मेरे निवास पर दो कमरे थे। एक में मैं स्वयं सोता था और स्वयं खाना बनाता था। दूसरा कमरा अतिथियों के लिए सुसज्जित था। घर आकर मैंने दोनों बहनों को उनका कमरा दिखला दिया और अपनी सेज पर आ गया। कुछ देर में रासबती और बासमती भी वहाँ आ गयी। मैंने दोनों को बैठाया। कुछ देर तक रासबती साक्षरता केन्द्रों की बात करती रही। फिर उसने

बात पलट दी। उसने कहा, "...... माट्साएब, इस लड़की को समझाइए कि इसका जीवन कैसे चलेगा ...... आपके साथ यह जिस परहेज से रहती थी वही परहेज यह अपने पति के साथ भी करती रहेगी तो कैसे चलेगा?" इतना बोलकर रासबती रुकी नहीं, चली गयी। मैंने बासमती को हाथ पकड़कर अपने पास बैठा लिया। मेरे बिछावन पर **"गोदना चित्रकला"** की बाइंडिंग की हुई पुस्तक थी जिसके सभी चित्र बासमती ने स्वयं तैयार किया था, अपने शरीर से उतरवाकर। उस पर लेखक के रुप में लिखा था, बासमती। मैंने पुस्तक उसके हाथ में रखते हुए कहा, "इस पुस्तक को आपकी संतान समझकर मैं अपने हृदय से लगाए रखूंगा और जैसे–जैसे मेरा ज्ञान बढ़ेगा, इसके अर्थ लिखते जाउंगा ......।"

अपने शरीर के मंथन से जनमे उन फूलों को एकत्रित देखकर मंत्रमुग्ध–सी एक टक देखती बासमती ने उसके पन्नों को पलटकर इधर–उधर देखा और कहा, "संतान किसी एक आदमी से जन्म नहीं ले लेती है ...... यह अकेले मेरी संतान नहीं है ...... आप नहीं होते तो मैं इस संतान को जन्म नहीं दे पाती। यह मेरी और आपकी, दोनों की बच्ची है ...... मेरी–आपकी दोस्ती की पैदावार ...... अब आपको इसका पालन करना है और इससे काम लेना है। अब आप इसमें चित्र के माने–मतलब लिखेंगे और लोगों को सिखाएंगे। मैं इसके बारे में जितना जो कुछ जानती थी, वह सब आपको पहले ही बता दिया। आप बिदमान आदमी हैं। अब इसमें जो कमी है सो आप जरुर पूरा कर दीजिएगा। ...... आपने मुझे सब कुछ दिखला दिया। इन चित्रों से कमाई कैसे हो सकती है सो भी मैंने देख ही लिया है। अब और कुछ देखना बांकी नहीं रहा। अब आपसे एक ही विनती है ...... पुस्तक के लेखक के रूप में आप मुझे अकेला नहीं छोड़िये, मेरे साथ अपना नाम भी जोड़ लीजिए ......ऐसा ही तय हुआ था। बस ...... और क्या कहूँ ......?" इतनी बात बोलकर वह अनोखे ढंग से मुसकियाई। उसके उस मुस्कान का मतलब तो मैं समझ नहीं सका लेकिन इसके साथ ही उसके मुंह पर वही पुरानी आभा जरूर लौट आयी।

आज जब करीब बेयालिस वर्षों के बाद उन घटनाओं को लिपिबद्ध करने का साहस कर रहा हूं तो किसी याद आयी बात को छिपाना किसी रूप में उचित नहीं होगा। उस रात हम दोनों तीन बरस के बाद एकांत कमरे में मिल रहे थे। एक समय था जब हम कठोर बंदिशों के साथ देह के मंथन में लगे हुए थे। मेरा ख्याल है कि उसके मानसिक रोग के मूल में एक तो उसके पूर्व पति के नसबंदी शिविर से फरार होने के कारण एकाएक उसका गांव जाना और मुझसे अलग होना भी रहा होगा, लेकिन देह से गोदना उतारने के अंतिम चरण में वह दग्ध हो गयी थी यह मैंने जरूर अनुभव किया था। अब जब फिर से भेंट हुई तो हमारे पास बात करने के लिए बहुत कुछ था मगर लगता था जैसे समय के अंतराल के साथ उसके मस्तिष्क से सब कुछ गायब हो गया था। मेरे पास सटकर बैठी वह बिलकुल अन्यमनस्क लग रही थी। कुछ देर तक हम दोनों चुप रहे। मुझे नहीं रहा गया। मैंने कहा, "आप पहले से बहुत बदल गयी हैं ......।" उसने मेरी ओर बिना ताके ही कहा, "बदल नही गयी हूं ...... पहले से जादा बढ़ गयी हूं। अब मेरा मन पहले से जादा कुछ चाहने लगा है जो इस जनम में मुझे नहीं मिल सकता है ...... काहे कि विवाह ही औरतों की आखरी हद कही गयी है और मेरा विवाह हो गया है। आपने मुझे बहुत कुछ दिया। इस जनम में अब बसमतिया को और कुछ नहीं चाहिए, बहुत लंबी जिनगी भी नहीं। मैं आपके साथ काम करते हुए जिनगी भर साथ रहना चाहती थी सो नहीं होगा, लेकिन अगर यह गोदना सत है ...... यदि गोदना का बनसप्तो सत है तो अगले जनम में मेरी इच्छा जरूर पूरी होगी।" उसने एक बार सिर उठाकर मेरी ओर गहरी नजर से ताका। उसकी आँख की

वह झिलमिलाहट पता नहीं कैसे मेरी कोख में समा गयी जो आज तक भुलाए नहीं भूलती है। वह चुपचाप उठी और कमरे से निकल गयी।

सुबह में मैं कुछ देर से उठा। तब तक दोनों बहन नहा–धोकर तैयार थी। मैं भी तैयार हुआ। विचार हुआ कि बोधगया चला जाए। उन दिनों शायद वहाँ कोई खास उत्सव चल रहा था। दुनिया भर के हजारों लोग इधर–उधर घूम रहे थे। हम लोग कभी घूमते थे और कभी थककर बैठ जाते थे। मैं उन दोनों को 'समन्वय आश्रम' भी ले गया। शाम होते–होते सब कोई गया वापस आ गए। दिन भर तरह–तरह की इतनी चीजें हमने खा ली थी कि फिर से खाने की जरूरत नहीं थी। अगले दिन बासमती के पति भी कुटमैती से वापस आ गए। वह बहुत नम्र और व्यावहारिक व्यक्ति लगे। बासमती की मानसिक स्थिति को जानते हुए भी उन्होंने उससे शादी की और पिछले तीन महीने से एक मित्र की तरह वह उसका परिरक्षण करते आ रहे थे। मैंने इस सबके लिए उनका धन्यवाद किया। मैंने बासमती के गीत, चित्र और सामाजिक संवेदना के विषय में भी उन्हें अवगत कराया। मैंनें शुभकामना देते हुए आश्वासन दिया कि बासमती उनके दाम्पत्य जीवन को सुखी रखने और परिवार को सम्हालने का दायित्व अवश्य पूरा करेगी। अगली सुबह रासबती ने मुझे बताया कि पिछली रात बासमती अपने पति के साथ पहली बार सुखपूर्वक रही। वे तीनों अगले तीन दिन तक हमारे साथ रहे। अब उनकी विदाई का समय आया। मैंने अपना निश्चय उन्हें सुनाया, अब अपना काम शुरू करूँगा, दरभंगा में। मैंने अपने घर का पता लिखकर बासमती को दे दिया और सबों के साथ चाय पीते हुए आदेश के स्वर में उससे कहा, "आप लोग खुशी के साथ अब अपने–अपने घर जाइए, परिवार को बढ़ाने और पालन करने में लगिए और बच्चा होने पर मेरी संस्था में बरहेता आकर मिलिए।" बासमती दलितों की वाणी बनेगी। अपने समाज के लिए अभी उसे बहुत कुछ करना है। उसके चेहरे पर एक छाँह आती थी और एक जाती थी। धूप–छाँह की उस बिच्छित्ति के साथ एक बार उसकी नजर मेरी नजर से मिली और वह मेरे चरण छूकर आगे बढ़ गयी।

मैंने 1965 में सामाजिक काम शुरू किया, अपने गाँव बरहेता में, जब मैं केवल सोलह वर्षों का था। उस समय से 1980 तक, पंद्रह वर्षों की अवधि में मैं दलितों, पिछड़ों और बड़ी जातियों की सामाजिक–सांस्कृतिक और आर्थिक हालातों को समझने का प्रयास करता रहा। इस दौरान अनेक प्रकार की कठिनाइयों को सहते हुए मैंने अपना अभियान जारी रखा, लेकिन सही तौर पर मेरे कार्यकर्ता–चरित्र का विकास सतीश–गिरिजा के साथ हुआ। उनकी कार्यपद्धति से मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला। सतीश–गिरिजा के साथ तत्कालीन बिहार की स्वयंसेवी संस्थाओं का बड़ा समूह जुड़ा हुआ था। वहाँ मैं अपने अनुभवों को बाँटने और क्रियाशील समूहों के क्षेत्र में जाकर उनके कार्यक्रम को एक दिशा देने के काम में हमेशा तत्पर रहता था, लेकिन मैं यह बहुत पहले निश्चित कर चुका था कि एक समय मुझे स्वयं संस्था बनाकर काम करना है। मैं जब सतीश–गिरिजा के साथ काम कर रहा था उसी समय ऑक्सफैम (यूके) के क्षेत्रीय निदेशक, आलोक मुखोपाध्याय ने मुझे अपने कलकत्ता स्थित कार्यालय में मिलने का निमंत्रण दिया। मैंने उनसे मिलकर भविष्य की अपनी योजना बतलायी। उस समय से आलोक जी ने मुझे बहुत कुछ सिखाया और आगे चलकर आर्थिक सहायता भी दी, लेकिन उन्हीं ने यह भी सिखाया कि विदेशी सहायता दोधारी तलवार होती है। मेरे अब तक के परम मित्र श्री दिनेश कुमार मिश्र से मेरी पहली भेंट उन्हीं दिनों ऑक्सफैम में हुई थी। उन दिनों वे ऑक्सफैम के कंसल्टेंट हुआ करते थे। डी के मिश्रा के नाम से मशहूर हमारे मित्र भूपटल–अभियंता, वैज्ञानिक और 'बाढ़–नदी–बांध' विषय पर लिखने वाले अग्रणी लेखक हैं। नदियों और बांधों के चरित्र को जानने वाला ऐसा भगीरथ मैंने दूसरा नहीं देखा।

आलोक मुखोपाध्याय और दिनेश मिश्र से मेरे परिचय का मार्ग संस्थाओं के एक बड़े समूह की ओर बढ़ा जिसके केंद्र में विकासभाई थे। विकासभाई महाराष्ट्र के थे लेकिन बनारस में रहते थे। उनकी अपनी कोई संस्था नहीं थी, वे स्वयं अपने आप में एक बड़ी संस्था थे। उन्होंने विवाह नहीं किया था, लेकिन उनकी महिला–मित्र थीं। वे रात–दिन काम करते थे, दूसरों के लिए, संस्थाओं के लिए, लोकहित में लगी संस्थाओं के संवर्द्धन के लिए और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने के लिए। सामाजिक कार्य में लगे कार्यकर्ताओं के बौद्धिक विकास के लिए वे समय–समय पर शिविरों का आयोजन करते थे, कभी मधुपुर (झारखंड) में, कभी सेवापुरी (बनारस–इलाहाबाद मार्ग पर) में तो कभी और कहीं। पाँच–छः दिनों के इन शिविरों में देश के विभिन्न भागों से विभिन्न विषयों के अनुभवी लोग और कार्यकर्ता आते थे, अपने अनुभव बाँटते थे। दिनेशजी और मैं वक्ताओं की बात को लिखते चला जाता था और एक मोटे रिपोर्ट के रूप में लिखकर साइक्लोस्टाइल करते थे, लोगों के पते पर भेज देते थे। दिनेशजी मुझसे तेज लिखते थे। इन शिविरों से सहभागियों की बौद्धिक क्षमता और सामाजिक प्रवृत्तियों की जानकारी तो बढ़ती ही थी, उनका आपसी संबंध भी मजबूत होता था। 1982 की गर्मियों में ऐसा ही एक शिविर मधुपुर में आयोजित हुआ। उस समय तक मैं तो बहुत लोगों से परिचित हो चुका था, लेकिन मेरी पत्नी पहली बार घर से निकलकर खुले विचारों वाले उस बड़े परिवार में शामिल हुई थी। उनका मूल नाम तो कौशल्या देवी है मगर मैंने उन्हें नया नाम दिया, शिवा। मधुपुर शिविर में वह शिवा कश्यप नाम से लोगों के साथ परिचित हुई।

मधुपुर शिविर में जाने से पहले हम अपने यहाँ काम शुरू कर चुके थे। मैं और मेरी पत्नी ने आठ–दस लड़कियों के साथ मिथिला चित्रकला का विद्यालय चलाना शुरू तो कर दिया था लेकिन हमारे

साथ समस्याओं का जंजाल लगा हुआ था। उस समय तक मिथिला में लड़कियों–औरतों के लिए ऐसा कोई काम चलाना अपराध था जिसका मकसद बदलाव हो। इस समस्या का हल शशिबाला के पिता उग्र नारायण जी ने निकाला। उन्होंने कहा, आप किसी को बहुत बात नहीं बतलाइए, बस इतना कहिए कि लड़कियों को चित्र बनाना सिखाएंगे। उन्होंने विचार दिया कि मैं अपनी पत्नी द्वारा बनाए पेंटिंग लेकर लोगों के घरों में दिखलाऊँ और महिलाओं से कहूँ कि अगर वे सीखना चाहती हैं तो हमारे स्कुल में बिना फीस दिए सीख सकती हैं। मैंने ऐसा ही किया। नवम्बर 1982, छठ पर्व के अगले दिन, मैं और उग्र नारायण जी ने गाँव के कायस्थ टोला में घर–घर जाकर महिलाओं को पेंटिंग दिखलाया। कुछ महिलाओं ने अपनी लड़कियाँ भेजना मंजूर किया, कुछ ने कहा, इसके बाबू बिगड़ेंगे। उग्र नारायण जी ने तत्काल अपनी चार बेटियाँ विद्यालय में भेजकर काम चालू करा दिया। विद्यालय का श्रीगणेश शशिबाला चार बहनों के अलावा विभा नाम की एक और लड़की से हुआ, जो शिवा के साथ पहले से काम में लगी हुई थी। पाँच लड़कियों की संख्या हमारे लिए शुभ हुई। उन पाँचों को देखकर और लड़कियाँ आने लगीं, लेकिन हमारे पास कक्षा के नाम पर कोई कमरा नहीं था। हमारे पास एक ही कमरे का छोटा सा घर था जिसमें हमारा पूरा परिवार रहता था। मैं बोधगया में काम कर चुका था। मैं जानता था कि विष्णु के दस अवतारों में एक, भगवान बुद्ध को बोधिवृक्ष के नीचे ही ज्ञान की प्राप्ति हुई थी और पीपल का वह वृक्ष पूरे संसार के लिए विद्यालय बन गया। मेरे घर के निकट एक बेल का वृक्ष था, जवान और छतनार। मैंने उसी बेल–वृक्ष के नीचे कक्षा लगाना प्रारंभ कर दिया। वृक्ष के नीचे विद्यालय तो प्रारंभ हो गया, लड़कियों की संख्या भी बढ़ने लगी, उसी जगह काम करते महीना दिन बीत गया, किंतु दिसंबर की सितलहरी का सामना हम नहीं कर सकते थे। घनघोर सीतलहर में वहाँ बैठना इसलिए भी कठिन था क्योंकि पत्तों से टपकते पाला की बूँदें कागज पर गिरकर चित्र के रंग फैला देती थी, सब कुछ गीला हो जाता था। हमारे पास झोपड़ी खड़ी करने लायक रुपए नहीं थे। आखिर हम लड़कियों को अपने कमरे में बैठाने लगे। करीब तीन माह बाद मौसम बदल गया। होली के बाद मैंने अपने बाँस की बीट से आठ–दस बाँस काटे, उसे छील–काटकर फट्ठे बनाया, बत्ती बनाया, पत्तेदार करची को फट्ठों के ढाँचे पर घास–फूस की तरह बिछा दिया और घर की दीवार से लगाकर खुट्टों पर एकचारी खड़ा कर दिया। अब हम एक छत के नीचे तो थे लेकिन दुख भी साथ–साथ ही जनम रहे थे। अप्रील की गरमी में बाँस के पत्ते सूखकर झड़ गए। अब छत के नाम पर करची का ठट्ठर भर कंकाल की तरह बच गया था जिसमें धूप रोकने की ताकत नहीं थी। लड़कियाँ धूप में छटपटा जाती थीं। उनके चेहरे लाल हो जाते थे। यह सब देखकर एक दिन मैं बहुत दुखी था। मन में आया, विद्यालय नहीं चल पाएगा। लड़कियाँ समझ गयीं। उनका मन लग गया था। वे स्कुल बंद नहीं करना चाहती थीं। उनके बीच में खुसुर–फुसुर चलने लगा। शशिबाला मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। वह कुछ बोल नहीं रही थी लेकिन उसकी बड़ी–बड़ी आँखों में जैसे बासमती समा गयी थी। मैं उसे देखता रहा। समीज–सलवार पहनी उस लड़की ने एक हाथ कमर पर टिकाते हुए कहा, "दो–तीन मीटर पन्नी (प्लास्टिक शीट) ले आइए न..... अभी उसीसे हो जाएगा..... ।" उसके बोल ने मुझे जिंदा कर दिया। मुझे लगा, फिर एक बार बासमती मिल गयी है। अब डर काहे का! मैं उसी दिन बाजार से पाँच मीटर प्लास्टिक ले आया और किसी तरह उसे ठठरी पर फैलाकर जगह को छायेदार कर लिया। अब लड़कियाँ धूप में तपती नहीं थी, लेकिन इस सुविधा के लिए मुझे हमेशा सतर्क रहना पड़ता था। गर्मी के मौसम की तेज हवा और धुक्कड़ में प्लास्टिक की छत फटकर केले के पत्ते की तरह चिड़ीचोंत हो जाती थी। फिर नई पन्नी लगाना पड़ता था। मेरे पास इतने पैसे भी नहीं थे कि बार–बार चालिस–पचास रुपए की प्लास्टिक खरीद पाता लेकिन चलना तो ऐसे ही था। लाख परेशानियों में रहता था मगर लड़कियों के मुँह

देखकर हिम्मत बढ़ जाती थी। सोचता था, एक दिन यही लड़कियाँ लक्ष्मी बनकर हालात को बदल देंगी। किसी तरह समय कट रहा था, लेकिन उसके साथ ही मौसम भी बदल रहा था। गरमियों के बाद अब बरसात का मौसम शुरू हो गया। मैंने छप्पर की ठठरी बचाने के लिए प्लास्टिक की एक तह ठठरी के ऊपर और एक तह नीचे देकर उसे बाँस की बत्ती से चाँपकर जगह–जगह गिरह लगा दी। इस तरीके से प्लास्टिक वर्षा के झकोरा से उड़ता तो नहीं था मगर तेज बारिस में पानी टाँके की छेद होकर दूसरे तह वाली प्लास्टिक में जमा हो जाता था। पानी से भरे उस प्लस्टिक को लड़कियाँ हाथ खड़े कर थामे रहती थीं, जब तक पानी बरसता था और दूसरी ओर पानी गिराती रहती थी। ऐसी ही एक बरसात में लड़कियाँ छत को थामे खड़ी थीं फिर भी जहाँ–तहाँ प्लास्टिक फाड़कर पानी गिर रहा था। सभी लड़कियाँ सराबोर हो गयी थीं मगर हाथ नीचे नहीं कर रही थीं। उनकी दुर्दशा देखकर मुझे रहा नहीं गया, मैं रोने लगा। कहते हैं, हारे को हरि नाम। दुख की उस घड़ी में मैंने गोबरधनधारी कृष्ण को याद किया। 'हे कृष्ण, यह गोबरधन उठाने की ताकत हममें नहीं है; अब तो डूबन लागे!' सुख का समय लोगों को याद नहीं रहता है मगर दुख के दिन भुलाए नहीं भुलाते हैं। जब भी वर्षा होती थी, कुछ लड़कियाँ छत को थामे रहती थीं और कुछ लड़कियाँ कीचड़ हो रही जमीन को लीपती रहती थीं। ऐसे ही समय कट रहा था। मार्च, 1983 में एक दिन विकासभाई आ गए। हमारे पास कुरसी तो नहीं थी, एक टूटी चौकी के दो तखतों के नीचे से कुछ ईंट रखकर बैठकी बना लिया था। उसी पर उन्हें बैठाया। विकासभाई काफी मोटे थे। हाफ पैंट और गोलगला गंजी पहनते थे। उनकी घनी लंबी दाढ़ी और लंबे घुंघराले बाल किसी योगी की छवि बनकर मन को देखते ही सुख देते थे। लड़कियों का काम देखकर वह बहुत खुश हुए। जाते समय विकासभाई ने दस हजार रुपए दिया। अब हमारे दिन बहुरने वाले थे। उन रुपयों से हमने ढंग का छप्पर बना लिया, एक आलमारी खरीद ली और जगह को टाटी लगाकर घेर लिया। कुछ रुपए बचाकर रंग, ब्रस, निब, होल्डर, हैंडमेड पेपर और कपड़े खरीद लिया। मेरे जैसे फक्कड़ कार्यकर्ता को इतना कुछ मिल जाना उसके हौसलों का जी जाना होता है। 15 जून, 1983 के दिन यह विद्यालय **"भारती विकास मंच"** नाम से बिहार सरकार के साथ निबंधित हुआ। आगे चलकर, 1985 में ऑक्सफैम ने फूस–फास और टाटी की जगह पक्का मकान बनाने के लिए साठ हजार रुपयों की सहायता दी। हमारे मित्र दिनेश जी ने इस भवन का नक्शा बनाया था।

सन 1983 के मधुपुर सम्मेलन में मैंने अपने प्रयोगों और भविष्य की योजना की रूपरेखा रखी थी। हम समाज के सभी वर्ग की स्त्रियों के लिए लोक–कलाओं पर आधारित **'शिक्षा और रोजगार'** का एक ऐसा कार्यक्रम चलाना चाहते थे जो आत्मनिर्भरता के अलावा सामाजिक रूप से उनका सशक्तिकरण करे। मैंने सहभागियों को बताया कि मधुबनी में 'मधुबनी पेंटिंग' कहकर जिस कला–परंपरा को भारत सरकार प्रोत्साहित करती रही है वह वस्तुतः पूरी मिथिला की थाती है। इस कला–शैली में कोई लिखित शिक्षण विधि नहीं होने के कारण केवल परंपरागत चित्र बनते थे और उस समय तक उपयोगिता–आधारित उत्पादन–पद्धति विकसित नहीं हुई थी। इसका प्रशिक्षण पारंपरिक होने के कारण कला का ज्ञान भी जाति–विशेष के परिवारों तक ही सीमित था। मैंने प्रस्ताव किया कि यदि इसमें प्रशिक्षण की पुस्तकें उपलब्ध हो जाएँ और उपयोगिता–आधारित वस्तुओं का उत्पादन शुरू हो जाए तो उस उद्योग में हजारों स्त्रियों का समावेश हो सकता था। इसका बाजार भी बहुत व्यापक होगा। मैं अपने साथ छात्राओं द्वारा बनाए ढेर सारे ग्रीटिंगकार्ड, गया में लड़कियों द्वारा बनाए टेबुलमैट, कुशन कवर, दुपट्टा और शिवा के पेंटिंग भी ले गया था। इन सामग्रियों के साथ मैंने उनका आधार स्रोत, "गोदना–चित्रकला" की हस्तलिखित पुस्तक भी ले गया था। बासमती की देह से उतरे

उन गोदना–प्रतीकों की रचना की कथा सुनकर लोग अचंभित थे। उस सम्मेलन में भारत की बड़ी–बड़ी संस्थाओं से लोग आए थे। मैंने बताया कि हमारे पास पूँजी नहीं है जो कपड़े और रंग खरीदें, साथ ही अभी इन सामानों का बाजार भी नहीं है कि हम इसे बेच सकें। इसलिए यदि इच्छुक लोग हमे ऑर्डर देकर सामान बनवाएँ तो कुछ समय बाद इस तरह के सामानों का चलन हो जाएगा, बाजार भी बन जाएगा। लोगों ने हम पर भरोसा किया। सम्मेलन में आए लोगों ने हमारे सामान भी खरीद लिए। अहमदाबाद की इलाबेन भट्ट ने हमें खादी कपड़े पर दो साड़ियाँ बनाने का ऑर्डर दिया। सेवापुरी से लौटे सात–आठ दिन हुए थे कि तभी मेरे नाम से एक पार्सल आया। इलाबेन ने ऑर्डर के कपड़े भेज दिया था। अगले पंद्रह–बीस दिनों में शिवा ने दोनों साड़ियाँ तैयार कर दी। साड़ी बनाने में कुछ सहायता मैंने और कुछ काम विभा ने किया था। हमारा पार्सल पाकर इलाबेन बहुत खुश हुई। उन्होंने कई लोगों को हमारे बारे में बताया। अब हमारे पास धड़ाधड़ काम का ऑर्डर आने लगा। लोग अपनी पसंद के कपड़े भेजते थे। बिना पूँजी के हमारा उद्योग चल निकला। समझदार लड़कियाँ शिवा के मूल स्केच में कचनी और रंगनी करती थीं। शशिबाला और उसकी बहनें अपने परिवार से ही बहुत कुछ सीखकर आयी थीं, इसलिए उन लडकियों ने काम को बखूबी सम्हाल लिया। सबों के पारिश्रमिक का अंश तय हो गया; काम करनेवाली छात्राओं को लाभ का साठ प्रतिशत और संस्था को चालीस प्रतिशत। देखते–देखते हमारे विद्यालय की प्रशंसा गाँव–गाँव में पसरने लगी। हमारे विद्यालय में अब सभी लड़कियाँ आना चाहती थीं, लेकिन उनमें से बहुत कोई इसलिए नहीं आ पाती थीं क्योंकि उनके पास घर से बाहर जाने लायक कपड़े नहीं थे। मैंने एक बड़ी बैठक में दिल्ली–बंबई जैसे महानगरों से आए सहभागियों से कहा कि वे हमें लोगों से छोड़े गए कपड़े, उतरन जमा करने में मदद करें। लोगों ने मेरी सुनी। कुछ दिन बाद ढेर सारे कपड़े आने लगे। अब लड़कियों को शर्मिंदा होने की जरूरत नहीं थी।

मैंने भूख और जीवन की मूलभूत सुविधाओं के अभाव को बहुत नजदीक से अनुभव किया, लेकिन कभी उसे व्यक्तिगत जीवन तक सीमित नहीं रखा। जब भी मेरे सामने ऐसी परिस्थिति आयी, मैंने यही सोचा कि बहुत लोगों के साथ ऐसा हो रहा होगा; कितने दुख में हैं लोग! छोटे बच्चे भूख से बिलबिला जाते होंगे; उनकी माँ को यह देखकर कितना दुख होता होगा! मैं मानता हूं कि ईश्वर ने मेरे मन में ऐसी सोच उपजाकर मेरा बहुत भला किया। दूसरों के दुख से तुलना करने पर अपना दुख बहुत छोटा दिखने लगता है। इसका एक फायदा और होता है; आप दूसरों का दुख दूर करने के लिए प्रेरित होते हैं, और अपने प्रयास में थोड़ा भी सफल हुए तो उससे आपको बेहिसाब खुशी मिलती है। यह एक अदना, नाचीज लोगों की सफलता की खुशी होती है। असल में इस खुशी की जड़ में उस व्यक्ति की यह समझदारी काम करती है कि भले वह सफल हो गया हो, महज मामूली उसकी औकात से यह होने वाला नहीं था। यह समझदारी उसे विनम्र बनाती है और वह दूसरे लोगों को सफलता का कारक मानकर उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है। यह प्रवृत्ति उसे और अधिक सफलता की ओर ले जाती है।

मेरे अपने घर की हालत बहुत बुरी थी। पिताजी अक्तूबर, 1980 में गुजर गए थे। उनकी दैनिक आमदनी पर ही घर चलता था। आमदनी भी महज इतनी कि किसी तरह पाँच प्राणियों का पेट भर जाए। छुट्टी के दिनों में अकसर फाकाकशी ही होती थी। मेरी दो बेटियों के बाद पत्नी के पेट में बेटा पल रहा था। उसे उस समय अच्छा भोजन चाहिए था मगर कामचलाऊ खाना भी पेट भर नहीं मिल पाता था। पिताजी की मृत्यु के छः महीने बाद, मार्च, 1981 में मेरा बेटा जन्मा जब उसकी माँ दो दिनों से भूखी थी। मैं उन दिनों सतीश–गिरिजा के साथ चौपारन (गया) में काम कर रहा था। मेरा वेतन शायद तीन सौ रुपए था। बिहार की

संस्थाओं में ऐसा ही चलन था। संस्थाओं के मालिक–मुखतार तो मजे में रहते थे, लाखों का बजट बनाकर विदेशी फंडिंग एजेंसियों से अनुदान लेते थे, समाज से गरीबी, निरक्षरता, रोग दूर करने के नाम पर बजट में भारी प्रावधान रखते थे, लेकिन कार्यकर्ताओं को कामचलाऊ वेतन देने को भी वे तैयार नहीं होते थे। इस रवैया के पीछे संस्था वालों की क्या सोच थी, मैं ठीक–ठीक नहीं बता सकता हूँ। हो सकता है, वे सोचते रहे हों कि यदि कोई आदमी समाज–सेवा करना चाहता है तो उसे मितव्ययी होना ही चाहिए, उनके जैसे ही जीना चाहिए जिनके लिए वे काम करते हैं। किसी ने बताया था कि इस सोच के पीछे यह भाव काम करता था कि सामाजिक कार्यकर्ता असल में नौकरी नहीं करते हैं, वे स्वयंसेवक होते हैं, वॉलंटियर। वे बिना किसी पुरस्कार की कामना किए अपनी इच्छा से समाज–सेवा में आए हैं, तो फिर उनके वेतन के मद में उचित और कम के प्रश्न ही नहीं उठने चाहिए। संस्था वालों की सोच के कारण विदेशी फंडिंग एजेंसियों का रवैया भी वैसा ही था; वे कम वेतन के मुद्दे पर कभी सवाल नहीं करते थे। यह रवैया घातक था।

मैं लाख दुखों का सामना करते हुए भी खुश रहता था। दिल्ली में बच्चों के लिए काम करने से लेकर अब तक की तमाम छोटी–छोटी सफलताओं को भी मैं अपने स्वभाव के कारण बड़ी उपलब्धि मानता था और ऐसी हर उपलब्धि का श्रेय मैं बासमती को देता था। उसके बारे में आज भी जब मैं सोचता हूँ तो मेरी हर सोच के आगे वह दलित स्त्री कहीं और अधिक गरीयसी दिखती है। यह वही थी जिसने मुझे इस लायक बनाया कि मैं इतनी सारी खुशियाँ बटोर सकूँ। वह जानती थी कि मेरी नजर पाक–साफ नहीं थी, मैं उसके अंगों के बारे में कई तरह की काव्यात्मक बातें सोचता रहता था। अच्छी बात यह थी कि मैं उसे बतला देता था और उस सोच के लिए अफसोस जाहिर करता था। वह यह कहकर टाल देती थी कि पढ़े–लिखे लोग ऐसा सोचते ही हैं। वह मानती थी कि मैं आदमी बुरा नहीं हूँ मगर मेरे मन पर बड़ी जाति के लोगों वाला प्रभाव है जो समझाने से ठीक हो जाएगा। उसे अपनी भौजाई को भभिछना के चंगुल से मुक्त कराना था, तबस्सुम से मरते समय मैंने जो वादा किया था लड़कियों को मजबूत बनाने का, वह वादा पूरा कराना था। एक दिन हम दोनों दरभंगा में भिखारी बच्चों की पढ़ाई का काम असफल होने पर चर्चा कर रहे थे। उसका कहना था कि औरतें यदि पढ़ाई और कमाइ करने लगें तो ऐसी समस्या पैदा ही नहीं होगी। यह मुझे उसी ने समझाया कि संसार के लिए अगर कुछ अच्छा करना चाहते हैं तो बस औरतों के लिए काम कीजिए; इसीसे बच्चे और बूढ़े, सबों के लिए काम हो जाएगा। वह कहीं दूर नहीं गयी थी, केवल गाँव–देहात की औरतों का दुख देखकर दुखी थी, और इसका एकमात्र इलाज वह उन्हें काम में लगाना मानती थी। वह कहती थी कि सभी औरत–मरद केवल खेती के काम में मजदूरी करने जाते हैं, इसीलिए मालिक कम पैसे देता है। औरतों के लिए दूसरे तरह का काम खड़ा होगा तो मरद लोगों की मजदूरी भी बढ़ जाएगी। वह जानती थी कि मधुबनी में दलित औरतें 'गोदना पेंटिंग' के काम में लग गयी थीं, इसीलिए वह अपने शरीर पर गुदे गोदना के भंडार को कागज पर उतरवाने, उसे पुस्तक का रूप देने और उस पुस्तक से औरतों को प्रशिक्षित करने की योजना लेकर चल रही थी। यह काम वह मेरे द्वारा करवाना चाहती थी मगर मैं उस भँवर में फँसना नहीं चाहता था, क्योंकि मैं अपने मन को जानता था। मैं जानबूझ कर ऐसे किसी काम में नहीं पड़ना चाहता था जिसमें गलती करके बासमती की नजर में गिर जाऊँ। उसे नानी ने सिखया था कि शादीसुदा औरत अगर किसी गैरमरद के साथ फँस जाती है तो उसके पति की आयु क्षीण हो जाती है। आयु क्षीण करने वाले कृत्य को वह मारने जैसा ही समझती थी। जिस पति का चेहरा–मोहरा भी उसे याद नहीं है, उस बेकसूर आदमी को वह क्यों मारे? वह ऐसा काम क्यों करेगी जिससे कोई आयु रहते मर जाए? वह हर

हाल में अक्षता रहना चाहती थी ताकि उसके अनदेखे पति का जीवन क्षीण नहीं हो, किंतु वह शरीर के अंतरंग भागों में बने गोदना की अनुकृति करवाने के लिए, देह उघाड़ने के लिए भी उतनी ही उतावली थी। मेरे साथ समस्या यह थी कि मैं देह की सीमा को लाँघकर इतने उदात्त भाव से काम करने लायक आदमी नहीं था, इसीलिए ऐसा काम करने को मैं तैयार नहीं हो रहा था। उसने मुझे समझाया, "सुंदरता देखने की चीज है.... फुलबारी के सुंदर फूल देखकर कोई क्या करता है.... उसे चबाने लग जाता है?.... नहीं न.... !" बहुत दिन बाद जाकर मैं उसकी बात का अर्थ फिर से समझ पाया जब दिनकर की 'उर्वशी' का मेरे पिताजी द्वारा किया मैथिली अनुवाद पढ़ा, "दृष्टि द्वारा पेय जे अछि, ओ न भोजन होय रक्तक।"

हमारी संस्था में काम बढ़ जाने के कारण मुझे छुट्टी नहीं होती थी कि जनकपुर जाकर बासमती की खोज–खबर लूँ। आखिर समय निकालना पड़ा। मैं बासमती को बताना चाहता था कि वह जैसा चाहती थी वैसा ही काम मैं खड़ा करता जा रहा था और धीरे–धीरे सफल भी हो रहा था। उसकी नजर में केवल 'गोदना चित्रकला' थी लेकिन संयोग अच्छा था कि हम एक साथ गोदना, मिथिला चित्रकला और परंपरागत कशीदा (सुजनी) लेकर चल रहे थे। जनकपुर में रासबती से भेंट हुई। उसने बहुत अच्छा समाचार बतलाया। बासमती ने नवंबर, 1981 में एक बेटी को जन्म दिया था। रासबती अपनी बहन की सहायता करने फिर कलकत्ता जाने वाली थी। मैंने बासमती के लिए दो पंक्ति की कविता लिखकर दी — "तू दलितों की वाणी, तू बेटी धरती की; उन्नत तेरा भाल, कुसुम–कलिका परती की।"



काम करने वाला आदमी जब दिल–दिमाग जोड़कर किसी काम में भिड़ता है तो काम भी काम सिखा देता है। हमारे यहाँ कई शहरों से ऑर्डर आने लगे थे। जैसे–जैसे काम बढ़ रहा था, 'पढ़ाई और कमाइ' की पद्धति भी अपने आप बनती जा रही थी। 1982 बीतते–बीतते छात्राओं की संख्या पचास से ऊपर हो गयी। पड़ोस के गाँवों अहिला, खराजपुर, ओझौल, बहादुरपुर और सैदनगर से सभी जाति–धर्म की लड़कियाँ आने लगीं। अब बहुत महिलाएँ भी शामिल हो गयी थीं। हमने पद्धति ऐसी बनायी थी कि छात्राएँ सीखती भी थीं और कार्यकर्ता की तरह जिम्मेवारी भी संभालती थीं। मैं छात्राओं की प्रतिभा का आकलन करके उन्हें उचित विभाग की जिम्मेवारी दे देता था। हमारे पास कई तरह के काम पैदा हो गए थे – नयी छात्राओं को प्राथमिक पाठ सिखाने का काम (चिन्ह, प्रतीक, चिन्हों के कामकाजी अभ्यास, रंगों का चुनाव, रंग भरने का अभ्यास) और जो छात्रा इतना भर सीख जाती थी उसे किसी सचढ़ छात्रा के साथ उत्पादन में लगा देना। जो लड़की थोड़ा–बहुत सीख गयी थी उनके लिए कई काम थे जैसे नयी छात्रा को काम में लगाने के लिए अभ्यास कराना, डिजाइन की कॉपी बनाना, काम का हिसाब रखना, तैयार सामानों का भंडारण करना, पैकेजिंग करना आदि। इन कामों के अलावा जो सबसे महत्वपूर्ण काम था वह था चित्रकला का मूल पाठ तैयार करना। इस काम में शिवा तो थी ही, नयी पीढ़ी की छात्राओं में शशिबाला और अनीता प्रमुख थी। डिजाइन और उत्पादन के साथ ही पुस्तक–निर्माण

का काम जुड़ा हुआ था। यहीं से शुरू हुआ गोदना–चित्र के साथ मिथिला–चित्र के विलयन का काम। इस विषय में सबसे ज्यादा शशिबाला ने काम किया। मैंने उसे पुस्तक विभाग में भी अपना सहयोगी बना लिया।

अक्तूबर, 1982 का एक व्यस्त दिन था जब हमारी मड़ैया के आगे एक रिक्शा रुका। एक लड़की मुझे बतलाने आयी। मैं निकलकर बाहर गया तो देखता ही रह गया। बासमती अपनी बहन रासबती और गोद में बच्ची को लेकर आयी थी। बच्ची उसे कलकत्ता में ही हुई थी मगर कुछ दिन पहले वह नैहर आ गयी थी। आज उसे वापस कलकत्ता जाना था। दरभंगा स्टेशन पर अपने एक आदमी को सामान के साथ बैठाकर मुझे बच्ची दिखलाने आयी थी। मैंने बच्ची को गोद में लिया तो बासमती बोली, "अभी तक इसका नाम नहीं रखाया है..... आप इसका नाम रख दीजिए, क अच्छर पर..... ।" मैंने उसकी ओर ताका। उसके नेत्र और ओठों पर फैली स्मिति ने मुझे सब कुछ बतला दिया। उसने कभी मेरा नाम नहीं लिया, लेकिन मेरे नाम के पहले अक्षर पर अपनी बच्ची का नाम रखवाना चाहती है। उसकी इच्छा जानकर मुझे उर्दू कविता की दो पंक्तियाँ याद आ गयीं, "सियाही आँख की हल कर, ये नामा तुझे मैं लिखती हूँ कि ता नामे को तू देखे, मेरी आँखें तुझे देखे।" उसकी बात से मैं निहाल हो गया। मैंने बच्ची के माथे पर हाथ फेरते हुए कहा, "इसका नाम कांतिमयी होगा..... इसे ऊँची शिक्षा दिलवाना.....।" अपनी आदत के मुताबिक बासमती ने नाम दुहराया, "कांतिमयी.....।" रासबती ने भी हँसते हुए कहा, "कांतिमयी .....।" मैंने बच्ची का मुँह छुआ। वह मुस्कुराकर कसमसाने लगी। मैंने बच्चा बासमती की गोद में डाल दिया।

बासमती को सब कुछ दिखलाने–समझाने में करीब दो घंटे लग गए। यह सब देखकर वह बहुत प्रसन्न थी। उसे वापस भी जाना था। जाते समय उसने कहा, "आपने मेरी इच्छा पूरी कर दी..... कुछ समय लगेगा लेकिन तबस्सुन की बात भी जरूर पूरी होगी..... अब मुझे एक ही काम करना है..... कांतिमयी को पढ़ाना–लिखाना है और आदमी बनाना है।" विदा होते समय उसने फिर मुझे बच्ची थमाया और झुककर मेरे पैर छुआ। जब वह रिक्शा पर बैठ गयी तो मैंने उसे बच्ची थमाया। उसने मेरी ओर ताका। उसकी बोझिल आँखों से लोर के ठोप मेरे हाथ पर गिर पड़े। यह अनमोल उपहार मेरी कोख में समा गया।

जनवरी, 1984 से हम महानगरों में लगने वाली कला–प्रदर्शनियों में भाग लेने लगे। पहली प्रदर्शनी दिल्ली में लगी। कलकत्ता के 'सर्व शांति आयोग' (साशा) और दिल्ली के 'दस्तकार' ने मिलकर यह प्रदर्शनी लगायी थी। इस में भाग लेने के लिए विकासभाई ने 'साशा' वालों से हमारी सिफारिश की थी। इसमें भाग लेने के लिए शिवा, शशिबाला और मैं गया। कला–प्रेमियों को पहली बार 'मधुबनी पेंटिंग' की जगह पर उपयोग में आने वाले छोटे से बड़े उपयोगी चित्रित वस्त्रों के साथ ही चटक रंगों वाले पेंटिंग भी मिल रहे थे। समग्र 'मिथिला–चित्रकला' का यह पहला वाह्य प्रदर्शन था। सफेद मलमल के कपड़े पर बने दुपट्टों पर ग्राहक टूट पड़े। दो दिन में ही सभी बिक गए। सामान थे कम लेकिन उनकी विविधता ग्राहकों को आकर्षित कर रही थी। हम ग्रीटिंगकार्ड, टेबुलमैट, कुशन कवर, टेबुल कवर, ओढ़नी, कुरते, जैकेट, साड़ियाँ और पेंटिंग ले गए थे। कमी थी तो सिर्फ रुपयों की। अगर हमारे पास रुपए होते तो सिल्क की, खासकर भागलपुर के तसर मिटीरियल पर साड़ियाँ बनाते। इस साड़ी के ग्राहक भी बहुत थे और इसमें बचत भी अधिक होती। हमारी दूसरी कमी थी ज्ञान की। अभी हम फैशन की दुनिया से एक तरह से अनजान थे। हमारी इस कमी को दूर करने के लिए आगे चलकर दस्तकार की लैला तैयबजी ने हमारी बहुत सहायता की। बंबई की सीता सितलवाड ने भी काफी कुछ सिखाया। बहरहाल, यह ऐसा काम था जो हमें काम करते हुए सीखना था।

ग्राहक भी अपनी पसंद की डिजाइन के बारे में सिखाते थे। हम तो बस इतने से ही खुश थे कि बाजार ने हमारी सोच को स्वीकार कर लिया था। असल में कला पर आधारित हमारी पद्धति,''पढ़ाई के साथ कमाई'' की बुनियाद ही इस बात पर टिकी थी कि थोड़ा–थोड़ा सीखते हुए भी कुछ न कुछ काम की चीज छात्रा बना ले और वह ऐसा हो कि बिक जाए। कुछ कला–मर्मज्ञों ने हमारे इस प्रयास की बहुत तीखी आलोचना की। आलोचना करने वालों में दो तरह के लोग थे। एक तो अपने को विशुद्ध 'कला–मर्मज्ञ' कहानेवाले लोग थे जिनका मानना था कि कला को इतनी सस्ती चीज के तौर पर पेश करना कला की तौहीन करना था। दूसरे वे लोग थे जो मिथिला चित्रकला को धार्मिक नजरिए से देखते थे। वह कहते थे कि हम मिथिला चित्र के साथ जुड़ी धार्मिक भावना पर चोट कर रहे थे; जिस सूर्य की वे उपासना करते थे, हम लोगों को पहनावे के तौर पर उस सूर्य को परोस रहे थे। बहस करने लायक जानकारी तो मेरे पास भी थी, लेकिन मैं कितनी जगह उलझता? मैं जानता था कि कला का उद्भव ही आदि मानव की दैनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए हुआ था। मैं तो बस इतना जानता था कि महानगरों में लोगों के पास पैसा है और उन्हें मन को सुख देने वाले साधन की जरूरत है। यदि हम ऐसा कुछ बना सके जो उनकी जेब से पैसे टान सकें तो पैसे का बहाव शहर से गाँव की तरफ होगा, जहाँ उसकी बहुत कमी है।

हमारे सामानों में चित्रित सामग्री के अलावा कशीदा से बने सामान भी शामिल हो गए थे। मिथिला की 'सुजनी' कला–जगत में एक खास चीज मानी जाती रही है। शहर में बैठे लोगों को कहाँ मिलेगा? इसके भी बहुत चाहने वाले थे। कशीदा के सामान शामिल करने से यह हुआ कि बड़ी आयु की महिलाओं को भी काम मिलने लगा, जिनके पास इस कला का ज्ञान शेष बचा था। हम चाहते थे कि कशीदा और पेंटिंग का एक साथ विलयन हो। इससे बाजार भी बढ़ेगा और नयी लड़कियों में इसे सीखने की चाहत भी बढ़ेगी। खैर, अभी बहुत कुछ देखना और सीखना बाँकी था।

पहली बार की प्रदर्शनी की सफलता ने हमारा हौसला तो बढ़ाया ही, हमारी पाठ–योजना को भी सही ठहराया। हम चाहते थे कि मजदूर वर्ग की जो लड़कियाँ छोटी आमदनी के लोभ में बकरी चराने, घास छीलने, लकड़ी चुनने जैसे काम में लग जाती थीं और स्कूल नहीं जा पाती थी, उनके लिए इस काम में जगह बने। वैसे भी हम यह मानते थे कि चित्रकला का पूर्ण ज्ञान होने में काफी समय लगता है, तब तक कोई छात्रा बिना आमदनी के कैसे रह सकती थी? इसी सोच के आधार पर हमने ऐसा पाठ्यक्रम बनाया कि जितना सीखा उतने ज्ञान से ही बनने वाला सामान तैयार कराते जाएँ। इससे क्रमिक रूप से उनका कौशल भी बढ़ेगा और आमदनी का जरिया भी। इस हिसाब से सामान ही हमारे वर्ग बन गए। यहीं से मिथिला चित्रकला में 'उपयोगितावाद' का प्रवर्तन हुआ। उदाहरण के लिए, जो छात्रा सीधी लकीर खींचने, साधारण बॉर्डर बनाने, कचनी करने और कमल, मछली, शंख, हाथी जैसे बहुप्रचलित प्रतीक बनाने में कामयाब हो जाती थी उसे टेबुलमैट बनाने में लगा दिया जाता था। यह 50 सेमी चौड़े मोटे कपड़े पर बनता था जिसमें काम बहुत नहीं रहता था। छात्रा जब तरह–तरह के डिजाइन वाले करीब दो सौ टेबुलमैट बना लेती थी तो उसे ऊपर के सामान, कुशन कवर बनाने में लगाया जाता था। यह 18 इंच लंबा और उतने ही चौड़े कपड़े पर बनता था लेकिन इसके काम टेबुलमैट से महीन और भरे होते थे। इस काम को करते हुए जब छात्रा उचित ढंग से पास हो जाती थी तो उसे ऊपर के सामान बनाने में लगाया जाता था। दुपट्टा या ओढ़नी तक आते–आते छात्रा को पकठोस, माने होशियार होना होता था। ओढ़नी ढाइ मीटर लंबे और नब्बे सेमी चौड़े महीन कपड़े पर बनती थी। इतने बड़े आयतन के कपड़े पर काम करते हुए छात्रा बार–बार समान प्रतीक,

बॉर्डर या डिजाइन का अंकन करती थी जिससे उसके कलात्मक अभ्यास को मजबूती मिलती थी। ओढ़नी के काम में निपुण होने के बाद ही कोई छात्रा साड़ी बनाने के काम में लगायी जाती थी। यहाँ तक पहुचने में छात्रा को लगभग दो वर्ष का समय लगने चाहिए, लेकिन काम ज्यादा आ जाता था तो वर्गों का सिलसिला तोड़ना पड़ता था। ऐसे में निचली कक्षा की छात्रा को बड़ी छात्रा के साथ लगाकर काम पूरा किया जाता था। पारिश्रमिक का हिसाब यह था कि बचत का साठ प्रतिशत छात्रा को और चालीस प्रतिशत विद्यालय को मिलता था।

गरीबी के कारण मैं दो रुपए आठ आने (पचास पैसे) की फीस नहीं दे सकता था, इसीलिए गुरुजी ने मुझे कान पकड़कर वर्ग से निकाल दिया। इसी पीड़ा ने तो मुझे गरीबों और वंचितों के लिए वैकल्पिक शिक्षण–पद्धति की तलाश में लगाया। ऐसी पद्धति की खोज में मैं लगभग पंद्रह वर्षों तक भटकता रहा और सीखता रहा। अब मैं खुश था कि ऐसे परिवारों की लड़कियाँ बिना फीस दिए न केवल सीख–पढ़ रही थीं बल्कि कमा भी रही थीं। हमारे विद्यालय का द्वार सभी जाति की लड़कियों के लिए खुला था। शुरू में तो हमारे गाँव के कायस्थों ने कोई विरोध नहीं किया। मैंने उन्हें सिर्फ इतना बतलाया था कि मेरी पत्नी लड़कियों को पेंटिंग सिखाएगी। जब लोगों ने देखा कि मेरे एक छोटे कमरे में दलित और मुसलमान लड़कियाँ भी बैठती हैं और लड़कियाँ दिल्ली–बंबई के चक्कर लगाती हैं तो वे सामूहिक रूप से गोलबंद हो गए। हमारी हर यात्रा के बाद उनकी पंचायत बैठती थी और संस्था को उजाड़ फेकने का वे निश्चय करते थे। हम अपने काम में लगे थे और परेशान होने के बाद भी उनकी परवाह नहीं कर रहे थे। अब खुलेआम उनका विरोध बढ़ने लगा। वे मुझे तरह–तरह से अपमानित करने लगे। लड़कियों के साथ जोड़कर हमे गालियाँ देने लगे। एक रात पंचायत में बुलाकर मुझे बहुत अपमानित किया गया। बाद में पता लगा कि उस रात मुझे मारने का उनका प्लान था। सुबह मैं जिलाधिकारी श्री अमित खरे आए। उन्हें पता लग गया था कि मेरे साथ कुछ बुरा हुआ था। खरे साहब ने उन लोगों को दंडित करने की बात मुझे कही लेकिन मैंने उन्हें सामाजिक मामलों में नहीं पड़ने का आग्रह किया। आश्चर्य की बात यह है कि जिनके घर का खर्चा उनकी लड़कियों के पैसे से चलने लगा था, वे भी लड़कियों को रोजगार में लगाने का विरोध कर रहे थे। वे हमसे सवाल करते थे, मैं क्या मर गया हूँ जो आप मेरी पत्नी और बेटी को कमाने के लिए कहते हैं? मैं किसी के अपमान का जवाब नहीं देता था। लोग चाहते थे कि हम जवाब दें, लड़ें ताकि काम बंद हो जाए। कभी–कभी लगता था कि तुलसीदास ने ठीक ही कहा, 'तुलसी वहाँ न जाइए, जहाँ जन्म स्थान।' कुछ हद तक यह सीख सही भी है। आप बदलाव का काम दूसरी जगह तो मन मुताबिक कर सकते हैं मगर अपने गाँव में नहीं। खैर, मैंने तो गरीबी का पाठ अपने गाँव में ही सीखा था, इसीलिए गरीबी मिटाने का काम भी वहीं से शुरू करना था। दूसरी बात यह कि अपने गाँव में घर नाम की एक ऐसी जगह थी जहाँ हम भूखे पेट भी काम कर सकते थे, दूसरी जगह किससे काम की जगह माँगते? अपने समाज में आप चाहे कितनी बड़ी बात कर लें, गांव के लोग आपका बुनियादी परिचय ही याद रखते हैं; फलाँ का बेटा..... फक्कड़..... फटीचर। मुझे इस मान–अपमान की भी परवाह नहीं थी। कुछ लोग तो ईर्ष्यावश परेशान थे। जिन घरों में फाकाकशी हो रही थी, वहाँ अब उपवास बंद था। जिनकी देह पर फटे कपड़े थे, उनके पैरों में अब चप्पल आ गए थे। मैं वर्षों से सहन करने का अभ्यास कर रहा था, गालियों से घबराकर काम कैसे बंद कर देता? लेकिन मेरी सबसे बड़ी ताकत हमारी लड़कियाँ थीं। वे कहती थीं, आप न लड़िए न किसी से डरिए। लड़कियाँ मेरे कवच बन गयी थीं।

औरतों को काम में लगाने का विरोध सिर्फ मेरे गाँव में, अपनी जाति के लोगों ने किया। दूसरे किसी गाँव में कहीं हमारा विरोध नहीं हुआ। मार्च 1984, दिल्ली वाली दूसरी प्रदर्शनी में मैं, मेरी बहन सरोज और शशिबाला ने भाग लिया। अब प्रदर्शनियों का सिलसिला शुरू हो गया था। उसी साल हम बंबई भी गए। बंबई के लोगों ने तो कमाल कर दिया। हमारे सारे सामान तो बिक ही गए, ढेर सारे काम के ऑर्डर भी मिले। यहीं से हमारा काम बुलंदियों की ओर बढ़ने लगा। हम देश के तमाम बड़े शहरों में प्रदर्शनी लगाते थे। दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, मद्रास, बंगलोर, हैदराबाद, पुणे, गोवा, कोचीन, त्रिवेंद्रम हमारे प्रमुख बाजार थे। इन प्रदर्शनियों में बदल–बदलकर दो–तीन लड़कियाँ जाती थीं। ज्यादा लड़कियों को भेजने से खर्च तो बहुत हो जाता था, लेकिन हम कोई व्यावसायिक संगठन नहीं थे जो खर्च बढ़ने को बुरा मानते। इस खर्च का बड़ा फायदा था, लड़कियाँ दुनिया देखती थीं और सीखती थीं। महानगर के ग्राहकों के संपर्क में आने से उनका भविष्य तैयार होता था। आगे चलकर उन्हें खुद ही तो काम करना है। प्रदर्शनियों में एक तरफ हमारा स्टॉल होता था, दूसरी ओर हम इच्छुक लोगों को मिथिला आर्ट का निःशुल्क वर्कशॉप चलाते थे। इससे हमारे ग्राहक बड़े घरों में और भी तेजी से बढ़ने लगे। जैसे–जैसे हमारा बाजार बढ़ रहा था, उसी अनुपात में हम छात्राओं की संख्या भी बढ़ाते जाते थे। मिथिला में पहली बार जमाने से दबी लड़कियाँ तूफान बन गयी थीं।

कहते हैं, कपड़ा फट जाए तो कोई सूई–धागे से सी लेगा, जिसका आसमान ही फटा हो उसे किस चीज से टाँका लगाएगा? यहाँ बेहद गरीबी थी। कुछ को छोड़कर सभी जाति में यह हाल था। जिसका पेट भूखा हो, वह कपड़े पर कितना खर्च करेगा? मेरा काम पढ़ाना था। पढ़ाने के लिए दो शिक्षक भी थे मगर मैं दिन भर का टीचर था, कला–विभाग में भी और शिक्षण विभाग में भी। एक दिन पढ़ाने के लिए कमरे में घुस ही रहे थे तो एक महिला की फटी साड़ी पर नजर चली गयी। उसकी साड़ी ऐसी जगह पर फटी थी कि मैं शर्म से सिहर उठा। मुझे बहुत तकलीफ हुई। हे भगवान, इतना दुख कि आदमी काम भी नहीं कर सके? पहले भी मुझे बताया गया था कि कई लड़कियाँ सिर्फ इसलिए संस्था में नहीं आ पाती थीं क्योंकि उनके पास ढंग के कपड़े नहीं थे। मैं सुनकर भी चुप रह जाता था, क्योंकि ऐसी लड़कियों को कपड़े खरीदकर देने का साधन हमारे पास नहीं था। आज जो देखा, उससे मेरी आँखें ही फूट गयीं। अब या तो कुछ उपाय करना है अथवा काम बंद कर देना है। उसी रात मुझे बनारस जाना था, विकासभाई के पास। उसे बताया। सेवापुरी में शिविर था। मैंने शिविर में लोगों से कहा कि हमें हमेशा कपड़े चाहिए, लोगों के उतरन, पुराने। मैंने लोगों से पूरी बात बतलायी। सबों ने मदद करने का भरोसा दिया। सेवापुरी से लौटकर आया तो दिल्ली जाना था, प्रदर्शनी करने। वहाँ भी लोगों से कहा। सबों ने साथ मिलकर कुछ घरों में चलने को कहा, लेकिन हमें कहीं जाना नहीं पड़ा। प्रदर्शनी के दौरान ही हमारे पास ढेर सारे कपड़े, अच्छे–अच्छे कपड़े पहुँच गए। दिल्ली से लौटकर आया तो कुछ दिनों में कलकत्ता और बंबई से ढेर सारे कपड़ों के गट्ठर आ


(फोटो : 1986)

गए। महाभारत के कृष्ण ने द्रौपदी की लाज बचायी थी, अच्छे लोगों ने हमारी लाज बचा दी। पुराने कपड़े जमा करने और बाँटने का सिलसिला हाल के कुछ वर्षों तक चलता रहा।

लोगों से पुराने कपड़े माँगकर जरूरतमंदों में बाँटने का असर संस्था के कार्यक्रम पर बहुत अच्छा हुआ। हमारे पास तरह–तरह के कपड़े आने लगे थे। इन कपड़ों का बँटवारा हम समाज के सभी इच्छुक और जरूरतमंद लोगों के लिए करने लगे। बहुत लोगों को इसकी जरूरत थी। इससे हमारा सार्वजनिक समर्थन बढ़ने लगा। इस काम से उत्साहित लड़कियों ने विचार किया कि संस्था इस तरह की सहायता के काम भी करे। बिहार में उन दिनों कोई न कोई प्राकृतिक विपदा आती ही रहती थी, कभी बाढ़ तो कभी सुखार। लोग त्रस्त थे। ऐसी विपदा के समय गरीबों की हालत तो और भी बुरी हो जाती थी। हमने तय किया कि स्वास्थ्य और सहायता के लिए साधन जुटाने का प्रयास करेंगे।

1987 के अगस्त महीने में भयानक बाढ़ आयी। दरभंगा का बहुत बड़ा भू–भाग बाढ़ से प्रभावित हुआ। कुशेश्वर स्थान प्रखंड में तो हर साल बाढ़ आती थी, लेकिन उस साल बिरौल ब्लॉक और खासकर कुशेश्वर स्थान में बेहिसाब तबाही हुई। ऑक्सफैम ने हमें बाढ़–पीड़ितों की सहायता के लिए बड़ी सहायता दी थी। विकासभाई ने कलकते की किसी कंपनी में बैठकर मोटे और टिकाऊ, बड़े साइज के प्लास्टिक शीट में रस्सी लगाने के लिए अंगूठी लगवाया था और उसके किनारों की मशीन से सिलाई करवाई थी। उस एक प्लास्टिक शीट की लंबाई–चौड़ाई एक बड़े घर के बराबर थी। ऑक्सफैम ने हमें ढेर सारी दवाइयाँ और पौष्टिक आहार भी दिया था। इन साधनों से हमने कुशेश्वर स्थान के बीहड़ क्षेत्रों तक दुखी लोगों की सहायता की। वहाँ हमारा राहत–कार्यालय सुपौल बाजार में था। कुशेश्वर स्थान दलित बहुल क्षेत्र है। वहाँ के मुसहर, दुसाध और डोम जातियों के बीच आगे भी काम करते रहने के निश्चय के साथ हम रात–दिन काम में जुटे हुए थे। एक दिन मैं क्षेत्र से लौटा तो देखा, रासबती मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। उसे उसके किसी बाढ़–पीड़ित रिश्तेदार ने हमारा पता बताया था। मैं व्यस्तता के कारण उससे मिलने नेपाल नहीं जा पाता था, लेकिन बासमती का समाचार जानने के लिए मैं व्यग्र रहता था।

रासबती उस रात हमारे साथ ही रही। बासमती की बेटी कांतिमयी अब पाँच बरस की हो गयी थी। अब वह स्कूल जाती थी, लेकिन बासमती सुखी नहीं थी। बासमती की हालत से रासबती भी दुखी रहती थी। वह बहुत देर तक बतियाती रही। उसकी बात का सारांश यह है कि कांतिमयी के जन्म के कुछ ही दिन बाद बासमती ने अपने पति से बतला दिया कि वह दूसरा बच्चा पैदा करना नहीं चाहती है, इसलिए यदि वह चाहें तो दूसरा विवाह कर लें। बासमती ने अपनी बहन के दबाव के कारण विवाह तो कर लिया था, लेकिन ससुराल में सब कुछ ठीक रहते हुए भी वह खुश नहीं थी। उसकी खुशी खुद के जीने में नहीं थी। वह समाज के लिए काम करना चाहती थी मगर इस बात के लिए उसका पति अनुमति देने के लिए तैयार नहीं था। आखिर उसने पति से कहा कि उसे बच्चा के साथ तलाक दे दे। उसका पति तलाक दे सकता था, लेकिन बच्चा देने को तैयार नहीं था। वह कहता था कि अगर वह अदालती कार्रवाई में जाएगी तो वह साबित कर देगा कि बासमती पहले मानसिक रोगी थी और बच्ची की सही देखभाल नहीं कर सकती थी। अपने पति के इस दावे के आगे वह मजबूर हो रही थी। अपनी बेटी से दूर रहकर वह जी नहीं सकती थी। बासमती इतने संकट में फँस जाएगी, मुझे यह आशंका पहले नहीं हुई थी। यद्यपि कि जिस दिन पहली बार वह मुझे बच्ची दिखलाने आयी थी, उसी दिन मैं समझ गया था कि वह मात्र पारिवारिक जीवन जीने से खुश

नहीं रह सकती है, लेकिन बात इतनी बिगड़ जाएगी इसका अनुमान मुझे नहीं था। मैं रासबती से इतना कुछ जानकर बहुत दुखी हो गया। बासमती के स्वभाव को मैं जानता था। वह दृढ़ इच्छाशक्ति की गुणी और दयालु स्त्री थी। उसने लोकहित के लिए वह काम किया जो किसी स्त्री के लिए प्रायः असंभव है। उस समय तक हम जितना जो कुछ कर सके थे उसकी बुनियाद में उसके विचार महत्वपूर्ण थे। देह–लाज को त्यागकर गोदना का जो उपहार उसने मुझे दिया और समाज–सेवा के लिए जिस दिशा में उसने मुझे मोड़ा, उसीके फलस्वरूप हम इतनी सफलता के साथ काम कर पाए थे। अब जब हमारे काम का इतना फैलाव हो गया था तब सेवा के उस अभियान में वह इसलिए नहीं शामिल हो सकती थी क्योंकि अब वह किसी की पत्नी हो गयी थी।

बासमती की हालत पर सभी दृष्टिकोण से विचार करने के बाद मैंने रासबती को अपना निर्णय सुनाया। मैंने उसे कहा कि बासमती अपनी बेटी की देखभाल और उसकी पढ़ाई का अच्छा से अच्छा प्रबंध करते हुए उसके सयानी होने की प्रतीक्षा करे। कांतिमयी जब कॉलेज जाने लगेगी तब मैं या तो कलकत्ता में ही एक संस्था का गठन कर दूँगा अथवा दूसरी कोई बात सोची जाएगी। अगले दिन मैंने रासबती को विदा किया।

आज जीवन के इस पड़ाव पर, जब मैं सत्तरवें वर्ष में प्रवेश करने जा रहा हूँ, पीछे छूट रहे अपने पद–चिन्हों की ओर नजर करता हूँ तो यात्रा के पहले सोपान पर आज भी कंधे पर फटी कमीज पहने, नंगे पाँव खड़ा मेरे भीतर का वह बच्चा मासूमियत से क्लास–रूम की छत निहारता मिल जाता है, जिसे वर्ग–शिक्षक ने कान पकड़कर निकाल दिया था। मेरे भीतर का वह बच्चा कभी मुझसे अलग नहीं हुआ। मैंने 1965 में पहला 'नाइट स्कुल' शुरू किया था, अपने गाँव बरहेता में, यह मेरे काम का तिरेपनवाँ वर्ष है। मैं अभी थका नहीं हूँ, मगर अब जान गया हूँ कि मेरे काम की सीमा क्या है। बिहार जैसे राज्य में सार्वजनिक हित का काम करना आसान नहीं है। मैं शायद वहाँ तक नहीं पहुँच सकूँ जहाँ तक जाना चाहता था, लेकिन कोई निराशा नहीं है, क्योंकि मुझे मालूम है, कितना अदना आदमी हूँ मैं।

मेरा पहला काम उन बच्चों के लिए शुरू हुआ जो स्कुल नहीं जा सकते थे और ऐसे बच्चे जो स्कुल तो जाते थे मगर उनके घर में होमवर्क कराने वाले नहीं थे। उस समय मैं जीवन की दूसरी जरूरियात के बारे में नहीं जानता था। हालाँकि काम शुरू करने से पहले संत विनोबा ने सिखाया था कि जीवन के निदान के बिना शिक्षा का कोई अर्थ नहीं है, लेकिन उतनी बड़ी बात मेरी समझ में नहीं आयी। उनके इस उपदेश का अर्थ मैं तब समझा जब दरभंगा में, 1966 में, भिखारी बच्चों को पढ़ा रहा था। ननकू की माँ ने मुझसे पूछा, भिखारी बच्चों को पढ़ाने आए हो, खाना दोगे? इस सवाल का जवाब मेरे पास नहीं था, उन दिनों शायद किसी के पास नहीं था। इस सवाल से मैं एकदम अकबका गया। मैथिली में एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि जो शेखीबाज निर्विष ढोर साँप का मंत्र नहीं जानता है वह पनियादराध जैसे विषधर को वश में करने की बात करता है। ऐसी कोई मनोवैज्ञानिक परिस्थिति भी हो सकती है जब अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित कोई व्यक्ति निरुपाय होने की स्थिति में, दूसरे उपाय से अधिक बड़ी उपलब्धि पा लेने का स्वप्न देखने लगता है। मैं सोचने लगा कि सरकार के पास साधन की कमी नहीं होती है, उसे चाहिए कि गरीब बच्चों को खाना–कपड़ा दे और सबों की अनिवार्य शिक्षा का कानून पास करे। इस दृष्टिकोण से सोचने पर लगा कि इतना इंतजाम करने के लिए जो सरकार तैयार नहीं हो, उस सरकार को ही बदल देना चाहिए।

कम से कम, मैंने तो इसी विचार से 1966 के 'बिहार आंदोलन' और बाद में, 1974–'78 के 'जय प्रकाश आंदोलन' में भाग लिया था (अब यही बात सरकार भी कहती है और बच्चों को मध्याह्न भोजन के साथ कपड़े भी उपलब्ध करा रही है)।

बिहार में 1966 आंदोलन का समय था। सरकार और छात्रों में संघर्ष छिड़ गया था। उस समय बिहार के मुख्य मंत्री कृष्ण बल्लभ सहाय थे। झगड़ा तो पुलिस के रवैए से शुरू हुआ था लेकिन गैरकांगरेसी राजनीतिज्ञों ने उस झगड़े को कृष्ण बल्लभ सहाय की सख्तमिजाजी, मंहगाई और प्रशासनिक निरंकुशता का मुद्दा बना दिया। महामाया प्रसाद ने छात्रों को 'जिगर के टुकड़े' कहकर ठग लिया। संविद (संयुक्त विधायक दल) की सरकारें बनती और गिरती रहीं। मैंने तो यह सोचकर उस आंदोलन में भाग लिया था कि नयी सरकार के पास बच्चों को खाना–कपड़ा देने और अनिवार्य शिक्षा का कानून पास करवाने का प्रस्ताव रखवाऊँगा। ऐसा कुछ होता नहीं दिखा तो 1972–73 से मैं फिर बच्चों के बीच चला गया, लेकिन भूखे–नंगे बच्चों का सामना करने का साहस मुझमें नहीं था। मैंने 1965 में जो 'वर्णमाला' बनायी थी उसका आधार चित्र था। मैं साधारण प्रतीकों को तोड़कर ज्यामितिक चिन्हों से अक्षर बनाता था। 1973 मे मैं खाते–पीते घरों के बच्चे, पब्लिक स्कुलों के बच्चों के बीच चित्र लेकर गया। उस समय तक मैं समझने लगा था कि चित्रकला



को मुख्य पाठ्य विषय के साथ जोड़ने पर बच्चे पर्यावरण के प्रति संजीदा हो सकते हैं। 1974 तक मैंने इसी उद्देश्य से तीन स्कूलों की स्थापना करायी थी। तब तक जेपी आंदोलन शुरू हो चुका था। जेपी आंदोलन में भी मैं यही सोचकर गया था कि नयी सरकार के समक्ष गरीब बच्चों के खाना–कपड़ा और अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव रखवाऊँगा। दिल्ली मैं इसी प्रस्ताव के साथ गया था, लेकिन चुनाव जीतने के बाद जनप्रतिनिधि लोगों की नहीं सुनते हैं। जेपी ने परंपरा की लीक तोड़कर मोरारजी भाई देसाई का प्रधान मंत्री के रूप में चुनाव करवाया, बाद में उसी मोरारजी ने जेपी की बात मानना जरूरी नहीं समझा। खैर, मैं तो दिल्ली जाने से पहले भी अपने काम में लगा था और बाद में भी लगा रहा।

उस दौर का मेरा अंतिम विद्यालय मेजरगंज (सीतामढ़ी) का 'जुनियर्स एकेडमी' था, जहाँ से इमरजेंसी ने मुझे ठेलकर नेपाल भेज दिया था। वहाँ रासबती ने समझाया कि राजनीति के खिलाड़ी गरीबों का भला नहीं कर सकते। बासमती ने सिखाया कि यदि संसार का भला करना चाहते हैं तो औरतों के लिए काम करिए। इस काम की पूँजी के तौर पर उसने मुझे अपनी देह का अनमोल खजाना, गोदना दिया। गोदना के उन प्रतीकों से मैंने दिल्ली में कचड़ा चुनने वाले बच्चों के लिए जो प्रयोग किया उसके आधार पर 'समन्वय आश्रम', बोधगया में अपनी महिला–मित्र मैरियन हचिंसन के साथ मिलकर **"शिल्प–कला विश्वविद्यालय"** बनाने का विचार विकसित किया। इस विचार का पहला प्रयोग "बाम इंडिया", गया में किया। हर स्तर पर शिल्प–कला का प्रयोग करते हुए मैं फिर अपने गाँव बरहेता (दरभंगा) आ गया, कला पर आधारित **"पढ़ाई के साथ कमाई"** विधि की स्थापना करने के उद्देश्य से। यहाँ **"भारती विकास मंच"** के तहत जनवरी, 1984 से जब कला–प्रदर्शनियों के माध्यम से हम देश भर के कला–संगठनों के संपर्क में आए तो कला–विश्वविद्यालय बनाने का हमारा सपना और भी मजबूत हो गया। इस मद में हमने कई काम बखूबी पूरे कर लिए थे — जिन महिलाओं को कभी कलम पकड़ने के लायक नहीं समझा गया उन महिलाओं और लड़कियों ने कलम से ताजमहल खड़ा कर दिया; जिन लोक–कलाओं में औपचारिक शिक्षण–विधि चलाना असंभव माना जाता था उसे हमने संभव कर दिखलाया, इसमें हमने प्राथमिक से लेकर उच्च स्तर तक की लगभग एक दर्जन पुस्तकें विकसित कर दी। यह भी एक कटु सत्य है कि इतना काम करने में हमें सरकारों ने कभी कोई सहायता नहीं दी और न धन्यवाद का एक शब्द दिया। लेकिन यूरोप–अमेरिका तक के लोगों ने हमारे काम की तारीफ जरूर की। हमारी संस्था में आकर अनेक देश के लोगों ने अनेक बार हमारा काम देखा और मिथिला–कला का प्रशिक्षण लिया। अपनी योजना के अनुसार ही, (प्रस्तावित) शिल्प–कला विश्वविद्यालय के रूप में, 1999 से मैंने विदेशों में पढ़ाने का काम शुरू किया।

वर्ष 1999 में मैं तीन महीने के लिए इटली गया। वहाँ मुझे मई से जुलाई के बीच रोम, मिलान, फ्लोरेंस (फ्लिरंजे), जेनोवा, प्रातो, उम्ब्रिया, सावोना, वेरोना, क्यूनेओ के स्कूलों और नेपुल्स विश्वविद्यालय में "लोक–कलाओं से गरीबी–उन्मूलन और शिक्षा" विषय पर व्याख्यान देना था साथ ही मिथिला चित्रकला का प्रशिक्षण भी देना था। मेरी यह यात्रा काफी सफल रही। तीन महीने के व्यस्त कार्यक्रम के बाद जब मैं संस्था में लौटा तो मेरे सेवक शिव शंकर मंडल ने बताया कि मेरे जाने के महीने दिन बाद रासबती यहाँ मुझसे मिलने आयी थी। शिव शंकर ने उसे अगस्त के दूसरे सप्ताह में आने को कहा था। अगस्त के एक रविवार रासबती आयी। उसके साथ एक युवती थी। दूर से उसे देखकर मैं अचंभित था। उसकी अँगोट हूबहू बासमती जैसी थी। मुझे अनुमान लगाने में कोई दिक्कत नहीं हुई कि वह कांतिमयी थी, उसकी बेटी, लेकिन बासमती क्यों नहीं आयी? मेरे पास आने पर कांतिमयी ने मेरे पैर छुए और रासबती रोने लगी। मैं कई तरह

की आशंकाओं से घिरा एकदम हकबका गया। आखिर रासबती ने अपने आपको सम्हालते हुए बताया कि बासमती जून में ही गुजर गयी। वह पिछले कुछ दिनों से बीमार चल रही थी। उसके पति ने काफी इलाज कराया मगर डाक्टर उसे बचा नहीं सके।

मेरे लिए यह समाचार वैसा ही था जैसे किसी के लिए अपनी माँ–बहन के मरने का समाचार होता है, लेकिन मेरे परिवार से इस समाचार का कोई संबंध नहीं था। बासमती का संबंध मेरे साथ था, मेरे परिवार के साथ नहीं। ऐसे भावुक क्षण में मैं अपनी पत्नी और बच्चों के बीच किसी तरह की गलतफहमी नहीं पैदा करना चाहता था। मैं झटपट तैयार हुआ और उन दोनों के साथ घर से निकल गया। निकलते समय मैंने शिव शंकर से सिर्फ इतना बताया कि दो–तीन दिन बाद लौटूँगा।

घर से निकलकर हम रिक्शा से दरभंगा आ गए और बस से जनकपुर, जहाँ की माटी का कण–कण मेरे लिए बासमती था। वहाँ मैं कांतिमयी, रासबती और उसके बच्चों के साथ दो दिन बिताने के बाद घर वापस आ गया। कांतिमयी कॉलेज के दूसरे वर्ष में पढ़ रही थी। उसे डाक्टर बनना था। उसके पिता उसे वैसे ही प्यार करते थे जैसे उसकी माँ करती थी। कांतिमयी ने बताया कि वह अपनी माँ की सहेली जैसी थी। उसे माँ ने सब कुछ बतलाया था, जो कुछ हम एक साथ सोचते और करते थे। उसे माँ ने यह भी बतलाया था कि उसका नाम मैंने ही रखा। अगले दिन रासबती और कांतिमयी को कलकत्ता जाना था। मैं विदा होने लगा तो कांतिमयी ने मुझे एक लिफाफा दिया। उसमें दो रुमाल थे। एक दिन मैं बासमती के साथ बाजार गया था। उसने मेरे लिए दो सादे रुमाल खरीदा, उन पर गोदना–चित्र बनाने के लिए। बासमती की अंतिम स्मृति पाकर मैं वहीं टूट गया। मैं उस बच्ची के सामने रोना नहीं चाहता था मगर आँसू पर किसी की रोक नहीं चलती है। कांतिमयी ने रुमाल से मेरा मुँह पोछ दिया। मैं निहाल हो गया। मैं मान गया, बासमती गयी नहीं है।..... हमारे प्रभु, अवगुन चित न धरौ!

उत्तर बासमती

भारती विकास मंच, बरहेता में महिलाओं ने मिथिला–चित्रकला और गोदना– चित्रकला को अपनी आजीविका का साधन बनाया। जीविका की यह विधि पूरे बिहार में पसरी। दूसरे राज्यों में रहने वाली बिहारी महिलाओं ने उन राज्यों तक इस कला–उद्योग को फैलाया, खास कर वस्त्र-चित्रांकन के काम से अपनी आमदनी बढ़ायीं। बासमती यही तो चाहती थी। इस फोटो मे स्त्रियाँ चित्र से पहनावे के कपड़े तैयार कर रही हैं। अब कोई स्त्री भूखी नहीं रहती है। इन्हें जीने का एक रास्ता मिल गया है। यह सबों के लिए एक अच्छा उदाहरण है।



उचिती–मिनती

भारत में प्राचीन काल से समाज–सेवा की अविच्छिन्न परंपरा रही है। विशुद्ध मानवीय आदर्श के रूप में महात्मा गांधी, संत विनोबा भावे, जय प्रकाश नारायण, बाबा आमटे, अन्ना हजारे जैसे महान समाज–सेवकों से भी बहुत पहले और बाद तक के अनेक ज्ञात–अज्ञात लोगों ने अपने मन की पुकार पर समाज के दुखी जनों की, अपने तरह से सेवा की है। जहाँ कहीं भी जन–कल्याण के बड़े काम किए गए हैं उनके पीछे अनेक कार्यकर्ताओं के त्याग, सूझबूझ और उनकी अनूठी कल्पना की कहानी छिपी होती है। ये कहानियाँ अगली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा के स्रोत बनती हैं। बहुत ऐसी कहानियाँ अलिखित होने के कारण और सरकारों की उपेक्षा के कारण धीरे–धीरे छीजकर लोक–मानस से लुप्त हो जाती हैं। इसके साथ ही वह विधि भी धूल–धूसरित हो जाती है जिससे ऐसे महान कार्य संपन्न हुए रहते हैं। भविष्य में फिर जब कभी किसी को वैसे कार्य करने की उत्प्रेरणा होती है तो फिर वहीं से चलना होता है जहाँ से पूर्व के सफल किंतु विस्मृत कार्यकर्ता गुजर चुके होते हैं। इससे नये कार्यकर्ताओं के समय और श्रम का अपव्यय होता है।

मैंने संत विनोबा से 1963 में उनके दर्शन "जीवन और शिक्षण" में दीक्षा ग्रहण करने के बाद 1964 में साक्षरता विषयक अपनी तैयारी में लग गया और 1965 में कार्य प्रारंभ कर दिया। जैसे–जैसे समय बढ़ा, मेरे अनुभव भी बढ़ते गए। मेरे द्वारा किए गए तमाम प्रयोगों में 1980–'81 से प्रारंभ शिल्प–कला से 'पढ़ाई और कमाइ' की पद्धति समस्त मिथिला और बिहार के बड़े भू–भाग की महिलाओं के उत्थान और उनके सशक्तिकरण के मामले में देश–विदेश तक प्रशंसित हुई।

मैंने मिथिला–चित्रकला से जोड़कर जिस कार्य–विधि का प्रवर्तन किया वह वस्तुतः 'पीड़ितों–वंचितों की शिक्षण–विधि है। इस पद्धति का बीज–सूत्र मुझे दलित स्त्री बासमती से मिला। श्रीमती शिवा कश्यप के साथ मिलकर मैंने 1981 के अंत में महिलाओं के लिए संस्था बनाकर काम शुरू किया। जून 1983 में भारती विकास मंच की स्थापना हुई तो आगे चलकर "गोदना–चित्रकला" नामक बासमती के गोदना–संग्रह को हमारी शिष्या शशिबाला ने और भी परिष्कृत रूप दिया और मिथिला–चित्र के साथ इसका विलयन किया। श्रीमती शिवा, शशिबाला और अनीता दास ने इन प्रारूपों से वस्त्र पर अनूठी शृंखला खड़ी की। लोकचित्र में इस नवोन्मेष से सभी जाति–धर्म की युग–युग से दबी–कुचली पीड़ित महिलाओं को आजीविका का एक अकल्पित साधन मिल गया। इस कला–उद्यम से समाज की दशा बदलने लगी। हम आशा करने लगे कि अब अगला कदम, कला–विश्वविद्यालय बनाने का काम आसान हो जाएगा।

किसी शिक्षण–पद्धति के लिए विभिन्न स्तर की पाठ्य पुस्तकों की रचना अनिवार्य होती है। लोक–कलाओं, विशेष रूप से लोकचित्रों के कोश में ज्ञान का अपरिमित भंडार संरक्षित होता है, किंतु इसकी व्यप्ति लोक–जीवन और आस्था–साहित्यों के विस्तृत और अलिखित परंपराओं में निहित होने के कारण पुस्तक रूप में इनका क्रमबद्ध संचयन और निरूपण करना अपने आप में बहुत कठिन काम होता है। मिथिला–चित्रकला और गोदना–चित्रकला में हमने यद्यपि कि प्रशिक्षण और उत्पादन का काम तो 1983 से ही प्रारंभ कर दिया था, लेकिन उसके बहुत दिन बाद तक हमारे पास कोई पाठ्य पुस्तक नहीं थी। पहली बार इन विषयों में पुस्तक की रचना करना विधि की दृष्टि से हमारे लिए भारी उत्तरदायित्व का काम था। शर्त्त यह थी कि पुस्तकें ऐसी हों जिसकी पाठ–योजना क्रमबद्ध हों, प्रशिक्षण की सामग्री मौलिक भी हों और क्रमशः

ज्ञान की विविध शाखाओं से जुड़ते हुए आगे बढ़ती हों। ऐसी पुस्तकों की रचना में सबसे बड़ी शर्त यह होती है कि विद्यार्थी विधिक चित्रों के मूल स्वरूप को सीखते हुए औद्योगिक प्रारूपण के काम में दक्ष हो पावें। यह एक लंबी प्रक्रिया होती है, जैसे चिकित्सा–विज्ञान में औषधि–निर्माण की प्रक्रिया होती है; खोज, प्रयोग, प्रतिक्रिया, परिणाम और अंत में निर्माण–विधि।

हम हरेक विभाग के लिए प्रतिभा–लक्षण के आधार पर छात्राओं के बीच से सहायक चुनते थे। पुस्तक–निर्माण विभाग के लिए मैंने शशिबाला का चुनाव किया। पाठ क्रमिक रूप से तैयार होते थे, किंतु प्रयोगों के आधार पर उनका परिवर्तन–परिवर्द्धन भी जारी रहता था। सभी काम हस्तलिखित ही होता था। स्कुल जाने वाली छात्राएँ पाठों की तीन प्रतिलिपि तैयार करती थीं जो निरक्षर या असमर्थ छात्राओं को दी जाती थी। बहुत दिनों तक हस्तलिखित पुस्तकें ही चलती रहीं, असल में पुस्तकें छपाने के लिए हमारे पास रुपए नहीं बचते थे। सन 1999 से पुस्तक प्रेस में छपाने का क्रम शुरू हुआ। कई पुस्तकें तो प्रेस से भी हस्तलिखित स्वरूप में ही छपवायी गयीं। पुस्तक–निर्माण का काम अभी भी चल ही रहा है। मैं चाहता हूँ , जब तक कलम और आँखें काम कर सकती हैं, यह काम तो कर दूँ। अभी तक जितनी निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाश में आयी हैं उन सभी में चित्रांकन का दायित्व शशिबाला ने पूरा किया है; वह इन पुस्तकों की सह लेखिका हैं —

1 **माछ–भात** : शिक्षा–विभाग, बिहार सरकार द्वारा 1995 में प्रकाशित; लोकगीत से शिक्षा का साहित्य;

2 **मिथिला चित्र–शिक्षा, भाग 1–2** : मिथिला चित्रकला में प्रशिक्षण की प्राथमिक पुस्तक;

3 **मिथिला चित्र–कोर, भाग – 3** : प्रतीकों से परिवर्द्धित औद्योगिक प्रारूपण की पुस्तक;

4 **मिथिला अरिपन, भाग – 4** : अरिपनों का तांत्रिक विश्लेषण;

5 **गोदना–चित्रशैली, भाग – 5** : गोदना–चित्रकला की पुस्तक;

6 **मेघदूत** : कालिदास के 'मेघदूत' का मैथिली में सचित्र भावानुवाद; (2008)

7 **मैथिली गीतगोविंद** : जयदेव की रचना 'गीतगोविंद' का सचित्र मैथिली–भावानुवाद;(2010)

8 **मिथिला चित्रकला** : बिहार सरकार द्वारा 2013 में प्रकाशित;

9 **मिथिला लोकचित्र** : नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत सरकार द्वारा 2015 में प्रकाशित;

10 **मिथिला चित्रकला में जीवजन्तु , भाग – 6** : संप्रति अप्रकाशित;

11 **मिथिला लोकचित्र का समाजशास्त्र, भाग – 7** : रचनाधीन;

12 **बासमती : एक समाजकर्मी की आत्मकथा (जून, 2018)**

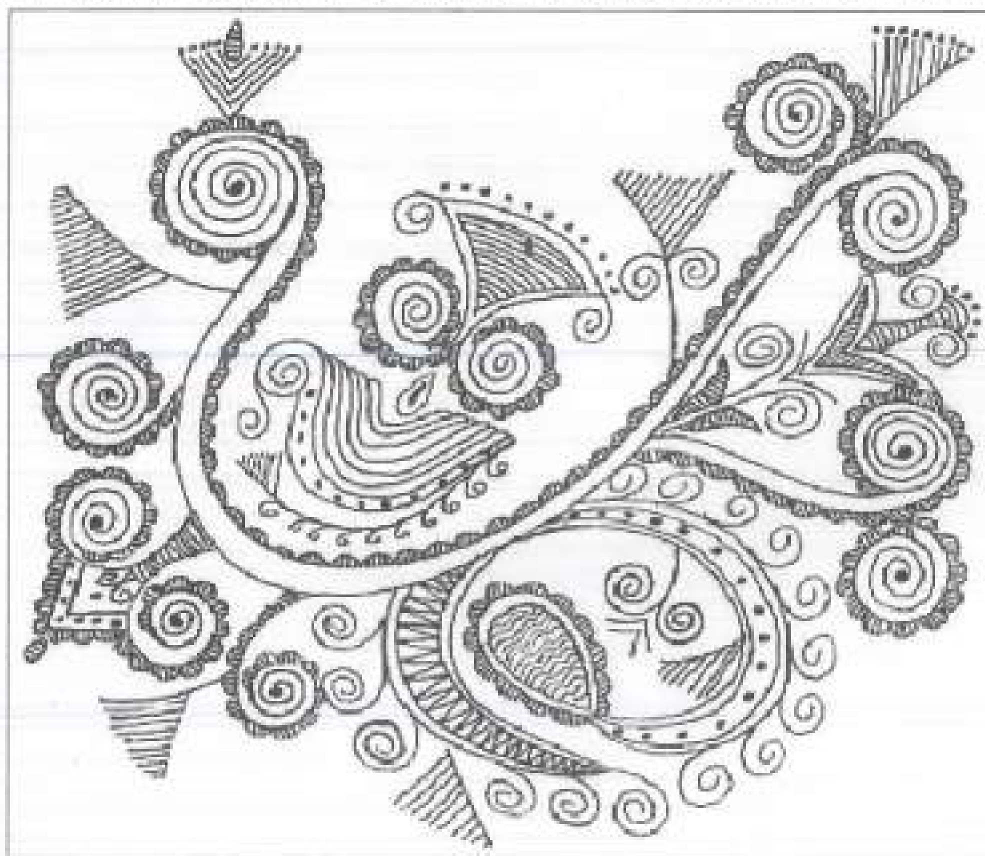
सामाजिक क्षेत्र में विशिष्ट काम करने वालों को प्रोत्साहित करने या उनके अनुभवों से व्यापक क्षेत्र में लोगों को लाभान्वित कराने के मामले में बिहार सरकार सब दिन से फिसड्डी रही है। यहाँ ऐसी कोई परंपरा

ही नहीं रही है। इसका सबसे बड़ा कारण भ्रष्टाचार और सामाजिक कार्यकर्ताओं के प्रति सरकारों की उदासीनता रही है। मेरी जानकारी में बिहार सरकार ने पहली बार 2006 में, ग्रामीण क्षेत्रों में विशिष्ट कार्य या नवोन्मेष (इनोवेशन) करने के लिए प्रथम, द्वितीय, तृतीय पुरस्कारों की घोषणा की । इन पुरस्कारों के लिए पाँच लाख से एक लाख तक की राशि घोषित की गयी। मैं तो विज्ञापन में पुरस्कार की राशि देखकर ही समझ गया था कि इसमें जमकर भ्रष्टाचार होगा, लेकिन मित्रों–सहयोगियों के दबाव पर मैंने अपने और शशिबाला के नाम से संयुक्त आवेदन दिया। इन पुरस्कारों का आयोजन बिहार सरकार के वित्त मंत्रालय के अधीन स्वायत्त संस्था 'बिहार लाइवलीहुड प्रमोशन सोसाइटी, जीविका, पटना' ने किया था। कुछ महीने के बाद मेरे नाम से एक पत्र आया। मुझे 'जीविका' की ओर से बताया गया कि हमारे (सात किलोग्राम वजनी) आवेदन का पैकेट ऑफिस से गायब हो गया है, इसलिए संक्षेप में फिर से आवेदन करें। मैं दुबारा आवेदन नहीं देना चाहता था, फिर से उतने अभिलेख भी मैं जुटा नहीं सकता था क्योंकि उनकी दूसरी प्रति, खासकर कुछ दुर्लभ फोटोग्राफ्स हमारे पास नहीं बचे थे। लेकिन संस्था में विचार हुआ कि झूठों को जरूर खदेरना चाहिए। हमारे जैसे लोग ऐसी भ्रष्ट व्यवस्था से कितना लड़ सकते हैं? इनसे लड़ते रहें कि अपना काम करें? मैं बेइमानों की करतूत समझ रहा था फिर भी दो पृष्ठों में कुछ लिखकर दुबारा आवेदन भेज दिया। 'इनोवेशन फोरम' के इस आयोजन से एक अच्छी बात हुई। आवेदनों की जाँच का काम दिल्ली की एक मूल्यांकन एजेंसी को मिला। इस एजेंसी ने गुप्त अध्ययन के आधार पर पचीस संस्थाओं/आवेदकों को 'इनोवेटर' के तौर पर चिन्हित किया और 480 पृष्ठों का रिपोर्ट सरकार को दिया। 2010 में मैंने 'सूचना के अधिकार' के अधीन हमारे संबंध में दिया गया रिपोर्ट माँगा। मुझे बताया गया कि हमारे काम के संबंध में रिपोर्ट तो नौ पृष्ठों में है किंतु 480 पृष्ठों के रिपोर्ट में अनेक स्थलों पर हमारे काम का उदाहरण दिया गया है, इसलिए संपूर्ण रिपोर्ट लेना चाहिए। हम जानते थे कि हमारा काम केवल बिहार ही नहीं, पूरे भारत के लिए एक उदाहरण हो सकता है। हम रुपयों की तंगी से गुजर रहे थे। अपने गुणगान का वह मँहगा ग्रंथ लेकर हम क्या करते? मैंने मात्र नौ पृष्ठों के लिए भुगतान किया और रिपोर्ट की प्रति प्राप्त किया।

उक्त मूल्यांकन करने वाली एजेंसी के रिपोर्ट के आधार पर, पचीसों इनोवेटर्स के कार्यों का संक्षेपण कर एक–एक पृष्ठ में उल्लेख करते हुए 'Telling the Untold' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की गयी। हमें भी 'इनोवेटर' माना गया। सभी पचीस इनोवेटरों को वित्तमंत्री श्री सुशील मोदी के हाथों पुस्तिका और प्रमाणपत्र देने के लिए मंच पर बुलाया जा रहा था। पुस्तिका के पृष्ठ 6 पर **'Earning While Learning : Mithila Art for Education & Empowerment'** लेख में हमारे काम का परिचय दिया गया था। मुझे जब मंच पर बुलाया गया तो मैंने मंत्री जी से कहा, " मैंने तो पहले ही कहा था कि गड़बड़ जरूर होगा ..... या तो यह पुस्तिका और प्रमाणपत्र गलत है अथवा पुरस्कार का फैसला गलत है।" मंत्री जी अपने ही विभाग के विरुद्ध क्या बोल सकते थे? बिहार में ऐसा ही होता है।

हमारे काम के विस्तृत विवरण देश–विदेश की पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। पैरिस से प्रकाशित होने वाली फ्रेंच भाषा की पत्रिका INDES , Sep – Oct 2004 में *Peindre pour un future milleur* शीर्षक से छः पृष्ठों के लेख में भारतीय पत्रकार नरेन करुणाकरन ने हमारे काम का व्योरा प्रकाशित किया। पिछले साल, 2017 में स्पेन से आयी एक विदुषी महिला, लाउरा रेगुएन्ट कारदोना ने मेरा एक वेबसाइट तैयार किया – www.kashyapartschool.wordpress.com इस ब्लॉग से हमारे काम की बहुत कहानियाँ जगजाहिर हुई हैं।

वर्ष 2013 में बिहार ने अपनी स्थापना के सौ वर्ष पूरे किया। उस अवसर पर बिहार सरकार के कला–संस्कृति विभाग ने ऐतिहासिक महत्व का एक ग्रंथ प्रकाषित किया — **"बिहार के 100 रत्न"**। इस पुस्तक के संपादन में लगभग बीस विद्वान, पत्रकार, लेखक और विभिन्न संकायों के विद्वान लंबे समय से लगे थे। पुस्तक में पिछले एक सौ वर्षों में समाज, साहित्य, कला, राजनीति, शिक्षा आदि क्षेत्रों में विशिष्ट कार्य करने वाले, जय प्रकाश नारायण जैसे एक सौ विभूतियों को सम्मिलित किया गया। यह ईश्वर की ही कृपा है कि उन यशस्वी लोगों की पंक्ति में मुझे भी स्थान दिया गया (पृष्ठ 34–35)। ऐसे चुने गए सभी व्यक्तियों के एक पृष्ठ में फोटो और एक पृष्ठ में उनकी जीवनी दी गयी है। मुझे लगता है, किसी औपचारिकता के तौर पर सरकार ने "बिहार के 100 रत्न" पुस्तक तो प्रकाशित कर दिया, लेकिन इन रत्नों में उसे कोई उपयोगिता नजर नहीं आती है। मेरे संबंध में एक जगह लेख में उल्लेख है, "मैथिली साहित्यकार इन्द्र नारायण लाल और कुसुम कला के पुत्र कृष्ण कुमार कश्यप मिथिला पेन्टिंग की पढ़ाई को एकेडमिक दर्जा देना चाहते हैं तथा इसके लिए अलग विश्वविद्यालय की स्थापना करना चाहते हैं। बिहार सरकार ने उनकी इस इच्छा का शायद सम्मान करते हुए सौराठ (मधुबनी) में मिथिला पेन्टिंग विश्वविद्यालय की स्थापना की पहल की है तथा इसके आठ सदस्यीय संचालन मंडल में श्री कश्यप को भी नामांकित किया है।" बात तो सच है, लेकिन एक सरकारी जुमला से अधिक कुछ भी नहीं। मैं उस समिति या संचालन मंडल की बैठकों में जाता तो था किंतु उसमें कुछ होता नहीं था। होता वही था जो सरकार के सर्वेसर्वा अधिकारी, सचिव चाहते



थे या फिर कुछ नहीं चाहते थे। हमने जिस मॉडल का सफलता पूर्वक संचालन किया है उसकी जानकारी उन्हें नहीं थी, या एक मामूली आदमी के काम को वह महत्व नहीं देना चाहते थे। नतीजा सामने है। सरकार कहती है कि संस्थान बन गया; पता नहीं, ऐसा कुछ बना या नहीं। लेकिन मैंने अपने प्रण के अनुसार, 15 अगस्त, 2017 को प्रधानमंत्री के नाम पत्र द्वारा **"भारतीय शिल्पकला विश्वविद्यालय"** स्थापित करने का प्रस्ताव भारत सरकार के समक्ष रख दिया है । हस्तशिल्प बोर्ड ने उस प्रस्ताव की सराहना की है ।

ईश्वर जिस पर महान कृपा करते हैं उसीके मन में संसार के कल्याण के लिए कुछ करने की भावना जगती है। संतों ने कहा है कि 'जा पर कृपा राम की होई, ता पर कृपा करै सब कोई।' बहुत लोगों के सहयोग से ही मेरे जैसा कोई साधारण व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है और जीवन–काल में ही उस यश का भागी बनता है। दिनांक 22 दिसंबर, 2014 के दिन, अंतर्राष्ट्रीय मैथिली सम्मेलन के तत्वावधान में, जनकपुर (नेपाल) में एक भव्य आयोजन हुआ। उस अवसर पर नेपाल के प्रथम राष्ट्रपति महामहिम श्री राम वरण यादवजी ने मुझे **"मिथिला–रत्न"** की उपाधि देकर सम्मानित किया। मैं तैंतालिस वर्षों के बाद उस भूमि पर सम्मानित हुआ जहाँ बासमती ने मुझे इसके लायक बनाया था। मेरी आँखें क्षितिज पर बासमती को खोज रही थीं। वह पितरलोक में कहीं अपनी नानी के साथ गा रही होगी। यहाँ का काम पूरा करने के बाद जब हम फिर से मिलेंगे तो उसके साथ अगले जनम की योजना बनायेंगे। तब मेरे भाल पर भी गोदना बना देगी बासमती।



लेखक–परिचय

कश्यपजी का परिचय जगजाहिर है। 15 सितंबर, 1949 को जन्मे साहित्यकार इन्द्र नारायण लाल और माता कुसुमकला देवी के इस सपूत ने दरभंगा के बहादुरपुर प्रखण्ड स्थित गांव बरहेता को ही नहीं, अपने कर्मबल से पूरे बिहार की स्त्रियों को जीने की एक सम्मानजनक पद्धति प्रदान की और समग्र भारतीय शिल्पकला को सिद्ध प्रयोगों का एक उदाहरण प्रदान किया। सन् 1965 में, सोलह वर्ष की आयु में साक्षरता कार्य से अपनी कर्मयात्रा शुरू करनेवाले कश्यपजी ने वह सभी लोकोपकारी कार्य किया जो कोई महान व्यक्ति देश–दुनिया के लिए करता है, मगर आज भी वह अपने आप को एक अदना व्यक्ति से अधिक कुछ नहीं मानते। वह समझते हैं कि कोई व्यक्ति परोपकार करके किसी पर अहसान नहीं करता है बल्कि यह उसके संस्कार हैं और खुद उसे खुशी देनेवाली कुछ आदतें होती हैं जो उसे ऐसा करने हेतु प्रेरित करती हैं। वह कहते है कि उनकी शिक्षा अनौपचारिक है। पता नहीं, इन्होंने कैसे इतनी पढ़ाई की कि देश–विदेश के विश्वविद्यालयों को अपने ज्ञान से उपकृत किया और एक नयी शिक्षा–पद्धति को जन्म दिया। बासमती पुस्तक इनकी आत्मकथा का एक अंश भर है। मैंने कश्यपजी के साथ कार्य किया और लगभग छः वर्षों के उस कार्यकाल में जितना जो कुछ देखा, वह अनन्त है। इनका जीवन–चरित उन लोगों को एक मार्ग प्रदान करता है जो अपने आप को साधनहीन मानते हुए भी संसार के लिए कुछ कर गुजरना चाहते हैं। महाजनः येन गता स पन्थाः।

प्रो. उमेश कुमार उत्पल





प्रकाशक

भारती विकास मंच, बरहेता

लहेरिया सराय, दरभंगा-846 001

₹ 400.00